# जैन विश्वभारती संस्थान

लाडनूं – 341306 (राज.)

## दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

वाणिज्य स्नातक–प्रथम वर्ष

**Bachelor of Commerce-First Year**

# तृतीय पत्र

**Paper-III**

# व्यावसायिक नियमन आधार कार्य

**Business Regulatory Frame Work**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

*COPYRIGHT*
**Jain Vishva Bharati Institute, Ladnun**

***Written By :***
*Dr. B.L. Sain (Section-A)*
*Dr. S.L. Jhakhar (Section-B)*
*Dr. Radha Solanki (Section-C)*
*Dr. R.K. Dadheech (Section-D)*

Edition : 2015

*Printed Copies : 200*

*Published by: Jain Vishva Bharati Institute, Ladnun*

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

| | **अनुक्रमणिका** (Contents) | |
|---|---|---|
| **खण्ड–अ** | अनुबन्ध–प्रकृति, वर्गीकरण, अनुबन्ध के कार्य | 01–62 |
| **खण्ड–ब** | विशेष अनुबन्ध, माल विक्रय धारा 1930 | 63–136 |
| **खण्ड–स** | विनिमय साध्य विलेख | 137–177 |
| **खण्ड–द** | उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 | 178–216 |

# Business Regulatory Framework

## Section A

## अध्याय 1
## अनुबन्ध अधिनियम, 1872
## (Law of Contracts 1872)

व्यापारिक सन्नियम की एक महत्त्वपूर्ण शाखा अनुबन्ध अधिनियम है। इसका सम्बन्ध प्रायः जन सामान्य से है, किन्तु इसका विशेष सम्बन्ध उन व्यक्तियों से है जो व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योगों में कार्यरत है। क्योकि उनके अधिकांश व्यापरिक व्यवहार अनुबन्धों पर ही आधारित होते है। **सर विलियम एन्सन ने कहा है कि** – अनुबन्ध अधिनियम का उद्देश्य एक व्यक्ति को इस बात से आश्वस्त करना है कि वह जिस बात की आशा कर रहा है वह उसे प्राप्त होगा तथा जो वचन उसे दिया गया है उसका निष्पादन होगा।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 के पूर्व हमारे देश में ऐसा कोई सामान्य अनुबन्ध अधिनियम नही था जो सम्पूर्ण देश में समान रूप से लागू होता रहा है। 1855 में ब्रिटिश सरकार द्वारा गठित विधि आयोग की सिफारिश पर 1866 में तृतीय विधि आयोग ने भारतीय अनुबन्ध अधिनियम का प्रारूप तैयार किया इसमें अनेक परिवर्तन एवं संशोधन करने के पश्चात् 25 अप्रैल, 1872 को, इसे भारतीय अनुबन्ध अधिनियम, 1872 के नाम से पारित किया गया जो हमारे देश में 1 सितम्बर 1872 से लागू हुआ। यह अधिनियम जम्मू व कश्मीर राज्य को छोड़कर समस्त भारत में लागू होता है। इस अधिनियम में अनुबन्धो से संबंधित विभिन्न प्रावधानों का उल्लेख किया गया हे। वर्तमान में इस अधिनियम को दो खण्डों में विभक्त कर सकते है। प्रथम खण्ड में अनुबन्ध के सामान्य सिद्धान्तों (धारा 1 से 75 खण्ड तक) तथा द्वितीय खण्ड में विशेष अनुबन्धों (धारा 124 से 238 तक) का उल्लेख किया गया है।

### अनुबन्ध – आशय – प्रकृति (तत्व)

वर्तमान समय में व्यापार का क्षेत्र काफी विस्तृत हो गया है। व्यापारी के लिए अनुबन्ध सम्बन्धी राजनियम का विशेष महत्व है। प्रायः सम्पूर्ण व्यापार, सौदे तथा व्यवहार, अनुबन्धों पर आधारित होते है। सामान्य जीवन में भी हमारे पारस्परिक कार्यो एवं व्यवहारों के फलस्वरूप वैधानिक दायित्वों की उत्पति हो जाती है जिनका निष्पादन कानूनन आवश्यक होता है। आज अनुबन्ध न केवल व्यवसाय की बुनियादी आवश्यकता है, वरन् हम सबके जीवन की एक कार्य शैली (work Style) भी है।

### अनुबन्ध का अर्थ एवं परिभाषाएँ

सामान्य शब्दों में, अनुबन्ध दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच एक वैध ठहराव है जो पक्षकारों के मध्य वैधानिक दायित्वों एवं अधिकारों को उत्पन्न करता है।

**न्यायाधीश सामण्ड के अनुसार –**''अनुबन्ध एक ऐसा ठहराव है, जो पक्षकारों के मध्य दायित्व उत्पन्न करता है तथा उनकी व्याख्या करता है।''

**सर विलियम एन्सन के अनुसार –''**अनुबन्ध दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच किया गया एक ठहराव है जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है तथा जिसके द्वारा एक या अधिक पक्षकार दूसरे पक्षकार या पक्षकारों के विरूद्ध कुछ अधिकार किसी काम को करने या न करने के लिये प्राप्त कर लेते है।''

**सर फैडरिक पोलक** के मतानुसार –''प्रत्येक ठहराव तथा वचन जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है, अनुबन्ध कहलाता है।''

**भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 2(h) के अनुसार ''अनुबन्ध एक ऐसा ठहराव है जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है।''**

संक्षेप में अनुबन्ध को इस प्रकार भी समझा जा सकता है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**अनुबन्ध = ठहराव + राजनियम द्वारा प्रवर्तनीयता**

अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि एक ऐसा ठहराव जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही होता है, वह (ठहराव) अनुबन्ध नही हो सकता। किन्तु इन परिभाषाओं से भी यह स्पष्ट नही हो रहा है कि कौन – कौन से ठहराव राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होते है जो अनुबन्ध कहलाते है और कौने से ऐसे ठहराव है जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही होते है, इसलिये अनुबन्ध नही बनते है। अतः इसको स्पष्ट करने के लिए हम **धारा 10** का अध्ययन करते है जिससे यह स्पष्ट हो सकता है कि केवल वे ही ठहराव राजनयिम द्वारा प्रवर्तनीय होगें जिसमें धारा 10 के तत्व विद्यमान है।

**धारा 10 के अनुसार** ''समस्त ठहराव अनुबन्ध है यदि वे उन पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति से किये जाते है जिनमें अनुबन्ध करने की क्षमता है और जो वैधानिक प्रतिफल के लिए तथा वैधानिक उद्देश्य से किये जाते हो और जो इस अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित नही कर दिये गये हो। इसके अतिरिक्त यदि भारत में प्रचलित किसी विशेष राजनियम द्वारा अनिवार्य हो तो ठहराव लिखित हो अथवा साक्षी द्वारा प्रमाणित हो अथवा रजिस्टर्ड हो।'' इस प्रकार

**अनुबन्ध = ठहराव + धारा 10**

इससे यह स्पष्ट हो रहा है कि एक ठहराव तब अनुबन्ध कहलाता है जब उसमें उपरोक्त धारा 10 के आवश्यक तत्व विद्यमान हो।

**एक वैध के अनुबन्ध के आवश्यक तत्व/लक्षण**

वैध अनुबन्ध के लक्षण/तत्व ज्ञात करने के लिए अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(h) तथा धारा 10 का अध्ययन एवं विश्लेषण आवश्यक है। इन धाराओं के विश्लेषण से एक वैध अनुबन्ध के निम्नांकित आवश्यक तत्व स्पष्ट होते है।

1. **दो या दो से अधिक पक्षकार** – एक वैध अनुबन्ध का प्रथम आवश्यक लक्षण यह है कि इसमें कम से कम दो पक्षकार होने चाहिये। पक्षकारों की संख्या दो से अधिक भी हो सकती है किन्तु कोई भी एक पक्षकार स्वयं से ही अनुबन्ध नही कर सकता। अतः एक वैध अनुबन्ध के लिये दो पक्षकार नितान्त आवश्यक है।

2. **ठहराव** – (प्रस्ताव+स्वीकृति) अनुबन्ध में पक्षकारों के मध्य ठहराव होना आवश्यक है जिसमे एक पक्षकार द्वारा विधिवत रूप से प्रस्ताव किया जाना चाहिये और दूसरे पक्षकार द्वारा उस प्रस्ताव को उचित रूप से स्वीकार किया जाना चाहिये। इस प्रकार प्रस्ताव जब स्वीकृत हो जाता है तो पक्षकारों के मध्य ठहराव बन जाता है जैसे अ ने ब के सम्मुख अपनी कार 50000 रूपये में बेचने का प्रस्ताव रखा ब ने इसे स्वीकार कर लिया, यह दोनो के मध्य वैध ठहराव है।

3. **ठहराव का वैधानिक रूप से लागू होना** – ठहराव ऐसा हो जो वैधानिक रूप से संबंधित पक्षकारों पर लागू हो अर्थात ठहराव के परिणामस्वरूप पक्षकारों के दायित्व उत्पन्न होने चाहियें। अन्य शब्दों में, वह राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होना चाहियें।

4. **पक्षकारों के मध्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा** – एक वैध ठहराव में पक्षकारों के मध्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा का होना आवश्यक है अन्यथा वह अनुबन्ध नही होगा।

   लॉर्ड स्टोवेल **(Lord Stowell) ने डारलिम्पल बनाम डारलिम्पल के मामले में लिखा कि** – ''अनुबन्ध अवकाश के क्षणों का खेल नही होना चाहिये, यह केवल आनन्द या हंसी मजाक की वस्तु नहीं होनी चाहिये, जिनके परिणामों की पक्षकारों द्वारा कभी इच्छा नही की गई हों।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यदि पक्षकारों की इच्छा सामाजिक, पारिवारीक, राजनितिक या अन्य सम्बन्ध स्थापित करने की है तो वह अनुबन्ध नही है।

5. **पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता –** एक ठहराव को अनुबन्ध होने के लिए यह आवश्यक यह है कि वह ऐसे व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिये जो वैधानिक दृष्टि से अनुबन्ध करने की क्षमता (योग्यता) रखते हो। **भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार** केवल निम्नलिखित व्यक्ति ही अनुबन्ध करने के योग्य है –
   (i) जो व्यक्ति वयस्क है,
   (ii) जो व्यक्ति स्वस्थ मस्तिष्क का है,
   (iii) जो व्यक्ति किसी अन्य राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित नहीं है।

6. **पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति –**एक वैघ अनुबन्ध के लिए पक्षकारों के मध्य आपसी सहमति (धारा 13) होनी चाहिये। साथ ही यह आवश्यक है कि ऐसी सहमति स्वतंत्र हो।

   **भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 14 के अनुसार** सहमति उस समय स्वतंत्र मानी जायेगी, जब वह निम्नलिखित तत्वों में से किसी के कारण प्रदान नही की गई है।
   (i) उत्पीड़न – धारा 15
   (ii) अनुचित प्रभाव – धारा 16
   (iii) कपट – धारा 17
   (iv) मिथ्यावर्णन – धारा 18
   (v) गलती – धारा 20, 21, 22

7. **वैधानिक प्रतिफल तथा उद्देश्य :–** एक वैध अनुबन्ध के लिए यह भी आवश्यक है कि उसमें उचित एवं पर्याप्त प्रतिफल हो तथा प्रतिफल तथा उद्देश्य वैधानिक एवं वास्तविक हो। प्रतिफल नकद या वस्तु के रूप में हो सकता है या यह कोई कार्य या उससे विरती या वचन भी हो सकता है।

   **धारा 23** की निम्न दशाओं को छोड़कर अन्य दशाओं में प्रतिफल वैध माना जाता है –
   (i) वह राजनियम द्वारा वर्जित हो।
   (ii) वह इस प्रकार का हो कि यदि अनुमति दे दी जाय तो वह किसी राजनियम की व्यवस्था को निष्फल कर देगा।
   (iii) वह कपटमय हो।
   (iv) उससे किसी दूसरे व्यक्ति के शरीर या सम्पति को हानि पहुचंती हो।
   (v) न्यायालय उसे अनैतिक समझता हो।
   (vi) न्यायालय उसे लोकनीति के विरूद्ध समझता हो।

8. **ठहराव स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित न हो** – पक्षकारों के मध्य किया गया ठहराव ऐसा नही होना चाहिये जो अनुबघ अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित कर दिया गया हो।

   भारतीय अनुबन्ध अधिनियम द्वारा निम्नांकित ठहरावों को स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित कर दिया गया है जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही होते है–
   (i) अयोग्य पक्षकारों द्वारा किये गये ठहराव – धारा 11
   (ii) तथ्य सम्बन्धी गलती पर आधारित ठहराव – धारा 20
   (iii) विदेशी राजनियम की गलती वाले ठहराव –धारा 21
   (iv) अवैधानिक प्रतिफल तथा उद्देश्य वाले ठहराव – धारा 23
   (v) आंशिक रूप से वैधानिक प्रतिफल व उद्देश्य वाले ठहराव– धारा 24
   (vi) बिना प्रतिफल वाले ठहराव – धारा 25
   (vii) विवाह में रूकावट डालने वाले ठहराव – धारा 26
   (viii) व्यापार में रूकावट डालने वाले ठहराव – धारा 27
   (ix) वैधानिक कार्यवाही में रूकावट डालने वाले ठहराव – धारा 28
   (x) अनिश्चित अर्थ वाले ठहराव – धारा 29

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(xi) बाजी के ठहराव – धारा 30

(xii) असंम्भव कार्य को करने के ठहराव – धारा 56

9. **यदि आवश्यक हो तो ठहराव लिखित अथवा प्रमाणित अथवा रजिस्टर्ड हो –** यदि भारत में प्रचलित किसी विशेष अधिनियम का ऐसा आदेश हो तो ठहराव लिखित अथवा साक्षी द्वारा प्रमाणित अथवा रजिस्टर्ड होना चाहिये, अन्यथा वह व्यर्थ माना जायेगा। जैसे अवधि वर्जित ऋण के भुगतान का ठहराव, बीमा अनुबन्ध, विनिमय साक्ष्य विलेख पत्र, पंच निर्णय के समझोते आदि की वैधता के लिए इनका लिखित में होना आवश्यक है।

10. **अर्थ निश्चित हो –** अनुबन्ध के लिए यह भी आवश्यक है कि उसमें निश्चितता हो, क्योंकि जिन ठहरावों का अर्थ निश्चित न हो अथवा उनका अर्थ निश्चित नही किया जा सकता है, उन्हे राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही करवाया जा सकता।

11. **निष्पादन की संभावना –** ठहराव का प्रमुख उद्देश्य उनका निष्पादन है। अतः ठहराव ऐसा नही होना चाहिये जिसका निष्पादन न हो सके। यदि ऐसा ठहराव कर लिया जाता है जिसका निष्पादन संभव नही है तो वह वैध अनुबन्ध नही बन सकता।

**बोध प्रश्न –**

1. भारतीय अनुबन्ध अधिनियम कब से लागू हुआ ?
2. अनुबन्ध क्या है ? संक्षेप में समझायें ?
3. एक वैध अनुबन्ध के आवश्यक तत्वों की संक्षेप में विवेचना कीजिये ?

**''समस्त अनुबन्ध ठहराव होते है, किन्तु समस्त ठहराव अनुबन्ध नही होते''**

समस्त अनुबन्ध ठहराव होते है किन्तु समस्त ठहराव अनुबन्ध नही होते। यह कथन अनुबन्ध अधिनियम के प्रावधानों के आधार पर शत प्रतिशत सत्य है तथा अनुबन्ध एवं ठहराव की प्रकृति में अंतर करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार है। इसके अतिरिक्त उपरोक्त कथन अनुबन्ध तथा ठहराव के क्षेत्र को भी स्पष्ट करता है। ठहराव अनुबन्ध की अपेक्षा अधिक व्यापक होता है क्योंकि सभी अनुबन्धों में ठहराव का होना आवश्यक है। बिना ठहराव के अनुबन्ध की उत्पति नही हो सकती।

उक्त कथन की स्पष्ट रूप से विवेचना करने के लिए इसे दो भागो में विभाजित किया जा सकता हे।

I. समस्त अनुबन्ध ठहराव होते है।

II. समस्त ठहराव अनुबन्ध नही होते।

उपरोक्त कथनों की विवेचना करने से पूर्व इसमें प्रयुक्त **'ठहराव'** एवम् 'अनुबंध' शब्दों को समझना आवश्यक है ताकि इनकी विवेचना स्पष्ट रूप से की जा सकें।

**ठहराव से आशय – भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा** 2(e) के अनुसार ''प्रत्येक वचन तथा वचनों का प्रत्येक समूह जिसमें वचन एक दूसरे के लिए प्रतिफल होते है, ठहराव कहलाता है।''

इस धारा का विश्लेषण करने से ठहराव के सम्बन्ध में निम्नलिखित बाते स्पष्ट होती है।

(i) ठहराव में दो पक्षकार होते है।
(ii) ठहराव में वचन के बदले वचन दिया जाता है।
(iii) ठहराव में एक या अधिक पक्षकार वचनों का आदान प्रदान करते है।
(iv) एक पक्षकार का वचन दूसरे पक्षकार के लिए प्रतिफल होता है।

**अनुबन्ध से आशय** – भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(h) के अनुसार ''अनुबन्ध एक ऐसा ठहराव है जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है।''

उपरोक्त ठहराव एवम् अनुबन्ध के अर्थ को समझने के पश्चात् कथन की व्याख्या अध्ययन एवम सुविधा की दृष्टि से इस प्रकार की जा सकती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

I . **समस्त अनुबन्ध ठहराव होते है** – समस्त अनुबन्ध ठहराव होते है क्योंकि सभी अनुबन्धों में ठहराव का होना आवश्यक है। बिना ठहराव के अनुबन्ध की उत्पति ही नही होती है अर्थात जहां अनुबन्ध है वहा ठहराव अवश्य होगा। जिस प्रकार बिना परिधि के हम वृत की कल्पना नही कर सकते, उसी प्रकार बिना ठहराव के हम अनुबन्ध की कल्पना भी नही कर सकते। **ठहराव तो वास्तव में अनुबन्ध की आधारशिला है।**

जिस प्रकार बिना जड़ के वृक्ष की उत्पति अकल्पित है उसी प्रकार बिना ठहराव के अनुंबध की उत्पति भी अकल्पित है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ठहराव ही अनुबन्ध को जन्म देता है किन्तु केवल वैध ठहराव ही अनुंबध का रूप धारण कर सकते है। क्योंकि वे राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होते है। यदि किसी ठहराव को राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही कराया जा सकता तो वह अनुबन्ध नही बन सकता। **अतः यह कहा जा सकता कि ठहराव ही अनुबन्ध की वह बुनियाद (नींवं) है। जिस पर अनुबन्ध रूपी महल खड़ा किया जा सकता है।**

इसके अतिरिक्त अनुबन्ध में ठहराव की उपस्थिति के साथ वैधानिक उतरदायित्व एवम् राजनियम द्वारा प्रवर्तनीयता के तत्व विद्यमान रहते है। इसलिये ऐसे ठहराव राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होने के कारण अनुबन्ध कहलाते है। **इसलिए यह कहा जाना बिल्कुल सत्य है कि समस्त अनुबन्ध ठहराव होते है।**

राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय कराने के लिए यह आवश्यक है कि एक ठहराव (अनुबंध) में इसके सभी आवश्यक लक्षण/तत्व विधमान हो। यदि इन आवश्यक तत्वों में से किसी एक तत्व का अभाव है तो वह ''अनुबन्ध नही कहलाएगा। अनुबन्ध में निम्न आवश्यक तत्व होते है।

1. वैधानिक प्रस्ताव एवं स्वीकृति (ठहराव)
2. ठहराव का वैधानिक रूप से लागू होना।
3. पक्षकारों में वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा
4. पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता।
5. पक्षकारों की स्वतंत्र सहमति।
6. वैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य।
7. ठहराव स्पष्ट रूप व्यर्थ घोषित न हो।
8. यदि आवश्यक हो तो ठहराव लिखित, प्रमाणित व रजिस्टर्ड हो।

II. **समस्त ठहराव अनुबन्ध नही होते –**

कथन के दूसरे भाग में कहा गया है कि समस्त ठहराव अनुबन्ध नही होते है इसका कारण यह है कि केवल वे ही ठहराव अनुबन्ध बन सकते है जिन्हें राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय करवाया जा सकता है। व्यवहार में कई ऐसे ठहराव भी होते है जिन्हें राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही करवाया जा सकता। क्योंकि ऐसे ठहराव पक्षकारों के विरूद्ध वैधानिक दायित्व उत्पन्न नही करते है। **उदाहरण** के लिये अ द्वारा अपने मित्र ब को चाय पिलाने या सिनेमा दिखाने अथवा घूमने ले जाना स्वीकार करता है। यह ठहराव है, अनुबन्ध नही। अतः ऐसे ठहराव केवल ठहराव ही रहते है वे कभी भी अनुबन्ध नही बन सकते ।

**सैम्युल विलिस्टन** ने इस सम्बन्ध में कहा है कि – ''ठहराव एक तटस्थ शब्द है अनुबन्ध के लिए आवश्यक है कि दोनो पक्षकारों का वैधानिक दायित्व तथा अधिकार उत्पन करने का अभिप्राय रहा हो। इसका तात्पर्य यह है कि यदि अनुबन्ध का एक पक्षकार अपने दायित्व के पालन करने में त्रुटि करता है तो दूसरे पक्षकार को यह अधिकार होता है कि वह अनुबन्ध को राजनियम द्वारा लागू करवाकर अपने अधिकारों की रक्षा करे तथा दूसरे पक्षकार को अपने दायित्वों को पूरा करने हेतु बाध्य करें।

व्यवहार में अनेक ऐसे ठहराव भी होते है जिनमें पक्षकारों को बाध्य नही किया जा सकता है। ऐसे ठहराव केवल ठहराव ही रहते है। कभी भी अनुबन्ध नही बन सकते इनका पालन करना संबंधित पक्षकारों के सद्विश्वास एवं अन्तःकरण पर छोड़ दिया जाता है। ऐसे ठहराव अग्रलिखित है –

1. **पारिवारिक ठहराव** – परिवार के सदस्यों के बीच किया जाने वाला ठहराव पारिवारिक ठहराव कहलाता है। यदि परिवार के सदस्यों के बीच किये जाने वाले ठहराव का उद्देश्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना नही रहा हो तो वह ठहराव केवल ठहराव ही रहेगा कभी भी अनुबन्ध नही बन सकता। किन्तु यदि पारिवारीक ठहराव का उद्देश्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना हो तो यह वैध अनुबन्ध माना जायेगा। इस सम्बन्ध में **श्रीमती बालफोर बनाम श्री बालफोर का मामला** उल्लेखनीय है जिसमें विद्वान न्यायाधीश लॉर्ड एटकिन्स ने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

मुकदमें को खारिज करते हुए बतलाया कि इस ठहराव द्वारा वैधानिक दायत्वि उत्पन्न नही हुआ है तथा पक्षकारों का वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने का अभिप्राय नही था। अतः यह अनुबन्ध नही है।

2. **सामाजिक ठहराव** – व्यक्तियों को समाज में रहते हुए सामाजिक सम्बन्धो के आधार पर अनेक ठहराव करने पड़ते है। किन्तु ऐसे ठहरावों का उद्देश्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना नही होता है अतः ऐसे ठहरावों को भंग करने की दशा में पक्षकारों का कानून द्वारा प्रवर्तन कराने का कोई उद्देश्य नही होता अतः ऐसे ठहराव भी ठहराव ही रहते है, अनुबन्ध नही बन सकते।

3. **राजनीतिक ठहराव** – राजनीति में भी अनेक ठहराव करने पड़ते है कितुं ऐसे ठहरावों का भी उद्देश्य आपस में वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना नही रहता और न उन्हें राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय करवाया जा सकता है। अतः ऐसे ठहराव भी अनुबन्ध नही बनते है।

4. **धार्मिक ठहराव** – धार्मिक ठहराव भी प्रायः वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से नही किये जाते है। अतः ऐसे ठहराव भी सदैव ठहराव ही रहते है कभी भी अनुबन्ध नही बन पाते। सामान्यतः प्रतिफल के बदले एक पार्टी छोड़कर दूसरी पार्टी में मिलना या प्रतिफल के बदले पक्ष या विपक्ष में मतदान करने का ठहराव व्यर्थ ही नहीं अपितु लोकनीती के विरूद होने के कारण अवैध भी होते है।

5. **अयोग्य पक्षकारों द्वारा किये गये ठहराव** – केवल अनुबन्ध करने की योग्यता रखने वाले व्यक्तियों द्वारा किये गए ठहराव ही अनुबन्ध बन पाते है। इसलिए यदि ठहराव अयोग्य पक्षकारो द्वारा किया गया है तो वह ठहराव केवल ठहराव ही होता है, अनुबन्ध नही बन पाता।

   **भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 के अनुसार** निम्नलिखित व्यक्तियों में अनुबन्ध करने की योग्यता नही होती है।

   - अवयस्क
   - अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति
   - राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य घोषित व्यक्ति।

6. **स्वतंत्र सहमति के अभाव में किये गए ठहराव** – एक ठहराव तभी वैघ अनुबन्ध बनता है जबकि ऐसा ठहराव पक्षकारों ने स्वतंत्र सहमति के आधार पर किया हो। यदि एक पक्षकार ने दूसरे पक्षकार से सहमति निम्न आधारों पर प्राप्त की है तो वह स्वतंत्र नही मानी जायेगी।

   - उत्पीड़न
   - अनुचित प्रभाव
   - कपट
   - मिथ्यावर्णन
   - गलती

   स्वतंत्र सहमति के अभाव में एक वैध अनुबन्ध का निर्माण नही किया जा सकता। अतः केवल सहमति के आधार पर ठहराव किया जाता है तो ऐसे ठहराव भी ठहराव ही रहते है।

7. **अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य वाले ठहराव** – जिन ठहरावों का प्रतिफल एवं उद्देश्य अवैधानिक होता है, उन्हें राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही कराया जा सकता। अतः ऐसे ठहराव भी सदैव ठहराव ही बने रहते है वे अनुबन्ध नही बन पाते। इनमें अनैतिक कार्य करने एवम् लोक नीति के विरूद्ध ठहराव भी शामिल होते है।

8. **बिना प्रतिफल के ठहराव** – प्रत्येक ठहराव के लिए प्रतिफल का होना आवश्यक है ;कुछ अपवादों को छोड़करद्ध इसलिए बिना प्रतिफल के ठहराव भी सामान्यतः ठहराव ही रहते है, अनुबन्ध नहीं बन पाते।

9. **स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित ठहराव** – ऐसे ठहराव जिनको प्रचलित राजनियम ने स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित कर दिया हो, ठहराव ही रहते है, अनुबन्ध नही होते है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम ने भी कुछ ठहरावों को स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित किया है – जैसे विवाह में रूकावट डालने वाले ठहराव, व्यापार में रूकावट डालने वाले ठहराव, वैधानिक कार्यवाही में रूकावट डालने वाले ठहराव, अनिश्चित अर्थ वाले ठहराव, बाजी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के ठहराव, असंभव कार्य को करने के ठहराव आदि। दहेज निषेध अधिनियम 1961 की धारा 5 के अनुसार दहेज देने अथवा दहेज लेने के लिए किये गये सभी ठहराव भी व्यर्थ होते है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समस्त अनुबन्ध ठहराव होते है, किन्तु समस्त ठहराव अनुबन्ध नहीं होते है।

**बोध प्रश्न :**

1. ठहराव की परिभाषा दीजियें।
2. ''समस्त अनुबन्ध ठहराव होते है।'' व्याख्या कीजिए।
3. ''समस्त ठहराव अनुबन्ध नही होते है।'' इस कथन विवेचना कीजिए।

## ठहरावों/अनुबन्धों का वर्गीकरण
## (Classification of Agreements/ Contracts)

अनुबन्धों/ठहरावों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जाता सकता है। सामान्यतः इनका वर्गीकरण अग्रलिखित आधारो पर किया जाता है।

I. वैधता के आधार पर
II. अनुबन्ध करने की विधि के आधार पर
III. निष्पादन के आधार पर

इनका सविस्तार वर्णन इस प्रकार है।

I- **वैधता के आधार पर** – वैधता के आधार पर ठहराव/अनुबन्ध मुख्यरूप से सात प्रकार के होते है।

1. **वैध ठहराव** – जब एक व्यक्ति प्रस्ताव करता है और दूसरा व्यक्ति उसे स्वीकार कर लेता हैं तो वह ठहराव बन जाता है। इस प्रकार ठहराव दो व्यक्तियों के द्वारा दी गई पारस्परिक सम्मतियों का ही परिणाम है। **धारा 2(e)** ''प्रत्येक वचन तथा वचनों का प्रत्येक समूह जिसमें वचन एक दूसरे के लिये प्रतिफल होते है, ठहराव कहलाता है।
2. **वैध अनुबन्ध** – वैध अनुबन्ध वह ठहराव है जिसमें वैध अनुबन्ध के सभी आवश्यक लक्षण पाये जाते है। धारा 2(h) के अनुसार जो ठहराव राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है, अनुबन्ध कहलाता है। अतः जिस किसी भी ठहराव को राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय करवाया जा सकता हो, वैध अनुबन्ध कहलाता है।

**ठहराव व अनुबन्ध में अन्तर**

| क.स. | अन्तर का आधार | ठहराव (Agreement) | अनुबन्ध (Contract) |
|---|---|---|---|
| 1. | परिभाषा | प्रत्येक वचन तथा वचनों का समूह, जिनमें वचन एक दूसरे के लिए प्रतिफल होते है, ठहराव कहलाता है। | अनुबन्ध एक ऐसा ठहराव है जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है। |
| 2. | निर्माण | ठहराव=प्रस्ताव+स्वीकृति | अनुबंध=ठहराव+ राजनियम द्वारा प्रवर्तनीयता |
| 3. | प्रकृति | ठहराव वैधानिक तथा अवैधानिक दोनों ही प्रकार के हो सकते है। | केवल वैध ठहराव ही अनुबन्ध कहलाता है। |
| 4. | प्रवर्तनीयता | ठहराव राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय हो सकता है और नहीं भी हो सकता हैं। यह उसके स्वभाव पर निर्भर है। | अनुबन्ध राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होता है। |

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

| | | | |
|---|---|---|---|
| 5. | क्षेत्र | ठहराव का क्षेत्र अनुबन्ध की तुलना में अधिक व्यापक एवं विस्तृत होता है, क्योंकि जो ठहराव अनुबन्ध नहीं बन पाते हैं वे फिर भी ठहराव तो बने ही रहते है। | अनुबन्ध का क्षेत्र संकुचित होता है, क्योंकि सभी ठहराव अनुबन्ध नहीं बन सकते। |
| 6. | दायित्व | कुछ ठहराव ऐसे होते हैं जो ठहराव होते हुए भी वैधनिक दायित्व उत्पन्न नहीं करते, जैसे सामाजिक, धार्मिक पारिवारिक ठहराव, आदि | अनुबन्ध के अन्तर्गत दोनों पक्षकारों पर कुछ वैधानिक दायित्व उत्पन्न हो जाते हैं, जिन्हे पूरा करना आवश्यक है। |
| 7. | वैधानिक आवश्यकताएँ | एक ठहराव के लिए केवल प्रस्ताव एवं उसकी स्वीकृति ही आवश्यक हैं | एक वैध अनुबन्ध के लिए अनेक बातों का होना आवश्यक है, जैसे प्रस्ताव की स्वीकृति स्वतंत्र सहमति, अनुबन्ध करने की क्षमता, वैध प्रतिफल आदि। |
| 8 | सम्बन्ध | ठहराव की उत्पति अनुबन्ध से नही होती है, अतः सभी ठहराव अनुबन्ध नही होते। | अनुबन्ध की उत्पत्ति ठहराव से होती हैं, अतः सभी अनुबन्ध ठहराव होते है। |
| 9. | धारा | इसकी व्याख्या धारा 2;मद्ध में की गई है। | इसकी व्याख्या धारा 2;ीद्ध व 10 में की गई है। |

3. **व्यर्थ ठहराव** – कानून की दृष्टि में कुछ ऐसे ठहराव होते है जिनका कोई वैधानिक आधार नही होता तथा ऐसे ठहराव पक्षकारों के बीच किसी भी प्रकार के दायित्व एवं अधिकार उत्पन्न नही करते है। ऐसे ठहराव व्यर्थ या शून्य ठहराव कहलाते है। **धारा 2(g)** के अनुसार,, ''कोई ठहराव जो राजनियत द्वारा प्रवर्तनीय नही होता, उसे व्यर्थ ठहराव कहते है।''
4. **व्यर्थ अनुबन्ध** :– व्यर्थ अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जो प्रारम्भ में तो प्रवर्तनीय होता है किन्तु बाद में कानून में परिवर्तन, आकस्मिक असम्भवता अथवा पक्षकारों द्वारा रदद् करने के कारण वह अनुबन्ध रद्द् हो जाता है। धारा 2(j) के अनुसार, ''एक अनुबन्ध जब राजनियम द्वारा प्रवर्तित नही रहता, उस समय व्यर्थ हो जाता है, जब इसकी प्रवर्तनीयता समाप्त हो जाती है।''

**व्यर्थ ठहरव व व्यर्थ अनुबन्ध में अन्तर**

| **क. स.** | **अन्तर का आधार** | **व्यर्थ ठहराव** | **व्यर्थ अनुबन्ध** |
|---|---|---|---|
| 1. | आशय | व्यर्थ ठहराव का आशय एक ऐसे ठहराव से है जो राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही हेाता है। | व्यर्थ अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जो उस समय व्यर्थ हो जाता है जब वह राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही हो पाता है। |
| 2. | धारा | व्यर्थ ठहराव की व्याख्या अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(g) में की गई है। | व्यर्थ अनुबन्ध की व्याख्या अनुबन्ध अधिनियम की धारा 2(j) में की गई है। |
| 3. | समय | व्यर्थ ठहराव, ठहराव करते समय से ही व्यर्थ होता है। | व्यर्थ अनुबंध अनुबन्ध को प्रवर्तनीय कराते समय व्यर्थ होता हें |
| 4. | पुनस्थापना (लाभ लौटाना) | व्यर्थ ठहराव के अन्तर्गत प्राप्त लाभ को वापिस नही लौटाया या प्राप्त किया जा सकता है। | व्यर्थ अनुबन्ध के अन्तर्गत प्राप्त लाभ या धन को वापिस लौटाना पड़ता है। |
| 5. | कारण | व्यर्थ ठहराव होने के कारण पूर्व निश्चित है। जैसे पारिवारिक ठहराव, सामाजिक ठहराव, स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित ठहराव आदि। | व्यर्थ अनुबन्ध होने के कारणों को निश्चित नहीं किया जा सकता। |

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

| | | | |
|---|---|---|---|
| 6. | अधिनियम में उल्लेख | अनुबन्ध अधिनियम के अन्तर्गत कुछ व्यर्थ ठहरावों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। जैसे अवयस्क के साथ ठहराव, बिना प्रतिफल के ठहराव, विवाह में रूकावट डालने वाले ठहराव आदि | अनुबन्ध अधिनियम में स्पष्ट रूप से किसी भी व्यर्थ अनुबन्ध का उल्लेख नही किया गया है। |
| 7. | अवैध | व्यर्थ ठहराव में अवैध ठहराव भी सम्मिलित होते है। | व्यर्थ अनुबन्ध में अवैध ठहराव शामिल नहीं होते हैं। |
| 8. | क्षेत्र | इसका क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत है। | इसका क्षेत्र सीमित है। |

5. **व्यर्थनीय अनुबन्ध – धारा 2(i) के अनुसार** ''कोई ठहराव जो केवल एक या अधिक पक्षकारों की इच्छा पर ही प्रवर्तनीय हो, किन्तु दूसरे पक्षकार या पक्षकारों की इच्छा पर प्रवर्तनीय न हो तो उसे व्यर्थनीय अनुबन्ध कहते है'' ऐसे ठहराव के खण्डन करने अथवा अस्वीकार करने का अधिकार केवल पीड़ित पक्षकार को ही होता है। दोषी पक्षकार को ऐसा कोई अधिकार प्राप्त नही होता है।

**व्यर्थ ठहराव और व्यर्थनीय अनुबन्ध में अन्तर**

| क्र स. | अन्तर का आधार | व्यर्थ ठहराव | व्यर्थनीय अनुबन्ध |
|---|---|---|---|
| 1. | परिभाषा | जो ठहराव राजनियम द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है, वह व्यर्थ ठहराव होता है। | जो ठहराव केवल पीड़ित पक्षकार अथवा पक्षकारों की इच्छा पर ही प्रवर्तनीय हो और दूसरे पक्षकार अथवा पक्षकरों की इच्छा पर प्रवर्तनीय न हो, तो उसे व्यर्थनीय अनुबन्ध कहते है। |
| 2. | वैधता का अंश | व्यर्थ ठहराव आरम्भ से अन्त तक व्यर्थ ही रहता है तथा इसमें वैधता का अंश कभी नही रहता। | व्यर्थनीय अनुबन्ध आरम्भ में वैधानिक होता है जब तक पीड़ित पक्ष इसे व्यर्थ नही कर देता। |
| 3. | पक्षकारों की इच्छा | दोनो पक्षकारों में से किसी की भी इच्छा से यह वैध नही हो सकता है। | पीड़ित पक्ष यदि चाहे तो व्यर्थनीय अनुबन्ध को 'वैध अनुबन्ध' अथवा 'व्यर्थ अनुबन्ध का रूप दे सकता है। |
| 4. | अधिनियम की कठोरता | व्यर्थ ठहरावों के विषय में भारतीय अनुबन्ध अधिनियम अत्यन्त कठोर है, क्योंकि व्यर्थ ठहरावों को यह कभी भी मान्यता प्रदान नही करता। | व्यर्थनीय अनुबंधों के विषय में अनुबन्ध इतना अधिक कठोर नहीं है, क्योकि पीड़ित पक्ष की इच्छा पर उसे मान्यता प्रदान कर देता है। |
| 5. | आधार | व्यर्थ ठहराव उस समय होता है जब वह (i) किसी अवयस्क के साथ, (ii) बिना प्रतिफल के (iii) गलती पर आधारित, (iv) लोकनिति के विरूद्ध, (v) अनैतिक अथवा (vi) असम्भव होता है। | व्यर्थनीय अनुबन्ध उस समय होता है जब वह (i) उत्पीड़न, (ii) अनुचित प्रभाव, (iii) कपट (iv) मिथ्यावर्णन प्रभावित होता है। |
| 6. | स्वरूप परिवर्तन | एक व्यर्थ ठहराव सदैव ही व्यर्थ बना रहता है। इसके स्वरूप में परिवर्तन कभी नही होता। | व्यर्थनीय अनुबन्ध के स्वरूप में परिवर्तन होना आवश्यक है। इसे वैध अनुबन्ध अथवा व्यर्थ अनुबन्ध दोनो में एक स्वरूप पीड़ित पक्षकार की इच्छानुसार लेना पड़ता है। |
| 7. | क्षतिपूर्ति का अधिकार | व्यर्थ ठहराव में किसी भी पक्षकार को क्षतिपूर्ति की मांग करने का अधिकार नही होता है। | यदि पीड़ित पक्षकार व्यर्थनीय अनुबन्ध को रद्द करता है तो उसे क्षतिपूर्ति की मांग करने एवं प्राप्त |

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

| | | | |
|---|---|---|---|
| | | | करने का अधिकार है। |
| 8. | अधिकार का हस्तान्तरण | व्यर्थ ठहराव के अन्तर्गत प्राप्त वस्तु का हस्तान्तरण किसी तीसरे पक्ष को नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार तीसरा पक्ष अच्छा अधिकार प्राप्त नही कर सकता। | व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत अधिकार का हस्तान्तरण किया जा सकता है और तीसरे पक्ष को अच्छा अधिकार प्राप्त होता है, यदि उसने वस्तु को सद्भावना से तथा प्रतिफल स्वरूप लिया हो। |
| 9. | प्रवर्तन | व्यर्थ ठहराव को कोई भी पक्ष राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही करा सकता। | व्यर्थनीय अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर प्रवर्तनीय कराया जा सकता है। |
| 10. | प्रत्यास्थापना | यदि ठहराव के दोनों पक्षकारों को ठहराव के व्यर्थ होने का ज्ञान हो अथवा ठहराव के अन्तर्गत लाभ प्राप्त करने वाला अवयस्क है तो व्यर्थ ठहराव के अन्तर्गत प्रत्यास्थापना का अधिकार प्राप्त नही होता। | व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत सामान्यतः प्रत्यास्थापना का अधिकार दोनों पक्षकारों को प्राप्त हो जाता है अर्थात अनुबन्ध को रद्द कर दिया जाता है और दोनो पक्षकारों में आपस में यदि कोई लाभ हुआ हो तो उसे पुनः लौटाना पड़ता हैं। |

6. **अवैध ठहराव** – सामान्यतः वह ठहराव जो राजनियम द्वारा वर्जित होता है, देश के कानून या लोक नीति के विरूद्ध होता है या दण्डनीय प्रकृति का होता है वह अवैध ठहराव होता है।
7. **अप्रवर्तनीय अनुबन्ध** – अप्रवर्तनीय अनुबन्ध वे होते है जिनके अन्तर्गत अधिकार एवं दायित्व तो उत्पन्न हो जाते है किन्तु कुछ वैधानिक तकनीकी कमियों के कारण प्रवर्तित नही करवाया जा सकता है जैसे अनुबन्ध का लिखित न होना, पर्याप्त स्टाम्प न होना, रजिस्ट्री न होना आदि।

## II- अनुबन्ध करने की विधि के आधार पर –

अनुबन्ध करने की विधि के आधार पर अनुबन्धों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. **स्पष्ट अनुबन्ध** – जब अनुबन्ध करने की इच्छा से एक पक्षकार दूसरे पक्षकार के समक्ष मौखिक अथवा लिखित रूप से स्पष्ट शब्दों में प्रस्ताव रखता है और दूसरा पक्षकार भी मौखिक अथवा लिखित रूप से स्पष्ट शब्दों में उसकी स्वीकृति प्रदान करता है तो ऐसे ठहराव को स्पष्ट ठहराव/अनुबन्ध कहते है। पत्र लिखकर आमने–सामने या टेलीफोन पर मौखिक बातचीत के द्वारा स्पष्ट अनुबन्ध किया जा सकता है।
2. **गर्भित अनुबन्ध** – जब किसी अनुबन्ध में प्रस्ताव या स्वीकृति शब्दों के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से दी गई हो तो वह वर्णित अनुबन्ध कहलाता है ऐसा अनुबन्ध पक्षकारों के आचरण, कार्य या व्यवहार से उत्पन्न होता है।

   **उदाहरण** :– अ एक टेक्सी को हाथ का इशारा करके रोकता है और उसमें बैठकर रेलवे स्टेशन चलने के लिए कहता है। टेक्सी ड्राईवर रेल्वे स्टेशन की ओर चलता है। यह अ और ड्राइवर के बीच गर्भित अनुबन्ध है।
3. **अर्द्ध अनुबन्ध** – अर्द्ध अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है, जो पक्षकारों के स्पष्ट या गर्भित अनुबन्ध से उत्पन्न नही होता है और न ऐसा अनुबन्ध पक्षकारों की स्वेच्छा से किया जाता है। यह अनुबन्ध राजनियम द्वारा पक्षकारो पर थोपा जाता है और पक्षकारों के दायित्व उत्पन्न करता है, मानो कि उन्होंने अनुबन्ध किया हो।

   **उदाहरण** – अ ने ब नाम के पागल व्यक्ति व उसके बच्चों को जीवन की आवश्यकताओं की वस्तुएं देता है। अ को ब की सम्पति में से इन वस्तुओं का मूल्य प्राप्त करने का अधिकार है।

## III- निष्पादन के आधार पर – निष्पादन के आधार पर अनुबंधों को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

1. **निष्पादित अनुबन्ध** – जब अनुबन्ध के सभी पक्षकारों द्वारा अनुबन्ध के अन्तर्गत उत्पन्न हुए दायित्वों को पूरा कर दिया जाता है तो वह निष्पादित अनुबन्ध कहलाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उदाहरण – अ अपनी कार ब को बेचता है। अ अपनी कार सुपुर्द कर देता है और ब मूल्य चुका देता है। यह निष्पादित अनुबन्ध है।

2. **निष्पादनीय अनुबन्ध** – निष्पादनीय अनुबन्ध वह अनुबन्ध है जिसके पक्षकारों ने अपने–अपने दायित्वों का पालन नहीं किया है तथा उन्हें अपने–अपने दायित्वों का पालन करना है।

**बोध प्रश्न**

1. व्यर्थ ठहराव किसे कहते है ?
2. व्यर्थनीय अनुबन्ध की परिभाषा दीजिये ?
3. व्यर्थ ठहराव एवं व्यर्थ अनुबन्ध में अन्तर बताईयें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

# अध्याय 2.
# प्रस्ताव एवं स्वीकृति
## (Offer and Acceptance)

**प्रस्ताव** - (Offer or Proposal) प्रस्ताव एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के सामने किसी कार्य को करने अथवा न करने की अपनी इच्छा को प्रकट करना है। इस इच्छा को प्रकट करने का उद्देश्य दूसरे व्यक्ति की सहमति प्राप्त करना तथा उसके साथ ठहराव करना होता है।

**परिभाषाएं –**

**चेट्टी के अनुसार** – ''प्रस्ताव किसी कार्य को करने अथवा न करने का वचन है।''

**पोलक के अनुसार** – ''किसी व्यक्ति द्वारा स्वेच्छा से निश्चित शर्तो के आधार पर किसी ठहराव का पक्षकार बनने की इच्छा को व्यक्त करना प्रस्ताव कहलाता है।''

**भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 2(a) के अनुसार –** ''जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के सामने किसी कार्य को करने अथवा न करने के विषय में अपनी इच्छा इस उद्देश्य से प्रकट करता है कि दूसरा व्यक्ति उस कार्य को करने या न करने के विषय में अपनी सहमति प्रकट करे, तो कहा जात है कि पहले व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के सामने प्रस्ताव रखा।''

जो व्यक्ति प्रस्ताव रखता है उसके प्रस्तावक अथवा **वचनदाता** कहते है तथा जिस व्यक्ति के सामने प्रस्ताव रखा जाता है उसे स्वीकृता अथवा **वचनगृहिता** कहते है।

**प्रस्ताव के लक्षण –** एक वैध प्रस्ताव के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित होते है –

1. दो पक्षकारों का होना
2. प्रस्ताव किसी कार्य को करने के सम्बन्ध में हो सकता है।
3. प्रस्ताव किसी कार्य को नही करने के सम्बन्ध में हो सकता है।
4. प्रस्ताव दूसरे व्यक्ति की सहमति प्राप्त करने के उद्देश्य से इच्छा प्रकट करता है– प्रस्तावक को दूसरे पक्षकार के किसी कार्य को करने अथवा उससे विरत रहने के लिए, स्वीकृति/सहमति प्रदान करने के अभिप्राय से अपनी इच्छा प्रकट करनी चाहिये। यदि प्रस्ताव दूसरे पक्षकार की सहमति प्राप्त करने के उद्देश्य से नही किया जाता है तो वह प्रस्ताव नहीं है इसलिए वह स्वीकार भी नही किया जा सकता और परिणामस्वरूप अनुबन्ध नहीं हो सकता। अतः प्रस्ताव को समझने के लिये **प्रस्ताव करने की इच्छा** तथा **प्रस्ताव करने का नियत्रंण** को समझना आवश्यक है क्योकि ये दोनो प्रस्ताव से भिन्न होते है –

   (i) 'प्रस्ताव' तथा 'प्रस्ताव करने की इच्छा' – प्रस्ताव तथा प्रस्ताव करने की इच्छा में बहुत अन्तर है अतः प्रस्ताव करने की इच्छा को प्रस्ताव नही माना जा सकता, इसे केवल घोषणा कहा जाता है। यदि कोई व्यक्ति ऐसी घोषणा को स्वीकार कर भी लेता है तो वह प्रस्ताव की स्वीकृति नही मानी जा सकती। बातचीत में किसी इच्छा के कथनमात्र से ही मान्य वचन नही हो जाता है चाहे दूसरे पक्षकार ने उस कथन के आधार पर ही वह कार्य किया हो।

   इस सम्बन्ध में **हैरिस बनाम निकरसन** का मामला उल्लेखनीय है। जिसमें न्यायालय ने नीलाम द्वारा विक्रय करने के विचार को प्रस्ताव नही माना, बल्कि केवल प्रस्ताव करने की इच्छा माना था।

   (ii) **'प्रस्ताव' तथा 'प्रस्ताव' करने के 'निमत्रंण' में अन्तर** – प्रस्ताव तथा प्रस्ताव करने के नियत्रंण में भी अन्तर है। कुछ कथनों या विवरणों का स्वभाव ऐसा होता है कि वे प्रथम दृष्टि में तो प्रस्ताव प्रतीत होते है, किन्तु वास्तव में प्रस्ताव नही होते बल्कि 'प्रस्ताव' के 'निमत्रण' मात्र होते है। विभिन्न महत्वपूर्ण मामलों के निर्णयों द्वारा यह निश्चित हो चुका है कि निम्नलिखित प्रस्ताव नही है, बल्कि प्रस्ताव करने के निमत्रंण मात्र है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

A. निविदा मांगना
B. मूल्य सूचियां
C. बीमे का प्रस्ताव
D. पूछताछ का उतर
E. कम्पनी का प्रविवरण
F. रेल्वे की समय सारणी
G. सस्ती वस्तुएँ बेचने का विज्ञापन
H. लाउड स्पीकर द्वारा विक्रय का प्रचार

**प्रस्ताव के प्रकार**

प्रस्ताव के प्रकारों प्रमुख रूप से तीन वर्गो में वर्गीकृत करके अध्ययन किया जा सकता है–

**I.** प्रस्ताव करने की विधि के आभार पर।
**II.** प्रस्तावग्रहीताओं के आधार पर।
**III.** प्रस्ताव की प्रकृति के आधार पर।

**I. प्रस्ताव करने की विधि के आभार पर –** प्रस्ताव करने की विधि के आधार पर दो प्रकार के होते है :

1. **स्पष्ट प्रस्ताव** – जब प्रस्ताव लिखित या मौखिक शब्दों से किया जाता है तो स्पष्ट प्रस्ताव कहलाता है।

   **उदाहरण** – अ, ब को अपना मकान पांच लाख रूपये में बेचने का लिखित या मौखिक प्रस्ताव करता है यह स्पष्ट प्रस्ताव है।

2. **गर्भित प्रस्ताव** – शब्दों के अतिरिक्त किसी भी अन्य प्रकार से किया गया प्रस्ताव गर्भित प्रस्ताव कहलाता है। गर्भित प्रस्ताव का ज्ञान पक्षकारों के आचरण या व्यवहार से अथवा मामले की परिस्थितियों से किया जा सकता है।

   **उदाहरण –** अ सड़क पर जा रही एक टेक्सी को हाथ का इशारा करके रोकता है और उसे रेलवे स्टेशन चलने के लिये कहता है। यह अ का गर्भित प्रस्ताव है।

**II. प्रस्तावग्रहीताओं के आधार पर** – प्रस्तावग्रहीता के आधार पर प्रस्ताव दो प्रकार का हो सकता है –

1. **विशिष्ट प्रस्ताव** –जब कोई प्रस्ताव किसी व्यक्ति विशेष को किया जाता है तो वह विशिष्ट प्रस्ताव कहलाता है। विशिष्ट प्रस्ताव की स्वीकृति केवल उसी व्यक्ति विशेष द्वारा ही दी जा सकती है जिसको वह प्रस्ताव किया गया है।

2. **सामान्य प्रस्ताव** – सामान्य प्रस्ताव जन सामान्य या जनता के किसी वर्ग को किया गया प्रस्ताव है। ऐसा प्रस्ताव समस्त संसार या संसार के किसी एक भाग की जनता को किया गया प्रस्ताव हैं। अतः सामान्य प्रस्ताव को संसार का कोई भी व्यक्ति या जनता के विशिष्ट वर्ग का कोई भी व्यक्ति उस प्रस्ताव को स्वीकार कर सकता है। ऐसे प्रस्ताव की स्वीकृति की सामान्यतः पूर्व सूचना भी देना आवश्यक नहीं होता है। कोई भी व्यक्ति प्रस्ताव की शर्तो का पालन करके भी स्वीकृति दे सकता है।

   **उदाहरण –** सामान्य प्रस्ताव के सम्बन्ध में **श्रीमती कार्लिल बनाम कार्बोलिक स्मोक बॉल कम्पनी का मामला** विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस मामले में प्रतिवादी कार्बोलिक स्मोक बॉल कम्पनी ने 'कार्बोलिक स्मोक बॉल नाम की एक दवा बनाई। कम्पनी ने समाचार पत्र में इस दवा के विषय में यह विज्ञापन दिया कि उस व्यक्ति को, जो इस दवा (स्मोक बॉल) का प्रयोग बताई गई विधि के अनुसार दिन में तीन बार दो सप्ताह तक प्रयोग करने के उपरान्त भी जुकाम या इन्फ्लूएन्जा का शिकार होगा, उसे कम्पनी 100 पौण्ड का इनाम देगी। लोगों को विश्वास दिलाने के लिए कम्पनी ने 100 पौण्ड अलायन्स बैंक, रीजैन्ट स्ट्रीट में जमा करा दिये हैं। गत इन्फ्लूएन्जा की महामारी के समय इसको रोकने के लिए लाखों 'स्मोक बॉल' बिकीं और जिसने इसका प्रयोग किया उसे यह बीमानी नहीं हुई। विश्व में इसका सबसे सस्ता इलाज करने के लिए एक कार्बोलिक स्मोक बॉल का मूल्य केवल 10 शिलिंग 'डाक व्यय मुक्त' रखा गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वादी, श्रीमती कार्लिल ने इस विज्ञापन के आधार पर कार्बोलिक स्मोक बॉल्स खरीदी और निर्देशानुसार प्रयोग कीं, किन्तु वह इन्फ्लूएन्जा से पीड़ित हो गई। इस पर उन्होंने प्रतिवादी कम्पनी से 100 पौण्ड का इनाम पाने के लिए वाद प्रस्तुत किया। विद्वान न्यायाधीश हाकिन्स ने निर्णय दिया कि कम्पनी द्वारा किया गया एक सामान्य प्रस्ताव था जिसे समस्त विश्व में शर्तो का पालन करते हुए कोई भी व्यक्ति स्वीकार कर सकता था। चूँकि श्रीमती कार्लिल ने प्रस्ताव में दी गई शर्तो का पालन किया था, फलस्वरूप वह घोषित पुरस्कार या क्षतिपूर्ति की राशि प्राप्त करने की अधिकारिणी है।

**III. प्रस्ताव की प्रकृति के आधार पर** – प्रस्ताव की प्रकृति के आधार पर प्रस्ताव तीन प्रकार के हो सकते है।

1. **प्रति प्रस्ताव** – जब दो व्यक्ति एक–दूसरे की जानकारी के बिना एक–दूसरे को समान प्रकार के प्रस्ताव एक ही समय पर करते हैं तो ऐसे प्रस्तावों को प्रति–प्रस्ताव कहते हैं। ये प्रस्ताव प्रत्येक व्यक्ति के अपने स्वतन्त्र एवं एक–दूसरे के समान होते हैं। ऐसे प्रस्ताव किसी ठहराव को जन्म नहीं देते है। यद्यपि दोनों व्यक्ति समान कार्य को, समान शर्तो पर करना चाहते हैं। ये प्रस्ताव तब तक प्रस्ताव ही बने रहते हैं जब तक इनमें से कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के प्रस्ताव को स्वीकार कर नहीं लेता है।

2. **स्थानापन्न प्रस्ताव** – कभी एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सम्मुख किसी कार्य के सम्बन्ध में प्रस्ताव करता है और दूसरा व्यक्ति उस प्रस्ताव को कुछ परिवर्तन के साथ स्वीकार करता है तो ऐसी स्वीकृति, स्वीकृति नहीं कही जा सकती है। इसे स्थानापन्न प्रस्ताव कहते हैं। दूसरे शब्दो में, जब किसी प्रस्ताव की स्वीकृति प्रस्ताव की शर्तो के अतिरिक्त किन्हीं अन्य शर्तो पर होती है तो उस तथाकथित स्वीकृति को स्वीकृति नहीं बल्कि स्थानापन्न प्रस्ताव कहते है।

   स्थानापन्न प्रस्ताव रखने से मूल प्रस्ताव का निरस्तीकरण ही नही होता है बल्कि प्रस्तावित का नया प्रस्ताव भी अस्तित्व में आ जाता है। प्रस्तावित द्वारा स्थानापन्न प्रस्ताव रख लेने के बाद वह मूल प्रस्ताव को स्वीकार भी नहीं कर सकता है। क्योंकि ज्यों ही स्थानापन्न प्रस्ताव रखा जाता है मूल प्रस्ताव पूर्ववर्ती स्थानापन्न प्रस्ताव से स्वतः निरस्त हो जाता है।

3. **स्थायी प्रस्ताव** – स्थायी प्रस्ताव वह है जो किसी एक विशिष्ट अवधि तक एक या अनेक बार स्वीकृत किया जा सकता है। इसे ही चालू प्रस्ताव भी कहते हैं।

**प्रस्ताव सम्बन्धी वैधानिक नियम**

वैध प्रस्ताव करने के लिए कुछ वैधानिक नियमों का पालन करना अनिवार्य होता है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम एवं न्यायालयों के निर्णयों के आधार पर प्रस्ताव सम्बन्धी प्रमुख वैधानिक नियम निम्नानुसार है –

1. प्रस्ताव के लिए कम से कम दो पक्षकार होने चाहिये।
2. प्रस्ताव का उद्देश्य स्वीकृता की सम्मति प्राप्त करना होता है।
3. प्रस्ताव वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करने के आशय से किया जाना चाहिये।
4. प्रस्ताव विनय के रूप में होना चाहिये, आज्ञा के रूप में नही।
5. प्रस्ताव की शर्ते निश्चित होनी चाहिये।
6. प्रस्ताव स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है।
7. प्रस्ताव सामान्य अथवा विशिष्ट हो सकता।

जब कोई प्रस्ताव किसी निश्चित व्यक्ति के सामने रखा जाता है और वह व्यक्ति विशेष ही स्वीकार कर सकता है तो इसे विशेष प्रस्ताव कहते है।

जब कोई प्रस्ताव सामान्य जनता में अथवा व्यक्तियों के अनिश्चित समूह के सामने रखा जाता है तो इसे सामान्य प्रस्ताव कहते है। जब सामान्य प्रस्ताव को कोई विशेष व्यक्ति स्वीकार कर लेता है तो वह अनुबन्ध का रूप धारण कर लेता है।

सामान्य प्रस्ताव के सम्बन्ध में **कार्लिल बनाम कार्बोलिक स्माक बॉल कम्पनी** का मामला महत्वपूर्ण है। जिसमें विद्वान न्यायाधीश हाकिन्स ने सामान्य प्रस्ताव एवं उसकी उचित स्वीकृति मानने से पक्षकारों के बीच वैध अनुबन्ध माना था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. **प्रस्ताव का संवहन आवश्यक है** – प्रस्ताव का संवहन आवश्यक है अर्थात प्रस्ताव उस व्यक्ति के सम्मुख अवश्य पहुचं जाना चाहिये जिसके सम्मुख वह किया गया है अन्यथा स्वीकृति अथवा वैध अनुबन्ध का निर्माण नही किया जा सकता ।

इस सम्बन्ध में **लालमन शुक्ल बनाम गौरीदत्त का मामला** महत्वपूर्ण है जिसमें न्यायाधीश श्री बनर्जी ने मामले के निर्णय में लिखा कि लालमन शुक्ल को पुरस्कार के प्रस्ताव की जानकारी नही थी, अतः वह उसे स्वीकार भी नही कर सकता था। क्योकि अनुबन्ध होने के लिए प्रस्ताव की जानकारी एवं उसकी स्वीकृति आवश्यक है।

9. **प्रस्ताव के साथ प्रस्ताव की विशिष्ट शर्तो का संवहन भी आवश्यक है–** प्रस्ताव के वैध होने के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रस्ताव की विशेष शर्ते भी प्रस्ताव के साथ ही बता दी जानी चाहिये यदि प्रस्ताव के स्वीकृत होने के बाद प्रस्ताव की शर्तो की जानकारी होती है तो ऐसी शर्तें स्वीकृता पर लागू नही होगी।

10. **भविष्य में स्वीकृति प्रदान करने के ठहराव अनुबन्ध नही होते** – यदि कोई ऐसा ठहराव किया जाता है कि दूसरा पक्षकार अपनी स्वीकृति भविष्य में किसी तिथि को देगा तो इस स्वीकृति से अनुबन्ध का निर्माण नही होता। क्योकि उस भावी तिथि पर दूसरा पक्षकार अस्वीकृति भी दे सकता है।

## प्रस्ताव का संवहन

## (Communication of Proposal/Offer)

**अनुबन्ध अधिनियम की धारा 4 के अनुसार** ''प्रस्ताव का संवहन उस समय पूर्ण माना जाता है जब वह उस व्यक्ति की जानकारी में आ जाता है, जिसको वह प्रस्ताव किया गया है। इस धारा का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि प्रस्ताव का संवहन तब पूर्ण हुआ माना जाता है जबकि प्रस्ताव की जानकारी उस व्यक्ति को हो जाती है जिसका प्रस्ताव किया गया है। यदि उसे प्रस्ताव की जानकारी नही होती है तो प्रस्ताव का संवहन पूरा नही होता है।

**उदाहरण** – अ पत्र द्वारा ब से अपना मकान 50000 रूपये में बेचने का प्रस्ताव करता है, तो इस प्रस्ताव का संवहन उस समय पूरा हो जाता है जब ब को यह पत्र मिल जाता है।

इस सम्बन्ध में एक बात और महत्वपूर्ण है कि यदि कोई व्यक्ति प्रस्ताव की जानकारी के बिना ऐसा कोई कार्य करता है जो प्रस्ताव के अनुकूल है तो भी प्रस्ताव का संवहन हुआ नही माना जायेगा। **लालमन शुक्ल बनाम गौरीदत्त** के मामले में यह स्पष्ट हो चुका है कि बिना प्रस्ताव की जानकारी के दी गई स्वीकृति व्यर्थ होती है।

## प्रस्ताव का खण्डन

## (Revocation of Offer)

प्रस्ताव के खण्डन से आशय प्रस्ताव को समाप्त करना है। ''प्रस्तावक के विरूद्ध स्वीकृति का संवहन पूरा होने से पहले किसी भी समय प्रस्ताव का खण्डन किया जा सकता है किन्तु इसके बाद नहीं।'' **(धारा 5)**

इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि प्रस्तावक अपने प्रस्ताव का खण्डन करना चाहता है तो वह वचनगृहिता द्वारा स्वीकृति देने से पहले–पहले किसी भी समय प्रस्ताव का खण्डन कर सकता है। स्वीकृति दे देने के बाद प्रस्तावक का प्रस्ताव को खण्डन करने का अधिकार समाप्त हो जाता है।

उदाहरण– अ अपना मकान बेचने का प्रस्ताव पत्र द्वारा ब के पास भेजता है। ब पत्र द्वारा अ के प्रस्ताव को स्वीकार करता है। अ अपने प्रस्ताव का खण्डन ब द्वारा पत्र डाक में डालने से पहले किसी भी समय कर सकता है, बाद में नहीं'।

**प्रस्ताव के खण्डन की विधियॉ –** अधिनियम की **धारा 6** में प्रस्ताव के अन्त होने की परिस्थितियॉ बतलाई गई है, जो इस प्रकार है –

1. प्रस्तावक द्वारा दूसरे पक्षकार को प्रस्ताव के खण्डन की सूचना देकर।
2. यदि प्रस्ताव में स्वीकृति के लिए एक निश्चित अवधि दी गई हो तो उस अवधि के व्यतीत होने पर।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. यदि अवधि न दी गई हो तो उचित अवधि व्यतीत होने पर।
4. स्वीकृता द्वारा प्रस्ताव की किसी विशेष शर्त को पूरा न करने पर।
5. प्रस्तावक की मृत्यु अथवा उसके पागल होने की दशा में।
6. स्वीकृति की मुत्यु अथवा उसके पागल होने की दशा में।
7. प्रस्ताव करने के बाद कानून में परिवर्तन होने पर।
8. प्रति–प्रस्ताव या स्थानापन्न प्रस्ताव करने पर।
9. प्रस्ताव को अस्वीकार कर देने पर।

**बोध प्रश्न** :

1. सामान्य प्रस्ताव किसे कहते है।
2. प्रस्ताव व प्रस्ताव के निमत्रंण को स्पष्ट कीजियें।
3. प्रस्ताव संबंधी वैधानिक नियमों का संक्षेप में उल्लेख कीजियें।

## स्वीकृति

वैध ठहराव के लिए यह आवश्यक है कि उससे संबंधित प्रस्ताव और स्वीकृति हो। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की **धारा 2(b) के अनुसार** ''जब वह व्यक्ति जिसके सामने प्रस्ताव रखा जाता है, उसके प्रति अपनी सम्मति दे देता है तो प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता है।'' इस प्रकार एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के प्रस्ताव पर अपनी सहमति देना ही स्वीकृति कहलाती है।

**स्वीकृति सम्बन्धी वैधानिक नियम –**

स्वीकृति के वैध होने के लिए वैधानिक नियमों का पालना करना आवश्यक होता है। कुछ नियम अनुबन्ध अधिनियम में दिये गये है तथा कुछ नियम समय–समय पर दिये गये निर्णयों के आधार पर निश्चित किये गये हैं। संक्षेप में, उन सभी महत्वपूर्ण वैधानिक नियमों का यहां उल्लेख कर रहे है।

1. स्वीकृति उसी व्यक्ति द्वारा दी जानी चाहिये है जिसको प्रस्ताव किया गया है। किन्तु सामान्य प्रस्ताव को कोई भी व्यक्ति स्वीकार कर सकता है।
2. स्वीकृति पूर्व तथा शर्तरहित होनी चाहियें।
3. स्वीकृति प्रस्ताव की शर्तो के अनुसार होनी चाहियें।
4. स्वीकृति प्रस्ताव में निश्चित की गई विधि के अनुसार होनी चाहियें।
5. निश्चित विधि के अभाव में स्वीकृति उचित व प्रचलित विधि से होनी चाहियें।
6. स्वीकृति निर्धारित समय पर दी जानी चाहियें।
7. निश्चित समय के अभाव में उचित समय में स्वीकृति होनी चाहियं।
8. स्वीकृति स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकती है।
9. स्वीकृति आचरण (Conduct) द्वारा भी हो सकती है।
10. स्वीकृति का संवहन होना आवश्यक है।
11. प्रस्ताव की जानकारी के बिना स्वीकृति देना व्यर्थ है।
12. स्वीकृति अधिकृत व्यक्ति द्वारा ही दी जानी चाहिये।
13. एक बार अस्वीकृत प्रस्ताव को पुनः प्रस्तुत किये बिना स्वीकार नही किया जा सकता है।
14. स्वीकृति वचन पूरा करने के उद्देश्य से दी जानी चाहिये।
15. प्रस्ताव की स्वीकृति, प्रस्ताव का अन्त होने अथवा वापस लिये जाने के पूर्व ही होनी चाहिये।
16. मौन रहना स्वीकृति की विधि नही है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**स्वीकृति का संहवन** (Communication of Acceptance)

स्वीकृति का संवहन प्रस्तावक एवं स्वीकृर्ता के विरूद्ध भिन्न–भिन्न समय पर पूरा हुआ माना जाता है। **धारा 4** में स्वीकृति के संवहन सम्बन्धी नियम इस प्रकार है –

(i) **प्रस्तावक के विरूद्ध संवहन** – प्रस्तावक के विरूद्ध स्वीकृति का संवहन तब पूरा हुआ माना जाता है जबकि स्वीकृर्ता ने स्वीकृति भेज दी हो तथा इस स्वीकृति को वापस लेना उसकी शक्ति के बाहर हो गया हो।

(ii) **स्वीकृर्ता के विरूद्ध संवहन** – स्वीकर्ता के विरूद्ध स्वीकृति का संवहन तब पूरा हुआ माना जाता है जबकि स्वीकृति प्रस्तावक की जानकारी में आ जाती है।

उदाहरण (i) ब यदि अ के प्रस्ताव की पत्र द्वारा स्वीकृति करता है तो स्वीकृति का संवहन अ के विरूद्ध (ब के पक्ष में) उस समय पूरा होगा जब ब स्वीकृति पत्र डाक में छोड़ देता है।

(ii) ब के विरूद्ध (अ के पक्ष मे) स्वीकृति का संवहन उस समय पूरा होगा जब ब द्वारा भेजा गया स्वीकृति पत्र अ को प्राप्त हो जाय।

**स्वीकृति के संवहन के सामान्य नियम**

स्वीकृति के संवहन के सम्बन्ध में सामान्य नियम इस प्रकार है–

1. **डाक द्वारा भेजी गई स्वीकृति के सम्बन्ध में** – यदि डाक के द्वारा स्वीकृति भेजी जाती है तो ज्यों ही स्वीकृति का पत्र डाक में डाल दिया जाता है, स्वीकर्ता की ओर से प्रस्तावक के विरूद्ध स्वीकृति का संवहन पूरा हुआ मान लिया जाता है। इस दशा में यह माना जाता है कि डाकघर प्रस्तावक के एजेन्ट के रूप में कार्य कर रहा है।

2. **स्वीकृति का पत्र देरी से पॅहुचना –** यदि स्वीकृता स्वीकृति पत्र पर पता सही एवं उचित ढ़ग से लिखकर डाक में डाल देता है और स्वीकृति पत्र देरी से पहुंचता है तो भी प्रस्तावक उस स्वीकृति से बाध्य किया जा सकेगा।

   यह निर्णय हो चुका है कि यदि स्वीकृर्ता ने पता ठीक लिखा है तो स्वीकृति पत्र के खो जाने या देरी से पहुंचने अथवा कभी न पहुचंने या गलत जगह पहुंचने के लिए स्वीकर्ता उतरदायी नही होगा और स्वीकृति का संवहन पूर्ण माना जायेगा।

3. **गलत पता लिखने की दशा में** – यदि स्वीकर्ता ने स्वीकृति पत्र पर सही एवं उचित ढ़ग से पता नही लिखा है और वह स्वीकृति पत्र प्रस्तावक को नही मिलता है तो उस स्वीकृति से प्रस्तावक बाध्य नही होगा। जैसे पटना के स्थान पर पाटन, मुजफ्फरनगर की जगह मुजफ्फरपुर।

   किन्तु यदि प्रस्तावक ने स्वयं ही अपना पता गलत लिखकर भेजा है और वही पता स्वीकर्ता स्वीकृति पत्र पर लिखकर भेजता है तथा वह पत्र प्रस्तावक को नही मिलता है तो भी स्वीकर्ता प्रस्तावक को अपनी स्वीकृति से बाध्य कर सकेगा।

4. **टेलीफोन पर स्वीकृति का संवहन** – टेलीफोन पर स्वीकृति का संवहन एवं टेलीफोन पर अनुबन्ध उसी समय हुआ माना जाता है जबकि स्वीकृति प्रस्तावक को सुनाई दे जाये। जब तक स्वीकृति सुनाई नही देती है जब तक अनुबन्ध का जन्म नही होता है।

   उच्चतम न्यायालय ने भगवानदास गोवर्धनदास केडिया बनाम गिरधारीलाल पुरूषोतमदास एण्ड कम्पनी के विवाद में एक निर्णय दिया है कि टेलीफोन पर उस समय अनुबन्ध हो जाता है जबकि प्रस्तावक ने स्वीकृति को सुन लिया है।

5. **टेलेक्स पर स्वीकृति का संवहन** – टेलेक्स पर किये गये प्रस्ताव की स्वीकृति का संवहन उस समय पूरा माना जाता है जबकि वह टेलेक्स पर आ जाती है।

6. **अनुबन्ध का स्थान –** अनुबन्ध में उसके स्थान का अत्यन्न महत्व होता है। अनुबन्ध के स्थान के आधार पर ही न्यायालय के कार्य क्षेत्र का निर्धारण होता है। स्वीकृति का स्थान निश्चित करने के ये नियम है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(i) यदि एक ही स्थान पर प्रस्ताव और उसकी स्वीकृति प्रदान की गई है तो वही स्थान अनुबन्ध का होगा।

(ii) यदि प्रस्ताव एवं स्वीकृति डाक के माध्यम से पत्र द्वारा की गई है तो जिस स्थान पर स्वीकृति का पत्र डाक में डाला गया है, वही अनुबन्ध का स्थान है।

(iii) तार द्वारा यदि स्वीकृति भेजी गई है तो तार देने का स्थान ही अनुबन्ध का स्थान माना जाता है।

(iv) टेलीफोन पर यदि प्रस्ताव एवं स्वीकृति प्रदान की गई है तो जिस स्थान पर स्वीकृति प्राप्त हुई है। वह स्थान ही अनुबन्ध का स्थान माना जायेगा।

(v) टेलेक्स द्वारा यदि स्वीकृति प्रदान की गई है तो जिस स्थान पर स्वीकृति प्राप्त हुई है वह स्थान ही अनुबन्ध का स्थान होगा।

7. **अनुबन्ध का समय** – यदि मौखिक स्वीकृति दी गई है तो जिस समय स्वीकृति दी गई है वही समय अनुबन्ध का होगा। डाक में स्वीकृति का पत्र डालने का समय ही अनुबन्ध होने का समय है। टेलीफोन तथा टेलेक्स पर, जिस समय प्रस्तावक को स्वीकृति का सन्देश प्राप्त होता है, वही समय अनुबन्ध होने का समय माना जाता है।

8. **एजेन्ट की दशा में स्वीकृति का संवहन** – यदि किसी व्यक्ति ने अपना प्रस्ताव अपने एजेन्ट के माध्यम से भेजा है तो स्वीकर्ता अपनी स्वीकृति भी उसी एजेन्ट को दे सकता है। एजेन्ट को स्वीकृति देते ही प्रस्तावक के विरूद्ध स्वीकृति का संवहन पूरा हुआ माना जायेगा। एजेन्ट इस स्वीकृति का सन्देश चाहे अपने मालिक के पास पॅहुचांवे अथवा नही पॅहुचावें।

## स्वीकृति का खण्डन
## (Revocation of Acceptance)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 5** में ही स्वीकृति के खण्डन के विषय में बताया गया है। स्वीकृति का खण्डन ''स्वीकर्ता के विरूद्ध स्वीकृति का संवहन होने के पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है, किन्तु बाद में नहीं।''

उक्त धारा का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि प्रस्तावक को स्वीकृति पत्र मिलने से पहले किसी भी समय स्वीकृति का खण्डन किया जा सकता है। किन्तु स्वीकृति पत्र पॅहुचने के बाद स्वीकृति का खण्डन नही किया जा सकता है। यदि स्वीकृति पत्र द्वारा भेजी जा चुकी है तो उसका खण्डन तार द्वारा किया जा सकता है।

**उदाहरण** – धारा 5 के साथ ही स्वीकृति के खण्डन का उदाहरण दिया गया है। अ अपना मकान बेचने का प्रस्ताव पत्र द्वारा ब के पास भेजता है। ब पत्र द्वारा अ के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है। ब अपनी स्वीकृति का खण्डन तार द्वारा करता है। यदि ब का तार अ के पास स्वीकृति पत्र पहुंचाने के बाद पहुंचता है तो खण्डन वैध नही माना जायेगा।

इस सम्बन्ध में यह बात महत्वपूर्ण है कि यदि स्वीकृति पत्र और स्वीकृति के खण्डन का तार दोनों एक साथ ही पहुंचते है तो स्वीकृति का खण्डन माना जायेगा। क्योंकि सामान्य व्यक्ति सामान्यतः पत्र की अपेक्षा तार को पहले पढ़ता है।

**बोध प्रश्न**

1. स्वीकृति के संवहन संबंधी सामान्य नियम बताइये ?
2. स्वीकृति का खण्डन कब किया जा सकता है ?
3. व्यावहारिक प्रश्न – अ डाक द्वारा पत्र भेजकर ब से अपना मकान बेचने का प्रस्ताव करता है, ब इस प्रस्ताव को डाक द्वारा पत्र भेजकर स्वीकार करता है। कब ब अपनी स्वीकृति का खण्डन कर सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

# अध्याय 3.
# पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता
# (Capacity of Parties to Contract)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 10** में यह स्पष्ट किया गया है कि अनुबन्ध उन पक्षकारों द्वारा किया जाना चाहिये जिनमें ''अनुबन्ध करने की क्षमता हो।'' इस प्रकार पक्षकारों में 'अनुबन्ध करने की क्षमता' अनुबन्ध का एक प्रमुख लक्षण है।

**अनुबन्ध करने की क्षमता से आशय** – अनुबन्ध करने की क्षमता से आशय अनुबन्ध से संबंधित पक्षकारों में अनुबन्ध करने की वैधानिक क्षमता से है अर्थात अनुबन्ध के पक्षकार अनुबन्ध करने के लिये योग्य होने चाहियें।

**भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 11 में** अनुबन्ध करने की क्षमता (योग्यता) के सम्बन्ध में व्यवस्था की गई है, जो इस प्रकार है– '' प्रत्येक वह व्यक्ति अनुबन्ध करने के योगय है जो संबंधित राजनियम के अनुसार वयस्क आयु का है और जो स्वस्थ मस्तिष्क का है तथा वह किसी राजनियम, जो उस पर लागू होता है, के द्वारा अनुबांध करने के अयोग्य घोषित नही कर दिया गया है।''

उपरोक्त धारा 11 का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि अनुबन्ध करने के योग्य व्यक्ति में तीन बाते होनी चाहिये–

(i) वह संबंधित राजनियम के अनुसार वयस्क हो,
(ii) वह स्वस्थ मस्तिष्क का हो,
(iii) उसे किसी अन्य राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने से अयोग्य घोषित न कर दिया गया हो।

**धारा 11** का यदि दूसरे दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाय तो हम कह सकते है कि निम्न व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता नही रखते है–

I- अवयस्क
II- अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति,
III- राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य घोषित व्यक्ति।

अनुबन्ध करने की क्षमता के सम्बन्ध में सामान्यतः राजनियम यह मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति अनुबन्ध करने के योग्य है। यदि कोई भी व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता के न होने के आधार पर अनुबन्ध के दायित्व से मुक्त होना चाहता है तो उसे स्वयं की अपनी ऐसी अयोग्यता सिद्ध करनी पड़ेगी।

## I. अवयस्क (Minor)

अवयस्क व्यक्ति से आशय किसी भी ऐसे व्यक्ति से है, जिसने अपने देश के संबंधित अधिनियम के अनुसार वयस्कता की आयु प्राप्त नही की है। **भारतीय वयस्कता अधिनियम 1875** की **धारा 3** के अनुसार वयस्कता की आयु के सम्बन्ध में दो नियम है –

(i) **सामान्य वर्ग के व्यक्तियों के लिए** – (18 वर्ष) सामान्यतः जिस व्यक्ति ने अपनी उम्र के 18 वर्ष पूरे कर लिये है वह व्यक्ति वयस्क है किन्तु किसी दशा में वह व्यक्ति वयस्क नही माना जा सकता, जिसने अपनी उम्र के 18 वर्ष पूरे नही किये है। यदि कोई व्यक्ति 18 वर्ष 364 दिन का है तो भी वह व्यक्ति अवयस्क ही है और यदि वह अनुबन्ध करता है तो अनुबंध, अवयस्क द्वारा किया गया माना जायेगा।

(ii) **विशेष वर्ग के व्यक्तियों के लिये** – (21 वर्ष) यदि न्यायालय ने किसी अवयस्क के लिए अथवा उसकी सम्पति के लिए अथवा दोनों के लिए कोई संरक्षक (Guardian) नियुक्त किया है अथवा जिसकी सम्पति उक्त आयु से पहले 'कोर्ट ऑफ वार्ड्स' (Court of Wards) के निरीक्षण में है तो ऐसा व्यक्ति 21 वर्ष की आयु पूरी कर लेने के पश्चात् ही 'वयस्क' माना जायेगा।

**क्या अवयस्कता अनुबन्ध करने के लिए वास्तव में अयोग्यता है ?**

अवयस्क होना अनुबन्ध करने के लिए अयोग्यता तो अवश्य है किन्तु वास्तव में यह न्यायालयों द्वारा अवयस्कों के पक्ष में प्रदान की गई सुरक्षा है। अतः स्पष्ट है कि अवयस्क के प्रति कानून संरक्षणात्मक है। **इन सम्बन्ध में**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

**सांमड** का यह कथन पर्याप्त प्रकाश डालता है कि ''राजनियम अपने अवयस्कों की रक्षा करता है तथा उनकी सम्पति एवं अधिकारों को सुरक्षित रखता है, उनके अभावों को क्षमा करता है, उनकी और से वैधानिक कार्यवाही में उनकी सहायता करता है। न्यायालय उनके परामर्शदाता होते है। नियुक्त पंच उनके सेवक होते है और राजनियम उनका संरक्षक होता है।''

**अवयस्क द्वारा किये गये अनुबन्ध के सम्बन्ध में नियम**

भारत में अवयस्क द्वारा किये गये अनुबंधों के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम है –

1. **अवयस्क के साथ किया गया अनुबन्ध पूर्णतः व्यर्थ है –**

   (i) एक अवयस्क के साथ किया गया ठहराव न केवल व्यर्थ है, वरन् पूर्णतः व्यर्थ है। अवयस्क अथवा दूसरे पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय नहीं होता है। इसे प्रारम्भ सें ही व्यर्थ एवं अस्तित्वहीन माना जाता है, अतः यह प्रभाव शून्य होता है।

   अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 में भी यह स्पष्ट कर दिया गया है कि अवयस्क में अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं होती अतः वह अनुबन्ध करने के लिए पूर्ण अयोग्य है। इसका प्रभाव यह है कि अवयस्क को दूसरा पक्षकार अनुबन्ध के द्वारा बाध्य नही कर सकता है।

   (ii) अवयस्क लाभ प्राप्त कर सकता है किन्तु क्षति सहने के लिए उतरदायी नहीं हो सकता। अतः अवयस्क से अनुबन्ध अपने जोखिम पर ही किया जा सकता है, अवयस्क के जोखिम पर नही।

   **मोहरी बीबी बनाम धर्मोदास घोष** के मामले में स्पष्ट कहा गया है कि अवयस्क द्वारा किया गया अनुबन्ध न केवल व्यर्थ है वरन् पूर्णतः व्यर्थ है।

2. **अवयस्क अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सम्पति की जमानत पर ऋण ले सकता है–** वैसे तो अवयस्क साधारणतः ऋण लेने, कोई सम्पति खरीदने अथवा अन्य अनुबन्ध करने के योग्य नही है, किन्तु अवयस्क अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपनी सम्पति की जमानत पर ऋण ले सकता है, जो वैधानिक दृष्टि से मान्य होता है। इसी प्रकार, यदि कोई व्यक्ति अवयस्क के रहन–सहन के स्तर के अनुसार जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, तो वह व्यक्ति उन आवश्यकताओं का मूल्य अवयस्क की सम्पति से पाने का अधिकारी है, अवयस्क स्वयं उसके लिये उतरदायी नही है।

3. **वयस्क होने पर अनुबन्ध का पुष्टिकरण नही –** अवयस्कता के समय जो अनुबन्ध अवयस्क ने किया है, उसका पुष्टिकरण (Ratification) वयस्क होने पर नही किया जा सकता। इस नियम का आधार यह है कि अवयस्क के साथ किया गया अनुबन्ध प्रारम्भ से ही व्यर्थ होता है और व्यर्थ अनुबन्ध का पुष्टिकरण नही किया जा सकता है।

   **उदाहरण–** अ एक अवयस्क है वह ब से 10,000 रूपये उधार लेता है और प्रतिज्ञा पत्र लिख देता है। अ वयस्क होते ही पुराने प्रतिज्ञा पत्र के बदले नया प्रतिज्ञा पत्र लिख देता है। यहा पर ब, अ को धनराशि के भुगतान के लिए बाध्य नही कर सकता क्योंकि नये प्रतिज्ञा–पत्र के लिए कोई अलग से प्रतिफल नही दिया गया है। वह केवल पुराने ऋण का पुष्टिकरण मात्र है, जो व्यर्थ है।

4. **अवयस्क द्वारा अपने लाभ के लिए अनुबन्ध करना–** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम अवयस्क को वचनग्रहिता होने से नही रोकता। अतः अवयस्क को लाभ प्राप्त करने के योग्य मानता है। यद्यपि ऐसे किसी अनुबन्ध को अवयस्क के विरूद्ध लागू नही किया जा सकता।

5. **अवयस्क के संरक्षक द्वारा अनुबन्ध –** अवयस्क के संरक्षक के साथ किया गया अनुबन्ध वैध होता है और संरक्षक के विरूद्ध लागू किया जा सकता है, यदि–

   (i) संरक्षक उस ठहराव को करने के योग्य है।
   (ii) वह ठहराव अवयस्क के लाभ के लिए किया गया है।
   (iii) वह अपनी शक्तियों के अन्तर्गत अनुबन्ध करता है।

6. **अवयस्क के विरूद्ध अवरोध का सिद्धान्त लागू नहीं –** एक अवयस्क के साथ अवरोध या गत्यावरोध या प्रदर्शन का सिद्धान्त लागू नही होता है। यदि कोई अवयस्क मिथ्यावर्णन या कपट करके अपने आपको वयस्क बताता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है और किसी अन्य पक्षकार को अपने साथ अनुबन्ध करने के लिए प्रेरित कर लेता है तो ऐसी दशा में भी उसे अनुबन्ध के निष्पादन करने के लिए उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता है। **मोहरी बीबी बनाम धर्मोदास घोष** के मामले में भी इसी आधार पर निर्णय किया था, जिसमें धर्मोदास ने अपनी आयु जानबुझकर गलत बताकर, अनुबन्ध किया था, फिर भी निर्णय धर्मोदास के पक्ष में दिया गया था।

**उदाहरण –** अ एक अवयस्क है, वह जानबूझकर ब को अपने आपको वयस्क बताकर अपना मकान बेचने का ठहराव करता है। ब, अ को मकान देने के लिए बाध्य नही कर सकता है क्योकि वह अवयस्क है उस पर अवरोध का सिद्धान्त लागू नही होता है।

7. **प्रत्यास्थापना (**Restitution**)** यदि पक्षकारों ने ठहराव के अन्तर्गत कोई वस्तु या धनराशि प्राप्त की है अथवा दी है तो उस ठहराव के व्यर्थ होने पर प्राप्त की गई अथवा दी गई वस्तु या धनराशि को लौटा देना ही प्रत्यास्थापना कहलाता है। ऐसा करने से अनुबन्ध के पक्षकार ठहराव करने से पूर्व की स्थिति में लौट आते है। इसे प्रत्यास्थापना कहते है।

   यदि किसी अवयस्क ने माल ;वस्तुद्ध को उधार प्राप्त किया है तो उसका भुगतान तो न्यायालय द्वारा प्राप्त नही किया जा सकता, किन्तु वह वस्तु विक्रेता को वापस दिलवाई जा सकती है। यदि अवयस्क ने उस वस्तु को बेचकर रूपया प्राप्त कर लिया है तो न्यायालय द्वारा उन रूपयों को व्यय करने से रूकवाया जा सकता है। यदि उसने उन रूपयों को अभी तक व्यय नही किया है और विक्रेता को दिलवाये जा सकते है। यदि उसने उन रूपयों को व्यय कर दिया है तो उससे (अवयस्क) कुछ भी प्राप्त नही किया जा सकता है।

8. **समझौता** – किसी विवाद के उत्पन्न होने के बाद अवयस्क के साथ उसके बारे में यदि कोई समझौता किया जाता है तो ऐसा ठहराव व्यर्थ होता है। इस नियम का आधार यह है कि अवयस्क में अपने हित के बारे में सोचने व निर्णय लेने की परिपक्वता नही होती इसलिये अवयस्क को सरलता से बहलाया फुसलाया जा सकता हे।

9. **अवयस्क प्रतिभू के प्रति दायी नहीं –** यदि कोई व्यक्ति किसी अवयस्क के लिए गारण्टी देता है तो ऐसा व्यक्ति (प्रतिभू) ऋणदाता के प्रति दायी है। किन्तु अवयस्क को उस वचन को पूरा करने के लिए बाध्य नही किया जा सकता।

10. **अवयस्क एजेन्ट के रूप में दायी नहीं –** अवयस्क को एजेन्ट के रूप में नियुक्त किया जा सकता है। ऐसे एजेन्ट के समस्त कार्यो के लिए उसका नियोक्ता ;च्तपदबपचंसद्ध ही दायी है। ऐसे एजेन्ट की समस्त लापरवाही, कर्त्तव्य पालन न करने अथवा जानबूझकर गलती करने के कारण भी होने वाली क्षति की पूर्ति उसका नियोक्ता (मालिक) उससे नही करा सकता। इस प्रकार, अवयस्क एजेन्ट अपने मालिक को अन्य पक्षकारों के प्रति अपने कार्यो के लिए दायी बना सकता है, किन्तु वह स्वयं अपने मालिक के प्रति दायी नही बनाया जा सकता।

11. **अवयस्क एक साझेदार के रूप में –** भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 30 के अनुसार अवयस्क साझेदारी फर्म में साझेदार नहीं हो सकता किन्तु समस्त साझेदारों की सहमति से उसे फर्म के लाभ के लिए साझेदार के रूप में सम्मिलित किया जा सकता है। फर्म के कार्यो के लिए अवयस्क व्यक्तिगत रूप में दायी नही होता।

12. **कम्पनी में अवयस्क –** यदि कम्पनी के अन्तर्नियम वर्जित न करे तो अवयस्क उस कम्पनी का अंशधारी हो सकता है। किन्तु अवयस्क अंशों की मांगों के लिए व्यक्तिगत रूप से उतरदायी नहीं हो सकता है फिर भी वह कम्पनी की शेष सम्पति में (यदि कोई हो) भागीदार होता है। अतः सुरक्षा एवं सुविधा की दृष्टि से अवयस्क को पूर्व प्रदत्त अंश ही देने चाहियें।

    कम्पनी विधान मण्डल ने **नन्दिता जैन बनाम बेनेट कोलमेन एण्ड कम्पनी** के मामले में निर्णय दिया कि ''यदि कोई अवयस्क अपने वास्तविक संरक्षक के माध्यम से किसी के अंश अपने नाम हस्तान्तरित करने की प्रार्थना करता है तो उसे अंशधारी बनाया जा सकता है, यदि अंश पूर्वदत्त हो।''

13. **अवयस्क एवं वस्तु विक्रय अधिनियम** – वस्तु विक्रय अधिनियम में भी अवयस्क को सुरक्षा प्रदान की गई है। कोई भी अवयस्क माल खरीदने अथवा बेचने के अनुबन्ध में दायी नही बनाया जा सकता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

14. **अवयस्क एवं विनिमय साध्य विलेख अधिनियम** – अवयस्क विनिमय साध्य विलेख पत्र लिख सकता है, उनका हस्तान्तरण कर सकता है, बेचान कर सकता है, और सुपुर्दगी दे सकता है। ऐसी दशा में यद्यपि सब पक्षकार दायी होते है किन्तु अवयस्क उतरदायी नही होता है।

15. **अवयस्क संयुक्त वचनदाता के रूप में** – यदि कोई अवयस्क कुछ अन्य वयस्क वचनदाताओं के साथ वचनदाता बनता है तो उस अनुबन्ध में वयस्क वचनदाता ही उतरदायी होते है, अवयस्क को उतरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।

16. **अवयस्क के माता–पिता दायी नही–** अवयस्क द्वारा किये गये ठहराव के लिए उनके माता–पिता का कोई दायित्व नही होता है चाहे वह दायित्व जीवन की आवश्यक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में ही क्यो न हो।

17. **अवयस्क और दिवालिया अधिनियम** –किसी अवयस्क को राजनियम द्वारा दिवालिया घोषित नही किया जा सकता। इस नियम का आधार यह है कि अवयस्क अनुबन्ध करने के अयोग्य है। अतः वह देनदारी के लिए दायी नही बनाया जा सकता, इस कारण वह देनदार नही हो सकता और जब देनदार नही हो सकता तो दिवालिया भी घोषित नही किया जा सकता। वह अपने जीवन की आवश्यकताओं के मूल्य के लिए भी दायी नही होता, उसकी सम्पति ही दायी हो सकती है।

18. **दण्डनीय अपराध के लिए उतरदायी** – यदि किसी अवयस्क ने किसी व्यक्ति के शरीर अथवा सम्पति को नुकसान पहुॅचायां है तो अवयस्क दोषी माना जायेगा और वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहराया जायेगा। इस नियम का आधार यह है कि ऐसे अपराधों में भी अवयस्क को मुक्त कर दिया जायेगा तो अवयस्कों में अपराध प्रवृति बहुत अधिक बढ़ जायेगी।

19. **विवाह का अनुबन्ध** – अवयस्क द्वारा अपनी अवयस्कता की अवधि में विवाह के लिए किया गया अनुबन्ध व्यर्थ होता है। यदि कोई अवयस्क भविष्य में वयस्कता प्राप्त कर लेने के पश्चात् विवाह न करने का ठहराव करता है तो यह ठहराव भी व्यर्थ होगा।

20. **नौकरी का अनुबन्ध** – अवयस्क के साथ किया गया नौकरी का ठहराव भी व्यर्थ होता है चाहे यह ठहराव अवयस्क के हित में ही क्यो न हो। ऐसे ठहराव को कोई भी पक्षकार प्रवर्तित नही करा सकता।

**बोध प्रश्न –**

1. अनुबन्ध करने की क्षमता से आप क्या समझते है।
2. अवयस्क व्यक्ति किसे कहते है।
3. अवयस्क द्वारा किये गये अनुबन्धों के सम्बन्ध में अवयस्क की स्थिति को संक्षेप में समझाइये।
4. व्यावहारिक प्रश्न– अ, ब के निवेदन पर उसकी अवयस्कता में अपनी सेवाएँ अर्पित करता है। वयस्क होने पर अ से समझौता करता है कि उसकी अवयस्कता में अ ने जो सेवाएँ अर्पित की है, उसकी क्षतिपूर्ति करेगा। क्या यह समझौता वैध है ?

## II- अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति (Person of Unsound Mind)

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 11 में अवयस्क के अतिरिक्त दूसरा वर्ग जो अनुबन्ध करने की योग्यता नही रखता है, वह 'अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्तियों का है। अनुबन्ध करने के योग्य होने के लिए पक्षकारों का मस्तिष्क स्वस्थ होना चाहियें। अस्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति अनुबन्ध करने की क्षमता नही रखता।

**स्वस्थ मस्तिष्क से आशय** –

**धारा 12 के अनुसार** – ''अनुबन्ध करने के उद्देश्य से ऐसा कोई भी व्यक्ति स्वस्थ मस्तिष्क का कहा जायेगा, जो अनुबन्ध करते समय उसे समझने की क्षमता रखता हो तथा उस अनुबन्ध से उसके हितों पर पड़ने वाले प्रभाव के विषय में विवेकपूर्ण निर्णय करने की क्षमता रखता हो।''

**व्याख्या –** उपरोक्त परिभाषा का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि स्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति वह होता है जो –

(i) अनुबन्ध करने के समय अनुबन्ध को समझने की क्षमता रखता हो तथा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ii) उस अनुबंधों से अपने हितों पर पड़ने वाले प्रभावों को समझने की क्षमता रखता है तथा विवेकपूर्ण निर्णय कर सकता है।

उक्त धारा का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि **'अनुबन्ध करने के समय'** ही स्वस्थ मस्तिक का होना आवश्यक है, पहले अथवा बाद में उसका मस्तिष्क स्वस्थ होना अनिवार्य नहीं है। किन्तु कभी–कभी ऐसी परिस्थितियॉ भी आती है जबकि अनुबन्ध का पक्षकार कभी कभी तो स्वस्थ मस्तिष्क का रहता है तथा कभी कभी अस्वस्थ मस्तिष्क का हो जाता है। **धारा 12 के अनुसार** ऐसी परिस्थितियों में निम्नलिखित नियम लागू होते है –

1. **सामान्यतः अस्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति** – यदि अनुबन्ध किसी ऐसे पक्षकार के साथ किया जाता है जो सामान्यतः अस्वस्थ मस्तिष्क का रहता है। किन्तु कभी कभी उसका मस्तिष्क स्वस्थ हो जाता है तो ऐसा व्यक्ति उस समय अनुबन्ध कर सकता है जबकि उसका मस्तिष्क स्वस्थ हो जाता है।

   **उदाहरण–** अ एक पागलखाने में ऐसा रोगी है जो प्रतिदिन लगभग 20 घण्टे अस्वस्थ मस्तिष्क का रहता है किन्तु उसका मस्तिष्क प्रतिदिन प्रातः लगभग 4 घण्टे स्वस्थ रहता है। अ इस 4 घण्टे के समय में अनुबन्ध करने के योग्य माना जायेगा, जब उसका मस्तिष्क स्वस्थ है।

2. **कभी कभी अस्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति –** यदि अनुबन्ध किसी ऐसे व्यक्ति के साथ किया जा रहा है जो सामान्यतः स्वस्थ मस्तिष्क का रहता है किन्तु कभी कभी उसका मस्तिष्क अस्वस्थ हो जाता है तो वह उस समय अनुबन्ध नही कर सकता जब उसका मस्तिष्क अस्वस्थ है। वह शेष समय में अनुबन्ध कर सकता है।

   **उदाहरण** – अ को बहुत तेज बुखार है और वह अपनी सुध बुध(बेहोश) खो चुका है ऐसे समय उसमें अनुबन्ध करने की क्षमता नही है और वह उस समय अनुबन्ध नही कर सकता, जब बुखार उतर जायेगा तब अनुबन्ध कर सकता है।

**अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्तियों के प्रकार –**

सामान्यतः निम्नलिखित प्रकार के व्यक्तियों को अस्वस्थ मस्तिष्क का माना जाता है।

1. **मूर्ख, पैदायशी मूर्ख अथवा मूढ़ व्यक्ति** (idiot) मूढ़ व्यक्ति वह होता है जिसमें जन्म से ही सोचने समझने की क्षमता नही होती है किन्तु उस व्यक्ति को मूढ़ नही माना जाता है जिसमें थोड़ी बहुत समझने की शक्ति होती है। यदि कोई व्यक्ति अपनी आयु,, अपना निवास स्थान, अपने पिता का नाम आदि बातों की जानकारी दे सकता है, उसे मूढ़ नहीं माना जाता है। मूढ़ व्यक्ति के साथ किये गये अनुबन्ध पूर्ण रूप से व्यर्थ होते है।

   यदि किसी मूढ़ व्यक्ति को जीवन की आवश्यकताएं प्रदान की गई है तो उनका मूल्य उस मूढ़ की सम्पति से वसूल किया जा सकता है, किन्तु उनके लिए वह व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं होगा।

2. **पागल** (Lunatic) पागल व्यक्ति उसे कहते है जिसमें सोचने समझने की शक्ति थी किन्तु किसी कारण से वह शक्ति अव्यवस्थित हो गई है। ऐसा व्यक्ति कभी स्वस्थ तथा कभी अस्वस्थ मस्तिष्क का हो जाता है। यदि किसी पागल का मस्तिष्क कभी कभी स्वस्थ हो जाता है तो ऐसे समय किया गया अनुबन्ध मान्य होता है। किन्तु यदि उसे किसी न्यायालय ने भारतीय पागलपन अधिनियम ;प्दकपंद स्नदंबल ।बजद्ध के अधीन पागल घोषित कर दिया गया है तो वह व्यक्ति कभी कभी स्वस्थ मस्तिष्क का होने पर भी तब तक अनुबन्ध नही कर सकेगा, जब तक न्यायालय का यह आदेश प्रभावशाली रहेगा और यदि वह ऐसा करता है तो ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ होगा।

3. **शराबी अथवा प्रमादी व्यक्ति – (Drunkard or deliriour person)** शराबी से आशय उस व्यक्ति से जिसने इतनी अधिक शराब का सेवन किया हैं जिसके फलस्वरूप वह अपने समझने की शक्ति अथवा अनुबन्ध का उसके हितों पर पड़नें वाले प्रभावों को विवेकपूर्ण रूप से समझने में असमर्थ हो गया हैं इसलिए नशे में अथवा प्रमाद की अवस्था में किये गये अनुबन्ध व्यर्थ होते हैं क्योंकि शराबी का मस्तिष्क सहमति योग्य नही रहता है।

   यदि एक व्यक्ति अल्पमात्रा में मदिरा का सेवन करता हैं या मदिरापान के फलस्वरूप केवल उतेजित हो गया हैं किन्तु उसने अपनी समझने की शाक्ति पूर्वतः नहीं खोई है तो साधारणतः वह इस आधार पर (शराबीपन) अनुबन्ध को रद्ध नहीं कर सकता। शराबी पुनः सामान्य अवस्था में आने पर, जबकि वह सोचने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

समझने के योग्य हो जाता हैं अर्थात स्वस्थ मस्तिष्क का होता हैं वह अनुबन्ध कर सकता हैं, जो वैध होता है। जीवन की आवश्यकताओं के अनुबन्ध के लिए ये उतरदायी होते है।

**सिद्ध करने का भार (Burden of Proof)** अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्तियों के साथ हुए अनुबन्धों में विवाद होने पर तथ्यों को सिद्ध करने का भार निम्न प्रावधानों के अनुरूप उत्पन्न होता है–

1. **सभी व्यक्ति स्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति** – कानून की दृष्टि में सभी व्यक्ति स्वस्थ मस्तिष्क के हैं।
2. **स्वस्थता सिद्ध करने का भार** – यदि न्यायालय में कोई विवाद उत्पन्न होता हैं तो पक्षकारों को स्वयं की अथवा अन्य पक्षकार की स्वस्थता सिद्ध करनी पडती हैं। इस सम्बन्ध में सिद्ध करने का भार निम्न नियमों के अन्तर्गत उत्पन्न होता है।

   (i) **सामान्यतः स्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति की दशा में** – यदि कोई व्यक्ति सामान्यतः स्वस्थ मस्तिष्क का रहता हैं किन्तु कभी – कभी अस्वस्थ मस्तिष्क का हो जाता हैं और वह अनुबन्ध को रद्ध करवाना चाहता है तो उसे स्वयं को ही यह सिद्ध करना पड़ेगा कि उसने अनुबन्ध अस्वस्थ मस्तिष्क के समय किया था।

   (ii) **सामान्यतः अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति की दशा में** – यदि कोई व्यक्ति सामान्यतः अस्वस्थ मस्तिष्क का रहता हैं किन्तु कभी कभी स्वस्थ मस्तिष्क का हो जाता हैं और वह अनुबन्ध को रद्ध करवाना चाहता हैं तो वह अनुबन्ध को रद्ध कर सकता है। किन्तु अनुबन्ध को रद्ध होने से बचाने के लिए दूसरे पक्षकार को यह सिद्ध करना पड़ेगा कि अनुबन्ध स्वस्थ मस्तिष्क के समय ही किया गया है।

   (iii) **एक बार अस्वस्थ मस्तिष्क का सिद्ध होने पर पुनः स्वस्थ सिद्ध करने का भार –** यदि किसी व्यक्ति को एक बार अस्वस्थ मस्तिक का घोषित कर दिया जाता है तो ऐसे घोषित व्यक्ति को ही यह सिद्ध करना पडता है कि वह स्वस्थ मस्तिष्क का है।

**प्रभाव –** अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्तियों द्वारा किये गये **अनुबन्ध व्यर्थ होते है।**

**बोध प्रश्न –**

1. धारा 12 को संक्षेप में समझाइयें ?
2. अस्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्तियों के प्रकार बताइये ?

## III. राजनियम द्वारा अयोग्य घोषित व्यक्ति

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 का एक अंश इस प्रकार है – वे व्यक्ति जो किसी राजनियम द्वारा (जिसके अधीन वे है) अनुबन्ध करने के अयोग्य घोषित नहीं है अनुबन्ध करने की क्षमता रखते हे। इससे यह ज्ञात होता हैं कि कुछ व्यक्तियों को राजनियम ने अनुबन्ध करने से अयोग्य घोषित कर दिया हैं। ऐसे कुछ व्यक्ति निम्नानुसार है।

1. **विदेशी शत्रु** – शत्रु राष्ट्र का निवासी विदेशी शत्रु कहलाता है। विदेशी शत्रु के साथ किये गये समस्त समझोते अवैध एवं व्यर्थ होते हैं। शत्रु देश के किसी व्यापारी के साथ कोई अनुबन्ध नही किया जा सकता है किन्तु यदि आवश्यक हो तो केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति प्राप्त करना आवश्यक है।
2. **विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति** – कुछ व्यक्तियों को विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं राष्ट्राध्यक्ष एवं विशिष्ट व्यक्ति (राष्ट्रपति, विदेशी शासक, राजदूत ) इस श्रेणी में आते है। ये व्यक्ति भारतीय न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र के बाहर है। इनको कुछ विशेष सुविधाएँ प्राप्त होती है जिनके अनुसार उन पर भारतीय न्यायालयों में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता हैं। यदि आवश्यक हो तो केन्द्रीय सरकार की पूर्व लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है।
3. **कैदी अथवा अपराधी** – अपराधी से आशय ऐसे व्यक्ति से हें जिसे न्यायालय द्वारा कारावास की सजा सुनाई गई है। कारावासी व्यक्ति अपने कारावास काल में कोई अनुबन्ध नहीं कर सकता है। यदि सजा कम कर दी जाती है तो सजा समाप्ति के बाद से अनुबन्ध कर सकता है। इस प्रकार जब तक न्यायालय द्वारा दिया गया दण्ड पूरा न हो जाये अथवा उसको क्षमा न कर दिया जाए तब तक कैदी या अपराधी अनुबन्ध करने के योग्य नही हो सकता है ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **दिवालिया** – एक दिवालिया व्यक्ति द्वारा किया गया ठहराव भी व्यर्थ होता है क्योंकि दिवालिया घोषित होने के साथ ही उसमें अपनी सम्पति के सम्बन्ध में अनुबन्ध करने की क्षमता समाप्त हुई मानी जाती है। दिवालिया घोषित होने पर उसकी सम्पूर्ण सम्पति राजकीय प्रापक के अधिकार में आ जाती है।

5. **विवाहित स्त्रियां** – भारत में अनुबन्ध करने के सम्बन्ध में स्त्रियों तथा पुरूषों को समान महत्व दिया गया है। विवाहित स्त्री सम्पति अधिनियम की धारा 4 के अनुसार प्रत्येक विवाहित स्त्री चाहे वह हिन्दु, मुसलमान, सिख, ईसाई या पारसी हो अपनी अलग से सम्पति रख सकती है तथा अनुबन्ध कर सकती है। किन्तु उसके अनुबन्धों से उत्पन्न होने वाले दायित्वों के लिए उनका स्त्री धन ही दायी होगा। उसके द्वारा किये गये अनुबन्धों के लिए उनका पति दायी नहीं होगा।

   राजनियम के अनुसार प्रत्येक पति अपनी पत्नी का भरण–पोषण करने लिए उतरदायी है। अतः यदि कोई पति अपनी पत्नी का भरण पोषण करने से इन्कार करता हैं तो सभी जातियों की विवाहित स्त्रियां जीवन की आवश्यक वस्तुओं के लिए दूसरे पक्षकारों से अनुबन्ध कर सकती हैं। ऐसे अनुबन्धों के लिए उनके पति उतरदायी होते हैं किन्तु पति अपनी स्थिति के अनुसार ही अपनी पत्नी की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए उतरदायी है।

   यदि कोई स्त्री अपनी इच्छा से अपने पति से अलग हो जाती हैं ओर उसका आश्रय छोड़ देती हैं तो उसका पति उसके अनुबन्धों के लिए चाहे वे जीवन की आवश्यकताओं के लिए ही क्यों न हो, उतरदायी नही होगा।

6. **क्लब** – (ब्सनइे) असमामेलित क्लब, सोसाइटीज, एसोसियेशन एवं संस्थाओं का वैधानिक अस्तित्व नहीं होता है अतः अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य है। अतः उनके नाम से अथवा उनकी और से किये गये अनुबन्धो के सम्बन्ध में न तो न्यायालय में वाद चला सकते है और न उन पर वाद चलाया जा सकता है।

7. **समामेलित कम्पनियां** – कम्पनी एक कृत्रिम वैधानिक व्यक्ति हैं। इसमें अनुबन्ध करने की स्वयं में क्षमता नहीं होती है। इसका कोई शारीरिक अस्तित्व नहीं होता अतः इनकी और से अनुबन्ध करने वाला इनका अध्यक्ष, प्रबन्ध संचालक, प्रबन्धक या सचिव या अन्य कोई अधिकृत व्यक्ति ही होता हैं यदि सम्बन्धित अधिकृत व्यक्ति के हस्ताक्षर नहीं हो तो वह अनुबन्ध नहीं कर सकता है। इसी प्रकार एक समामेलित संस्था अपने सीमानियम तथा अन्तर्नियमों की सीमा के भीतर रहकर ही अनुबन्ध कर सकती हैं। इनके बाहर कार्य अनाधिकृत माने जाते हैं और वे मान्य नहीं होते हैं कम्पनी उसके लिए उतरदायी नहीं होती है।

**बोध प्रश्न –**

1. विवाहित स्त्री के साथ किये गये अनुबन्ध के संम्बन्ध में प्रावधान को संक्षेप में समझाइये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

## अध्याय 4.

# स्वतन्त्र सहमति
# (Free Consent)

वैध अनुबन्ध के लिए पक्षकारों के मध्य सहमति तो होनी चाहिए किन्तु यह भी आवश्यक है कि वह सहमति स्वतन्त्र हो। अतः वैध अनुबन्ध होने के लिए एक महत्वपूर्ण आवश्यक लक्षण है– पक्षकारों के बीच स्वतन्त्र सहमति

**सहमति का आशय** – भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की **धारा 13 के अनुसार –** ''जब दो या अधिक व्यक्ति एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत होते हैं तो उसें 'सहमति' कहा जाता है।

**व्याख्या** – उपरोक्त धारा का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता हैं कि 'सहमति' के तीन प्रमुख लक्षण है।

1. सहमति के लिए कम से कम दो व्यक्ति अवश्य होने चाहिए ।
2. अनुबन्ध का विषय एक समय में एक ही हो।
3. दोनों पक्षकार एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत हो।

भारत के **उच्चतम न्यायालय ने सैन्ट्रल नेशनल बैक बनाम यूनाइटेड कॉमर्शियल बैंक** के मामले में निर्णय देते हुए कहा कि' यदि अनुबन्ध करते समय समान भाव से दोनो पक्षकारों के बीच स्वीकृति नही दी गई है तो अनुबन्ध व्यर्थ होगा।

इस सम्बन्ध में **रैफिल्स बनाम विचिलहौस** के मामले में आर ने 125 रूई की गाँठें खरीदने का अनुबन्ध डब्ल्यू से किया, जिसे 'पियरलेस' नामक जहाज द्वारा बम्बई से आना था। इस नाम के दो जहाज बम्बई से आने वाले थे। आर का आशय अक्टुम्बर में आने वाले जहाज से था और डब्ल्यू का आशय दिसम्बर में आने वाले जहाज से था। निर्णय दिया गया कि आर और डब्ल्यू में कोई अनुबन्ध नहीं हुआ, क्योंकि दोनों पक्षकार एक ही बात पर एक ही भाव से सहमत नही हुए।

**स्वतन्त्र सहमति से आशय – अधिनियम की धारा 14** के अनुसार स्वतन्त्र सहमति तब कही जाती है जबकि सहमति निम्न बातों से प्रभावित नहीं हो :

| | | |
|---|---|---|
| I | उत्पींड़न | धारा 15 |
| II | अनुचित प्रभाव | धारा 16 |
| III | कपट | धारा 17 |
| IV | मिथावर्णन | धारा 18 |
| V | गलती | धारा 20, 21, 22 |

उपरोक्त बिन्दुओं की विस्तृत विवेचना इस प्रकार है –

**I– उत्पीड़न (Coercoin)**

**आशय–** उत्पीड़न को सामान्य बोलचाल की भाषा में दबाब, जबरदस्ती, बल प्रयोग, अवपीड़न अथवा प्रपीड़न भी कह सकते है। किन्तु यहां इसके लिए **उत्पीड़न'** शब्द का प्रयोग किया गया हैं।

**भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 15** में उत्पीड़न को इस प्रकार परिभाषित किया गया है। ''किसी व्यक्ति के साथ ठहराव करने के उदेश्य से कोई ऐसा कार्य करना अथवा करने की धमकी देना जो भारतीय दण्ड विधान द्वारा वर्जित है, अथवा किसी व्यक्ति को हानि पहुंचाने के लिए उसकी सम्पति को अवैधानिक रूप से रोकना अथवा रोकने की धमकी देना उत्पीड़न है।''

अधिनियम की इस धारा की व्याख्या में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि–''यह महत्वहीन है कि जिस स्थान पर उत्पीड़न का प्रयोग किया गया है। वहा पर भारतीय दण्ड विधान लागू होता है या नही।''

**उत्पीड़न के लक्षण**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उत्पीड़न की परिभाषा का अध्ययन करने से इसके निम्न लक्षण ज्ञात होते है–

1. भारतीय दण्ड विधान द्वारा वर्जित कार्य को करना।
2. भारतीय दण्ड विधान द्वारा वर्जित किसी कार्य को करने की धमकी देना।
3. किसी व्यक्ति को हानि पहुंचाने के उद्देश्य से किसी सम्पति को अवैध रूप से रोकना।
4. किसी व्यक्ति को हानि पहुंचाने के उद्देश्य से किसी सम्पति को अवैध रूप से रोकने की धमकी देना।
5. ऐसे कार्य को करने की धमकी देने का उद्देश्य यह होना चाहिये कि दूसरा पक्षकार ठहराव कर लें।
6. यह महत्वहीन है कि उत्पीड़न का प्रयोग जिस स्थान पर किया गया था। वहां भारतीय दण्ड विधान प्रचलित था या नही।
7. उत्पीड़न के माध्यम से जो सहमति प्राप्त की जाती है, वह सहमति तो अवश्य होती है, किन्तु इस धारा के अन्तर्गत 'स्वतंत्र सहमति' नही होती है।

**उत्पीड़न के आवश्यक तत्व** – उत्पीड़न को स्पष्ट रूप से समझने के लिए निम्न आवश्यक तत्वों/बातों का अध्ययन करते है।

1. **उत्पीड़न स्वयं पक्षकार द्वारा अथवा किसी अन्य द्वारा किया जा सकता है**– उत्पीड़न का प्रयोग स्वयं अनुबन्ध का पक्षकार दूसरे पक्षकार के विरूद्ध कर सकता है। इसी प्रकार अनुबन्ध के एक पक्षकार के एजेन्ट द्वारा दूसरे पक्षकार के विरूद्ध भी उत्पीड़न का प्रयोग किया जा सकता है।
2. **उत्पीड़न का प्रयोग स्वयं पक्षकार के विरूद्ध या किसी अन्य व्यक्ति के विरूद्ध किया जा सकता है–** उत्पीड़न का प्रयोग अनुबन्ध के पक्षकार के विरूद्ध किया जा सकता है अथवा किसी अन्य व्यक्ति के विरूद्ध भी किया जा सकता है। किन्तु किसी अन्य व्यक्ति के विरूद्ध उत्पीड़न का प्रयोग किया गया तभी माना जावेगा, जबकि उसका सम्बन्ध अनुबन्ध करने से रहा हो।
3. **उत्पीड़न में क्या सम्मिलित है–** उत्पीड़न में शारीरिक कष्ट देना, भय दिखलाना और धमकी देना सम्मिलित है। इसे और स्पष्ट करने के लिए उत्पीड़न की धारा में यह उल्लेख किया गया है कि भारतीय दण्ड विधान द्वारा वर्जित कार्य करने या करने की धमकी देना तथा किसी व्यक्ति को हानि पहुँचानें के उद्देश्य से उसकी सम्पति को अवैध रूप से रोकना अथवा रोक लेने की धमकी देना भी उत्पीड़न के अन्तर्गत ही माना गया है।

   **आत्महत्या की धमकी–** प्रायः यह भ्रम का विषय हो जाता है कि आत्महत्या की धमकी उत्पीड़न है अथवा नहीं। क्योंकि भारतीय दण्ड विधान ने आत्महत्या के प्रयास को दण्डनीय अपराध माना है किन्तु आत्महत्या के लिए दण्ड का प्रावधान नहीं है क्योंकि दण्ड प्राप्त करने के लिए वह नहीं बचता है इसलिए उसे दण्ड नही दिया जा सकता किन्तु आत्महत्या की धमकी को उत्पीड़न माना गया है।

4. **उत्पीड़न का उद्देश्य–** दूसरे पक्षकार के साथ ठहराव करने के उद्देश्य से उत्पीड़न का प्रयोग किया जाना चाहिये। यदि उत्पीड़न करने का उद्देश्य ठहराव करना नहीं है तो उसे उत्पीड़न नही माना जा सकता है।
5. **उत्पीड़न का स्थान** – किसी भी स्थान पर प्रयोग किया गया उत्पीड़न मान्य है। यह महत्वहीन है कि जिस स्थान पर उत्पीड़न का प्रयोग किया गया था, वहा भारतीय दण्ड विधान लागू नही था।
6. **वैधानिक धमकी** – यदि कोई व्यक्ति अपने वैधानिक अधिकारों के अन्तर्गत किसी दूसरे व्यक्ति पर वाद प्रस्तुत करने की धमकी देता है अथवा वैधानिक रूप से सम्पति को रोकने की धमकी देता है तो यह उत्पीड़न नही माना जाता है।

**उत्पीड़न सिद्ध करने का भार – (Burden of Proof )**

जब कोई पक्षकार अनुबन्ध को उत्पीड़न के आधार पर व्यर्थ घोषित करना चाहता है तो उसे स्वयं को ही यह सिद्ध करना पड़ेगा कि उसके विरूद्ध उत्पीड़न का प्रयोग किया गया था। ऐसे पीड़ित पक्षकार को वे सभी प्रमाण प्रस्तुत करने पड़ेगे जिनसे यह सिद्ध हो सके कि वास्तव में उसके विरूद्ध उत्पीड़न का प्रयोग किया गया था।

प्. **अनुचित प्रभाव** (Undue Influence)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**अनुबन्ध अधिनियम की धारा 16(1) के अनुसार** ''कोई अनुबन्ध अनुचित प्रभाव द्वारा प्रेरित तब कहा जाता है जब पक्षकारों के मध्य सम्बन्ध ऐसे हो कि उनमें से एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में हो और दूसरे पक्षकार पर अनुचित लाभ पाने के लिए उस स्थिति का प्रयोग करें।''

**व्याख्याः–** इस धारा का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि अनुचित प्रभाव से प्रेरित ठहराव तब कहा जाता है जबकि पक्षकारो के मध्य ऐसे सम्बन्ध होते है कि उनमें से कोई एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में होता है। और ऐसी स्थिति वाला पक्षकार अपनी स्थिति का अनुबन्ध में अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए प्रयोग करता है।

**राजस्थान उच्च न्यायालय** ने **महबूब खां बनाम हकीम अब्दुल रहीम के मामले में** निर्णय देते हुए कहा था– '' अनुचित प्रभाव एक प्रकार से जालसाजी का एक मूर्तरूप है जिसमें कपटपूर्ण ढ़ग से ओर सम्मोहक चालाकी से अपने शिकार के मस्तिष्क के ऊपर प्रभुत्व कर लिया जाता है।''

इस प्रकार अनुचित प्रभाव मे दूसरे पक्षकार के मस्तिष्क को इस प्रकार प्रभावित कर दिया जाता है कि पीड़ित व्यक्ति का मस्तिष्क अपनी बात कहने में असमर्थ हो जाता है, वह ऐसी रूकावट उत्पन्न करता है जिससे स्वतंत्रता मिट जाती है तथा प्रतिरोध समाप्त हो जाता है एवं मनुष्य दूसरे के आगे झुक जाता है।

**अनुचित प्रभाव के आवश्यक तत्व**– अनुचित प्रभाव से प्रेरित अनुबन्ध तब कहा जाता है जबकि उसमें निम्नालिखित तत्व पाये जाते है –

1. **पक्षकारों के मध्य संबंध**– कोई अनुबन्ध अनुचित प्रभाव से प्रेरित तभी कहा जा सकता है जबकि अनुबन्ध के पक्षकारों के बीच ऐसे सम्बन्ध विद्यमान हो कि उनमें से एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में हो। यदि पक्षकारों में इस प्रकार के सम्बन्ध नही है तो अनुबन्ध में अनुचित प्रभाव उत्पन्न ही नही हो सकता है।

   **अधिनियम की धारा 16(2)** के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन परिस्थितियों में एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति की **इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में** समझा जाता है–

   (i) **दूसरे पक्षकार की सत्ता** – जब पक्षकारों के मध्य सम्बन्ध ऐसे हो कि उनमें से एक पक्षकार दूसरे पक्षकार पर वास्तविक अथवा स्पष्ट ;त्मंस वत चचंतमदजद्ध सत्ता ;।नजीवतपजलद्ध रखता हो तो वह पक्षकार दूसरे पक्षकार पर अनुचित प्रभाव डालने की स्थिति में होता है। उदाहरण के लिए आयकर अधिकारी तथा करदाता, वाणिज्यिक कर अधिकारी तथा दुकानदार, पुलिस अधिकारी तथा अपराधी, जेलर तथा कैदी एवं अधिकारी तथा अधिनस्थ के बीच सम्बन्ध कुछ ऐसे ही है जिनमें एक पक्षकार दूसरे पक्षकार पर सत्ता तथा अधिकार रखता है।

   (ii) **विश्वासाश्रित सम्बन्ध** ;थ्पकनबपंतल तमसंजपवदींपचद्ध यदि दोनों पक्षकारों में विश्वासाश्रित सम्बन्ध हो अर्थात एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के मार्गदशर्न पर निर्भर करता है। विश्वासाश्रित सम्बन्ध उस व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति की स्थिति का दुरूपयोग करने का अच्छा अवसर देता है जिसे विश्वास योग्य समझा जा रहा है। जैसे वकील एवं मुव्वकिल, डाक्टर तथा मरीज, पिता तथा पुत्र गुरू तथा शिष्य, ऋणदाता तथा ऋणी आदि के बीच विश्वासाश्रित सम्बन्ध पाये जाते है।

   (iii) **मानसिक दशा ठीक न हो** – जब अनुबन्ध किसी ऐसे व्यक्ति के साथ किया गया हो जिसकी मानसिक दशा अथवा स्वास्थ्य किसी रोग, बुढ़ापे, शारीरिक कष्ट के कारण अस्थायी रूप से क्षीण हो गई हो तो भी ऐसे व्यक्ति पर अनुचित प्रभाव का प्रयोग बहुत आसानी से हो सकता है। अतः जब कोई व्यक्ति उसकी ऐसी स्थिति का लाभ उठाने के लिए उसके साथ अनुबन्ध करता है तो ऐसे कमजोर पक्षकार को आधिकार है कि वह ऐसे अनुबन्ध को व्यर्थ समझ सकता है।

2. **आपसी सम्बन्धों का अनुचित लाभ प्राप्त करने में प्रयोग** – अनुचित प्रभाव का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व यह है कि जो पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में है और वह उस स्थिति का अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए प्रयोग करता है किन्तु यदि एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति का अनुबन्ध करने में उपयोग नही करता है तो वह अनुबन्ध अनुचित प्रभाव द्वारा प्रेरित नही माना जायेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. **उद्देश्य अनुचित लाभ प्राप्त करना हो** – यदि उस पक्षकार ने अपनी ऐसी स्थिति का प्रयोग किया है जिसका उद्देश्य अनुचित लाभ प्राप्त करना था तो अनुबन्ध अनुचित प्रभाव द्वारा प्रेरित माना जायेगा किन्तु उसकी इच्छा अनुचित लाभ प्राप्त करने की नही थी तो अनुबन्ध अनुचित प्रभाव से प्रेरित नही समझा जायेगा।

4. **अनुचित लाभ वास्तव में उठाया गया हो**– अनुचित प्रभाव से प्रेरित अनुबन्ध तभी माना जावेगा जबकि एक पक्षकार ने दूसरे पक्षकार से अनुचित लाभ प्राप्त कर लिया है।

**अनुचित प्रभाव सिद्ध करने का भार** – जो पक्षकार अनुचित प्रभाव डालने की स्थिति में होता है उसको ही यह सिद्ध करना पड़ता है कि उसने अनुबन्ध करने में किसी प्रकार के अनुचित प्रभाव का प्रयोग नही किया है, यद्यपि वह इस स्थिति में था। पीड़ित पक्षकार तो केवल इतना ही कहेगा कि दूसरा पक्षकार अनुचित प्रभाव का प्रयोग करने की स्थिति में था और उसने इसका प्रयोग किया था।

**बोध प्रश्न** –

1. सहमति किसे कहते है ?
2. उत्पीड़न से क्या आशय है ?
3. अनुचित प्रभाव को सिद्ध करने का भार किस पक्षकार पर होता है ?

## उत्पीड़न तथा अनुचित प्रभाव में अन्तर

उत्पीड़न एवं अनुचित प्रभाव दोनों ही में सहमति स्वतन्त्र नहीं होती है तथा दोनों के आधार पर किये गये अनुबन्ध व्यर्थनीय होते हैं, किन्तु इनके बीच कुछ अन्तर अवश्य होता है। उत्पीड़न तथा अनुचित प्रभाव के बीच विद्यमान अन्तर को निम्नलिखित तालिका में स्पष्ट किया गया है :

| क्र. स. | अन्तर का आधार | उत्पीड़न | अनुचित प्रभाव |
|---|---|---|---|
| 1. | परिभाषा | जब ठहराव करने के उद्देश्य से कोई पक्षकार दूसरे पक्षकार के विरूद्ध कोई ऐसा कार्य करता है अथवा करने की धमकी देता है जो भारतीय दण्ड विधान में वर्जित है अथवा उसे हानि पहुँचाने के उद्देश्य से किसी की सम्पत्ति को अवैध रूप से रोकता है अथवा रोकने की धमकी देता है, तो उत्पीड़न कहलाता है। | जब एक पक्षकार किसी दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में होता है और अनुबन्ध में अनुचित लाभ प्राप्त करने के लिए उस स्थिति का प्रयोग करता है तो अनुबन्ध अनुचित प्रभाव से प्रेरित कहा जाता हैं। |
| 2. | प्रयोग का ढ़ंग | 'सहमति' शारीरिक बल का प्रयोग करके अथवा शारीरिक बल प्रयोग करने की धमकी देकर प्राप्त की जाती है। | सहमति नैतिक अथवा मानसिक दबाव द्वारा प्राप्त की जाती है। |
| 3. | सम्बन्ध | यह आवश्यक नहीं है कि पक्षकारों के मध्य पहले से कोई निश्चित सम्बन्ध हों। | पक्षकारों के मध्य पहले से निश्चित सम्बन्ध होना अवश्य होता है। |
| 4. | इच्छा प्रभावित करने की क्षमता | उत्पीड़न में एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभावित करने की क्षमता नहीं रखते हैं। | अनुचित प्रभाव का प्रयोग तभी होता है जबकि एक पक्षकार दूसरे पक्षकार की इच्छा को प्रभावित करने की स्थिति में होता है। |
| 5. | पक्षकार | उत्पीड़न का प्रयोग अनुबन्ध के पक्षकार अथवा किसी अन्य व्यक्ति के साथ भी किया जा सकता है। | अनुचित प्रभाव का प्रयोग केवल अनुबन्ध के पक्षकार पर किया जा सकता है। |
| 6. | प्रभाव | उत्पीड़न के आधार पर अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय होते है। | अनुचित प्रभाव के आधार पर हुए ठहराव पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय तो |

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

| | | | |
|---|---|---|---|
| | | | होते ही है किन्तु न्यायालय उचित समझे तो ऐसे अनुबन्ध को पूर्ण रूप से अथवा कुछ शर्तो पर आंशिक रूप से निरस्त कर सकता है। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 7. | सहमति | उत्पीड़न में सहमति देने का अधिकार ही नष्ट कर दिया जाता है। | अनुचित प्रभाव में अनुचित प्रकार से सहमति प्राप्त की जाती है। |
| 8. | तत्व | उत्पीड़न द्वारा उत्पन्न अनुबन्धो में सहमति की प्राप्ति में भय, आतंक, धमकी आदि के तत्व हो सकते हैं। | अनुचित प्रभाव द्वारा प्रेरित अनुबन्धों में इन तत्वों का अभाव होता है वरन् समझा–बुझाकर, अपनी स्थिति का उचित लाभ उठाते हुए सहमति प्राप्त की जाती हैं। |
| 9. | स्थान | उत्पीड़न भारतवर्ष की धरती पर या अन्य किसी भी जगह किया जा सकता है। उत्पीड़न होने पर अनुबन्ध व्यर्थनीय होगा। | अनुचित प्रभाव भारतवर्ष की सीमाओं के भीतर रहकर ही डाला जा सकता है। तभी अनुबन्ध व्यर्थनीय बनता है। |
| 10 | सिद्ध करने का भार | उत्पीड़न सिद्ध करने का भार पीड़ित पक्ष पर होता है। | जो पक्षकार अनुचित प्रभाव डालने की स्थिति में होता है, उसे ही यह सिद्ध करना होता है कि अनुचित प्रभाव का प्रयोग नही हुआ है। |

## III. कपट (Fraud)

**आशय–** जब कोई व्यक्ति ज्ञानवश अर्थात जान–बुझकर धोखा देने के उद्देश्य से तथ्यों का मिथ्यावर्णन करता है तो उसे कपट कहा जाता है।

**परिभाषा – अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 17 के अनुसार,** ''जब अनुबन्ध का एक पक्षकार अथवा उसकी उपेक्षा से (With his Connivance) (मौनानुकूलता) अथवा उसका एजेन्ट, दूसरे पक्षकार को अथवा उसके एजेन्ट को धोखा देने के अभिप्राय से अथवा उसको अनुबन्ध के लिए प्रेरित करने के अभिप्राय से निम्नलिखित कार्य में से कोई कार्य करता है तो इसे कपट कहेगें –

1. किसी तथ्य के सम्बन्ध में कोई ऐसा सुझाव देना जो सत्य नही है और जिसके उसके सत्य होने का विश्वास भी नही है।
2. किसी तथ्य को उस व्यक्ति द्वारा जानबुझकर सक्रिय होकर छिपाना जिसका उसे वास्तविक ज्ञान अथवा विश्वास है,
3. पूरा न करने के अभिप्राय से दिया गया कोई वचन,
4. कोई भी अन्य कार्य जिसका उद्देश्य दूसरे पक्षकार को धोखा देना है,
5. कोई भी ऐसा कार्य अथवा भूल जो राजनियम द्वारा विशेष रूप से कपटमय घोषित हो।

**कपट के तत्व एवं लक्षण**

कपट की परिभाषा का विश्लेषण करने पर कपट के निम्नलिखित प्रमुख तत्व ज्ञात होते है, जो इस प्रकार है –

1. कपट किसी पक्षकार अथवा उसके एजेन्ट द्वारा किया जाना चाहिये।
2. कपटकर्ता को सही स्थिति की जानकारी होती है।
3. कपट का उद्देश्य जानबुझकर धोखा देना होता है।
4. कपट का उद्देश्य अनुबन्ध करने के लिए प्रेरित करना हो।
5. असत्य बात को सत्य रूप में बताना या सत्य होने का सुझाव देना।
6. अनुबन्ध के महत्वपूर्ण तथ्यों को सक्रिय रूप से छिपाना।
7. पूरा न करने के उद्देश्य से कोई वचन देना।
8. धोखा देने के उद्देश्य से कोई अन्य कार्य करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9. कोई ऐसा कार्य या भूल जो राजनियम द्वारा विशेष रूप से कपटमय घोषित कर दिया हो।
10. कपट के द्वारा दूसरे पक्षकार को धोखा अवश्य होना चाहिये।
11. कपट महत्वपूर्ण तथ्य के सम्बन्ध में होना चाहियें।

**कपट के स्वरूप – कपट के तीन प्रमुख स्वरूप होते है।**

1. प्रदर्शन द्वारा कपट
2. छिपाव द्वारा कपट
3. मौन द्वारा कपट

1. **प्रदर्शन द्वारा कपट** – यदि किसी अनुबन्ध का कोई एक पक्षकार किसी ऐसी बात को बताकर प्रदर्शन करता है जिसको वह जानता है कि वह असत्य है तो यह कहा जायेगा कि उसने दूसरे पक्षकार को कपट द्वारा प्रेरित करके अनुबन्ध किया है।

   **उदाहरण** – अ ने ब से कहा कि उसके पीपे में गाय का शुद्ध घी है जबकि अ यह जानता है कि वह शुद्ध 'डालडा' है। अ के इस प्रकार प्रदर्शन पर ब वह घी खरीदने के लिए सहमत हो जाता है। यहां ब के साथ कपट किया गया है, अतः यह ठहराव ब की इच्छा पर व्यर्थनीय है।

2. **सक्रिय छिपाव द्वारा कपट** – सक्रिय रूप से तथ्यों को छिपाने का आशय यह है कि प्रस्तावक सत्यता को दूसरे पक्षकार तक पहुँचने से रोकता है। जब कोई पक्षकार अनुबन्ध के विषय में कुछ ऐसी महत्वपूर्ण बातें जानबुझकर छिपाता है, जिनको प्रकट करना उसका कर्तव्य है और जो अनुबन्ध के लिए महत्वपूर्ण है, तो यह कहा जायेगा कि उसने कपट किया है। यह छिपाव द्वारा कपट कहलाता है।

   **उदाहरणः**– अ अपना द्विमंजिला मकान ब को बेचना चाहता है। कमरे की दिवारों में मोटी–मोटी दरारें (Cracks) आयी हुई है। अ इन दरारों को छिपाने के लिए इन पर बड़े बड़े चित्र लगा देता है जिससे दरारे छिप जाती है। यह सक्रिय छिपाव द्वारा कपट है।

3. **मौन द्वारा कपट** – धारा 17 की व्याख्या में यह स्पष्टीकरण दिया गया है कि ''तथ्य सम्बन्धी मौन जो अनुबन्ध करने वाले पक्षकार की इच्छा को प्रभावित कर सकता है तब तक कपट नही माना जाता है जब तक कि मामले की परिस्थितियों के अनुसार मौन रहने वाले व्यक्ति का बोलना कर्तव्य न हो अथवा मौन रहना स्वयं बोलने के बराबर न हो।''

   इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सामान्यतया मौन रहना कपट नहीं है चाहे मौन रहने से दूसरे व्यक्ति की इच्छा पर कोई भी प्रभाव पड़े या नही पड़े **किन्तु निम्नालिखित पारिस्थितियों में मौन रहना भी कपट माना जा सकता है।**

   (i) **जब मौन रहने वाले का बालेना कर्त्तव्य हो**– सामान्यतः अनुबन्ध करते समय दोनो पक्षकारों को सभी बातों के बारे में जांच पड़ताल तथा पूछताछ कर लेनी चाहियें। सामान्यत' कोई भी पक्षकार एक दूसरे को अनुबन्ध के सम्बन्ध में स्वतः कुछ भी बताने के लिए बाध्य नहीं है। किन्तु कुछ अनुबन्ध ऐसे भी होते है जहां मौन रहने वाले व्यक्ति का बोलना कर्त्तव्य होता है और वह मौन रहता है तो कपट माना जाता है। ये परिस्थितियां निम्नलिखित है।।

      (a) **परम सद्विश्वास के अनुबन्ध** – कुछ अनुबन्ध परम सद्विश्वास पर आधारित होते है। ऐसे अनुबन्ध के प्रत्येक पक्षकार को वे सभी बातें दूसरे पक्षकार को स्वयं बता देनी चाहिये जो स्वयं जानता है या सामान्यतः उसे जानकारी होने की आशा की जाती है। उन्हें दूसरे पक्षकार के पूछने की प्रतीक्षा नही करनी चाहिये। यदि कोई पक्षकार वे सभी बातें प्रकट नही करता है तो अनुबन्ध कपटपूर्ण माना जावेगा। सद्भावनापूर्ण अनुबन्ध में निम्नलिखित प्रकार के अनुबन्ध मुख्यतः होते है।

         - बीमे के अनुबन्ध
         - अचल सम्पत्ति के विक्रय के अनुबन्ध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- कम्पनी का प्रविवरण
- साझेदारी के अनुबन्ध
- विवाह के अनुबन्ध
- पारिवारिक समझौतो के मामलें।

(b) **विश्वासश्रित सम्बन्ध के अनुबन्ध** – यदि अनुबन्ध के पक्षकारों के बीच विश्वासाश्रित सम्बन्ध है तो दोनो पक्षकारो को अनुबन्ध के सम्बन्ध में सभी महत्वपूर्ण बातों तथा तथ्यों को प्रकट कर देना चाहिये। यदि महत्वपूर्ण तथ्यो को प्रकट नही किया जाता है तो अनुबन्ध को निरस्त किया जा सकता है।

(c) **गारण्टी के अनुबन्ध** – गारण्टी के अनुबन्धों में ऋणदाता का यह कर्तव्य है कि वह मूल ऋणी के सम्बन्ध में सभी महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी प्रतिभू को दे दे। यदि ऋणदाता तथ्यों को छिपाकर गारण्टी प्राप्त करता है तो वह गारण्टी अवैध होती है तथा गारण्टी अनुबन्ध के अन्तर्गत प्रतिभू स्वतः दायित्व से मुक्त हो जाता है।

(d) **जब घटनाओं के परिवर्तन के कारण तथ्य गलत होने लगे –** जब अनुबन्ध से पूर्व बताये गये तथ्यों तथा अनुबन्ध के समय तथ्यों में अन्तर पड़ जाता है तो उस पक्षकार का, जो इन तथ्यों की जानकारी रखता है, यह कर्त्तव्य है कि वह इन तथ्यों की जानकारी दूसरे पक्षकार को उनके बिना पूछे ही दे।

(e) **तथ्यों को प्रकट न करने पर कपट**– निम्नलिखित परिस्थितियों में तथ्यों को प्रकट न करना कपट माना जाता है :

- जहाँ सत्य का एक भाग छिपाने के कारण कहा गया तथ्य झूठ बन जाता है।
- जब किसी महत्वपूर्ण तथ्य के सम्बन्ध में जानबुझकर इस प्रकार मौन रखा जाता है कि जैसे तथ्य का अस्तित्व ही न हो।
- जहाँ किसी पक्षकार ने किसी तथ्य को सत्य समझकर प्रकट किया हो किन्तु बाद में झूठा सिद्ध हो गया हो।

**(ii)** **जब मौन रहना बोलने के बराबर हो**– यदि परिस्थितियां ऐसी है जिनसे यह समझा जाता है कि मौन रहना स्वयं बोलने के बराबर है और उससे दूसरे पक्षकार को धोखा हो जाता है तो ऐसा मौन भी कपट माना जावेगा।

उदाहरण :– अ, ब को कहता है कि **यदि आप इसके विपरीत कुछ न कहेगे तो मैं समझूगां कि गाय स्वस्थ है।** यदि बाद में यह ज्ञात होता है कि गाय अस्वस्थ थी तो ब को मौन द्वारा कपट का दोषी माना जा सकता है तथा अ को अनुबन्ध को व्यर्थ समझने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा।

इस सम्बन्ध में यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि मौन द्वारा कपट की दशा में यदि पीड़ित पक्षकार के पास ऐसे साधन या अवसर विद्यमान है जिनका उपयोग करके वह तथ्यो की सत्यता का पता लगा सकता है तो कपट नही माना जायेगा।

(iii) **जहाँ कोई व्यक्ति बोलने के कर्त्तव्य के अधीन नही होता** किन्तु बोलता है तो उसे स्पष्ट रूप से और पूरी बातें बतानी होगी। वह तथ्यों के बारे में अधूरा एवं आंशिक रूप से कथन नही कर सकता। यदि वह करता है तब यह कपट होगा।

IV **मिथ्यावर्णन** (Misrepresentation)

सामान्य शब्दों में अज्ञानवश कही गई झूठी बात को मिथ्यावर्णन माना जाता है। **अनुबन्ध अधिनियम की धारा 18 के अनुसार** मिथ्यावर्णन अग्रलिखित दशाओं में माना जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. जब कोई व्यक्ति **निश्चयात्मक रूप से** तथ्य को सत्य बतलाता है, यद्यपि वह असत्य है, किन्तु उस तथ्य को सत्य समझ रहा है। अथवा
2. जब कोई व्यक्ति अपना **कर्त्तव्य भंग करके** दूसरे पक्षकार को भ्रम में डालकर उसे हानि पहुँचाता है और वह स्वयं लाभ प्राप्त करता है। यद्यपि उसका उद्देश्य दूसरे पक्षकार को धोखा देना नहीं है अथवा
3. जब एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को ठहराव की विषय वस्तु के बारे में **गलती करने के लिए प्रेरित करता है**, चाहे वह अज्ञानवश ही क्यों न किया जावें।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मिथ्यावर्णन में एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को अज्ञानवश धोखा देता है। इसमें पक्षकार को धोखा देने का अभिप्राय नही होता है। किन्तु अज्ञानवश तथ्यों को छिपा दिया जाता है अथवा भ्रामक रूप से प्रकट किया जाता है अथवा पक्षकार अपना कर्त्तव्य भंग करता है अथवा दूसरा पक्षकार अज्ञानवश गलती करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

**मिथ्यावर्णन के आधार –** मिथ्यावर्णन निम्नलिखित आधारो में से किसी भी आधार पर हो सकता है –

1. **तथ्यों का निश्चयात्मक कथन द्वारा (By Positive Statement)-** जब कोई व्यक्ति निश्चयात्मक रूप से किसी बात को सत्य बताता है जबकि वह बात सत्य नही है किन्तु ऐसा कहने वाले को उसकी सत्यता पर पूरा पूरा विश्वास है तो यह तथ्यों के निश्चयात्मक कथन के आधार पर मिथ्यावर्णन कहलाता है।

   **(धारा 18(1))**

   **उदाहरण** – अ ने ब से कहा कि ''मेरी इस भूमि में 1500 क्विंटल गेहूँ उत्पन्न होता है'' इस कथन पर विश्वास करके ब ने उस भूमि को खरीद लिया और बाद में उसे ज्ञात हुआ कि उस भूमि पर केवल 1200 क्विंटल गेहूँ ही पैदा होता था। यहां अ को वास्तव में ऐसा विश्वास था कि उसकी भूमि में 1500 क्विंटल गेहूँ पैदा होता था, यद्यपि उसके पास ऐसा विश्वास करने के लिए कोई उचित आधार नहीं था। यह माना जायेगा कि अ द्वारा मिथ्या–वर्णन किया गया है।

   किन्तु इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि यदि दूसरे पक्षकार के पास सामान्य प्रयासों से सत्य का पता लगाने के लिये ऐसे आवश्यक साधन उपलब्ध थे जिनका कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति समान परिस्थितियों में प्रयोग करता तो ऐसे पक्षकार को मिथ्यावर्णन के आधार पर अनुबन्ध को निरस्त करने का अधिकार नही होगा।

2. **कर्त्तव्य भंग द्वारा** (By Breach of Duty) यदि कोई व्यक्ति बिना किसी को धोखा देने के उद्देश्य से अपने कर्त्तव्य का पालन नही करता है जिसके फलस्वरूप उसे स्वयं को कुछ लाभ होता है और दूसरे पक्षकार को कुछ हानि होती है तो इसे कर्त्तव्य भंग द्वारा मिथ्यावर्णन कहते है। **(धारा 18 (2))**

   उदाहरण–अ ने अपना जीवन बीमा कराया और प्रस्ताव पत्र भरते समय अपनी आयु अनुमान से 20 वर्ष बतलायी जबकि वास्तव में उसकी आयु 22 वर्ष थी, जिसके फलस्वरूप बीमा कम्पनी ने प्रीमियम की अपेक्षाकृत नीची दर निश्चित कर दी। अ ने यह आयु धोखा देने के उद्देश्य से नही बताई थी। यह कर्तव्य भंग द्वारा मिथ्यावर्णन है।

   **परिस्थितियों में परिवर्तन**– कभी–कभी किसी तथ्य के वर्णन करने और अन्तिम रूप से अनुबन्ध करने में पर्याप्त समय लग जाता है। इस अवधि में यदि परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण, वर्णित किये गये तथ्य में परिवर्तन हो गया है तो दूसरे पक्षकार को इस परिवर्तन से सूचित कर देना चाहिये, अन्यथा यह मिथ्यावर्णन माना जायेगा।

3. **अज्ञानवश मिथ्यावर्णन के कारण गलती के लिए प्रेरित करना** (Causing Mistake by innocent misrepresentation) :– जब कोई पक्षकार अज्ञानवश मिथ्यावर्णन के कारण दूसरे पक्षकार को किसी तथ्य सम्बन्धी गलती करने के लिए प्रेरित करता है तो यह मिथ्यावर्णन कहलाता है।**धारा 18(3),**

   इस प्रकार किसी एक पक्षकार के अज्ञानवश मिथ्यावर्णन के कारण दूसरे पक्षकार ने कोई गलती कर दी हो, तो यह ठहराव मिथ्यावर्णन के आधार पर हुआ माना जायेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

**उदाहरण** – अ ने ब से कहा कि 'मेरा मकान दोष मुक्त है। ब ने इस पर विश्वास करके मकान खरीद लिया। अ को अपने मकान की नींव में दरार का ज्ञान नहीं था जिसके कारण मकान के गिरने का हर समय डर था। ब को इस बात का पता लगने पर मिथ्यावर्णन के आधार पर अनुबन्ध को निरस्त करने का अधिकार है। क्योंकि अ ने ब को अज्ञानवश गलती के लिए प्रेरित किया था।

इस सम्बन्ध में यह बात महत्वपूर्ण है कि मिथ्यावर्णन करने वाले पक्ष का यह कर्त्तव्य है कि असत्य का पता लग जाने पर वह दूसरे पक्ष को भी इसे बतला दे, अन्यथा मिथ्यावर्णन का उद्देश्य धोखा देना समझा जायेगा और यह 'कपट' माना जायेगा।

**सिद्ध करने का भार** (Burden of Proof) मिथ्यावर्णन के आधार पर अनुबन्ध को निरस्त कराने वाले पक्षकार पर ही यह सिद्ध करने का दायित्व होता है कि उस अनुबन्ध में दूसरे पक्षकार द्वारा मिथ्यावर्णन करके ही सहमति प्राप्त की गई थी। उसे निम्नलिखित बाते भी सिद्ध करना आवश्यक है –

(i) मिथ्यावर्णन अनुबन्ध की विषयवस्तु के सम्बन्ध में किया गया था,
(ii) उसने मिथ्यावर्णन के आधार पर ही अनुबन्ध किया था।
(iii) मिथ्यावर्णन, अनुबन्ध करते समय अथवा उसके पूर्व में किया गया था। अनुबन्ध करने के पश्चात् किये गये मिथ्यावर्णन का कोई प्रभाव नही माना जाता है।
(iv) किया गया मिथ्यावर्णन वास्तव में मिथ्या (असत्य) था।

**कपट और मिथ्यावर्णन में अन्तर**

| अन्तर का आधार | कपट | मिथ्यावर्णन |
|---|---|---|
| 1. प्रकृति | कपट में जानबुझकर दूसरे व्यक्ति को धोखा देने के लिए तथ्यों को तोड़–मरोड़ कर रखा जाता है। | मिथ्यावर्णन में किसी बात को जैसा कोई व्यक्ति समझता है वैसा ही दूसरों के सामने रख देता है जबकि वह बात असत्य होती है। |
| 2. उद्देश्य | कपट दूसरे पक्षकार को धोखा देने के उद्देश्य से किया जाता है। | मिथ्यावर्णन का उद्देश्य दूसरे पक्षकार को धोखा देना नही होता है। |
| 3. सत्यता का ज्ञान | कपट में कपट करने वाले को सत्यता का ज्ञान होता है। | मिथ्यावर्णन में दोषी पक्षकार को सत्यता की जानकारी नही होती है। |
| 4. जांच के साधन | मौन द्वारा कपट की स्थिति को छोड़कर अन्य किसी प्रकार के कपट की दशा में दोषी पक्षकार पीड़ित पक्षकार को यह नही कह सकता है कि उसके पास सत्यता की जांच के साधन उपलब्ध थे। | मिथ्यावर्णन की दशा में दोषी पक्षकार यह कहकर दोषमुक्त हो सकता है कि पीड़ित पक्षकार के पास सत्यता की जांच के साधन उपलब्ध थे। |
| 5. सूचना का दायित्व | कपट की दशा में पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध निरस्त करने की सूचना देने के लिए उत्तरदायी नही होता है। | मिथ्यावर्णन की दशा में सत्यता ज्ञात होते ही पीड़ित पक्षकार दोषी पक्षकार को मिथ्यावर्णन की सूचना देने के लिए उत्तरदायी है। |
| 6. क्षतिपूर्ति का अधिकार | पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को व्यर्थनीय समझने का अधिकार तो रखता ही है किन्तु क्षतिपूर्ति के लिए वाद भी प्रस्तुत कर सकता है। | पीड़ित पक्षकार सामान्यतः क्षतिपूर्ति की मांग नही कर सकता है। |

## V. गलती या भूल (Mistake)

**भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 20 के अनुसार,** ''जब किसी ठहराव के दोनो ही पक्षकार ठहराव के किसी आवश्यक तथ्य के सम्बन्ध में गलती करते है तो ठहराव व्यर्थ होता है।''

उपरोक्त धारा 20 के क्रियाशील होने के लिए निम्न तीन बातें होनी चाहिये–

(i) दोनों ही पक्षकार गलती पर हो, अर्थात केवल एक ही पक्षकार के गलती पर होने से यह धारा लागू नही होगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ii) गलती तथ्य सम्बन्धी होनी चाहिये।

(iii) वह तथ्य ठहराव के लिये आवश्यक होना चाहियें।

अतः यदि ठहराव के पक्षकार ठहराव के किसी आवश्यक तथ्य के संबधं में भूल करते है तो उस ठहराव में पक्षकारों की सही अर्थो में सहमति नही मानी जाती है। परिणामस्वरूप वह ठहराव व्यर्थ होता है।

**उदाहरण –**

(i) अ ने एक घोड़ा ब से एक निश्चित मूल्य पर खरीदने का ठहराव किया किन्तु बाद में ज्ञात हुआ कि ठहराव करने के पूर्व ही घोड़ा मर चुका था तो यह अनुबन्ध व्यर्थ है, क्योकि दोनो ही पक्षकार गलती पर है।

(ii) **इलाहाबाद उच्च न्यायालय** में एक वाद प्रस्तुत किया गया जिसमें वादी ने प्रतिवादी से भूमि के टुकड़े के क्रय के लिए एक अनुबन्ध किया। दोनों के विचार में उस भूमि के टुकड़े का क्षेत्रफल 5 बीघा था किन्तु वास्तव में 5 बीघा से कम निकला। न्यायालय ने निर्णय देते हुए कहा कि अनुबन्ध के लिए एक आवश्यक तथ्य की भूल थी, अतः अनुबन्ध को धारा 20 के अन्तर्गत व्यर्थ ठहराया।

**गलतियों के प्रकार**

गलतियों को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत करके अध्ययन किया जा सकता है।

I . तथ्य सम्बन्धी गलतियाँ

II. राजनियम सम्बन्धी गलतियाँ

I. **तथ्य सम्बन्धी गलतियाँ** ;डपेजंाम वि बिजेद्ध तथ्य सम्बन्धी गलतियाँ वे होती है जो अनुबन्ध की मुख्य विषय वस्तु से सम्बन्ध रखती है। ऐसी गलतियाँ दो प्रकार की हो सकती है।

A. विषय–वस्तु सम्बन्धी गलती

B. निष्पादन की असम्भवता सम्बन्धी गलती

(A) **विषय–वस्तु सम्बन्धी गलती –** विषय–वस्तु सम्बन्धी गलतियां निम्नलिखित हो सकती है।

1. **विषय–वस्तु के अस्तित्व के सम्बन्ध में गलती**– जब पक्षकार विषय–वस्तु के स्पष्ट अस्तित्व को मानते हुए अनुबन्ध करते है किन्तु उस अनुबन्ध की विषय–वस्तु का ही अस्तित्व न हो तो वह अनुबन्ध व्यर्थ हो जाता है।

   उदाहरणः– अ एक निश्चित वस्तु ब को बेचने का ठहराव करता है जो इग्लैण्ड से मुम्बई को आने वाले मार्ग में मौजूद समझी जाती है। बाद में ज्ञात हुआ कि सौदा करने के एक दिन पूर्व ही वह जहाज डूब गया था। किसी भी पक्षकार को इसका पता नहीं था। यह ठहराव व्यर्थ है।

2. **विषय–वस्तु की पहचान सम्बन्धीं गलती** – यदि अनुबन्ध में दोनो पक्षकार अनुबन्ध की विषय–वस्तु को पहचानने में गलती कर जाते है तो अनुबन्ध विषय–वस्तु की पहचान सम्बन्धी गलती के कारण व्यर्थ होता है। ऐसी गलती के कारण दोनो ही पक्षकार विषय–वस्तु को भिन्न भिन्न रूप में समझ लेते है और अनुबन्ध में एक ही बात पर समान भाव से सहमत नही हो पाते है, परिणामस्वरूप अनुबन्ध व्यर्थ हो जाता है।

3. **विषय–वस्तु के स्वामित्व के सम्बन्ध में गलती**– जब अनुबन्ध का एक पक्षकार दूसरे पक्षकार से किसी वस्तु के विक्रय का अनुबन्ध करता है जिसका स्वामित्व उसके पास नही है किन्तु वह गलती से उस वस्तु को अपने स्वामित्व में समझता है और दूसरा पक्षकार भी उस पहले पक्षकार को ही स्वामी समझता है तो ऐसा अनुबन्ध विषय–वस्तु के स्वामित्व के सम्बन्ध में गलती के आधार पर व्यर्थ हो जाता है।

   **उदाहरण** – अ ने ब से जमींन खरीदी और उसमें अपना मकान बना लिया। बाद में मालूम हुआ कि ब उस जमींन का वास्तविक स्वामी नही था बल्कि एक अन्य व्यक्ति स उस जमींन का स्वामी था। यह भी तथ्य था कि अ और ब दोनो ही गलती पर थे और दोनो ने ही सद्भावना से सौदा किया था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **विषय के मूल्य के सम्बन्ध में गलती**– जब अनुबन्ध के दोनो पक्षकार अनुबन्ध की विषय–वस्तु के मूल्य के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न विचार रखकर अनुबन्ध कर लेते है तो ऐसा अनुबन्ध मूल्य सम्बन्धी गलती के कारण व्यर्थ हो जाता है।

   **उदाहरण** – अ ने मोटर 'हिन्दुस्तान 10' ब को 39350 रूपये में यह समझकर बेची कि वह कन्ट्रोल मूल्य था। ब ने भी यह समझा कि यह कन्ट्रोल मूल्य है। वास्तव में कन्ट्रोल मूल्य 38,195 रूपये था। निर्णय दिया गया कि गलती से 1155 रूपये अधिक भुगतान किया गया है। अतः वह राशि ब को वापस की जाए। (मद्रास उच्च न्यायालय का मामला)

5. **विषयवस्तु की मात्रा के सम्बन्ध में गलती**– जब अनुबन्ध के पक्षकार अनुबन्ध की विषय–वस्तु की मात्रा को भिन्न भिन्न समझते है तो विषय–वस्तु की मात्रा सम्बन्धी गलती के कारण अनुबन्ध व्यर्थ हो जाता है।

   **उदाहरण** – **चार्ल्सबर्थ बनाम जेनिंग्स** के मामले में एक दलाल ने एक ही अनुबन्ध के सम्बन्ध में क्रेता तथा विक्रेता को क्रय व विक्रय पत्र सौंपा जिसमें क्रय व विक्रय की मात्रा अलग अलग लिखी हुई थी। न्यायालय ने निर्णय दिया कि अनुबन्ध मात्रा सम्बन्धी गलती के कारण व्यर्थ है।

6. **विषयवस्तु के गुण सम्बन्धी गलती** – जब अनुबन्ध के दोनों पक्षकार विषय वस्तु के गुणों को भिन्न भिन्न समझकर अनुबन्ध कर लेते है तो वह अनुबन्ध गुण सम्बन्धी गलती के आधार पर व्यर्थ हो जाता है।

(B) **निष्पादन की असम्भवता सम्बन्धी गलती** – जब अनुबन्ध करते समय तो दोनों पक्षकार यह समझते है कि अनुबन्ध पूरा करना सम्भव है किन्तु अनुबन्ध को पूरा करना असंम्भव हो तो अनुबन्ध निष्पादन की असम्भवता सम्बन्धी गलती के आधार पर व्यर्थ हो जाता है।

II. **राजनियम सम्बन्धी गलतियां** (Mistake of Law) अनेक बार अनुबन्ध के पक्षकार राजनियम से संबंन्धित गलतियाँ करके अनुबन्ध कर लेते है। ऐसी गलतियाँ मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है।

1. **देश के सामान्य राजनियम से संबंन्धि गलतियाँ**– इस सम्बन्ध में सामान्य नियम है कि '**कानून की अनभिज्ञता को क्षमा नही किया जा सकता**'। देश के प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने देश के कानून को जानता है। यदि कोई व्यक्ति कानून सम्बन्धी गलती करता है तो इस आधार पर निर्दोष नही माना जाता है अतः क्षमा भी नही किया जा सकता। देश के कानून के सम्बन्ध में भूल या गलती करने पर भी अनुबन्ध से उत्पन्न अपने दायित्वों को पूरा करना पड़ता है। **अनुबन्ध अधिनियम की धारा 21** में बताया गया है कि ''भारत में प्रचलित किसी कानून के सम्बन्ध में की गई गलती के कारण कोई भी अनुबन्ध व्यर्थनीय नही हैं।

   **उदाहरण** – अ ने ब को पांच वर्ष पूर्व लिये गये ऋण के लिए एक प्रतिज्ञा पत्र लिखकर दिया। बाद में उसे ज्ञात होता है कि वह उस ऋण को चुकाने के लिए कानूनी रूप से बाध्य नही है। अ अपनी अज्ञानता के आधार पर अनुबन्ध को व्यर्थ समझने का न्यायालय से मांग नही कर सकता है।

2. **विदेशी राजनियम सम्बन्धी गलती** – जब पक्षकार अनुबन्ध करते समय किसी दूसरे देश के राजनियम के सम्बन्ध में गलती करते है, तो ऐसी विदेशी राजनियम से संबंधित गलती कहलाती है। विदेश के राजनियम सम्बन्धी गलती को कानूनी की गलती नही मानते है, बल्कि उसे तथ्य सम्बन्धी गलती की भांति ही मानते है। क्योकि एक देश के नागरिक से विदेशों के कानून जानने की आशा नही की जा सकती। अतः विदेशी राजनियम से संबंधित गलती के आधार पर हुआ अनुबन्ध पूर्णतः' व्यर्थ होता है।

   **उदाहरण** – अ तथा ब फ्रांस के विनिमय पत्र सम्बन्धी राजनियम के सम्बन्ध में गलत विश्वास रखते हुए एक अनुबन्ध करते है, यह अनुबन्ध व्यर्थ है।

## स्वतंत्र सहमति नही होने के अनुबन्ध पर प्रभाव
## (Effect on Contracts in the Absence of free consent)

**अनुबन्ध अधिनियम की धाराएं 19, 19ए और 20 में** अनुबन्ध में किसी पक्षकार की स्वतंत्र सहमति न होने के प्रभाव बताये गए है जिनका संबंधित धाराओं के साथ उल्लेख कर दिया गया है। सभी के प्रभाव इस प्रकार है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. यदि किसी ठहराव में सहमति **उत्पीड़न, अनुचित प्रभाव, कपट या मिथ्या वर्णन** द्वारा प्राप्त की जाती है तो वह ठहराव पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर **व्यर्थनीय** होगा। **(धारा 19)**
2. **कपट अथवा मिथ्यावर्णन की दशा** में पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध की अभिपुष्टि कर सकता है और यदि ऐसा करना वह अपने हित में समझता है तो वह इस बात के लिए बाध्य कर सकता है कि उसे उस स्थिति में रखकर अनुबन्ध को पूरा किया जायें। **(धारा 19)**
3. यदि अनुबन्ध **'कपट'** से प्रभावित है तो पीड़ित पक्षकार को यह अधिकार है कि वह अपनी क्षति की पूर्ति करवा सके। मिथ्यावर्णन की दशा में सामान्यतः उसे ऐसा अधिकार प्राप्त नही होता है।
4. **अनुचित प्रभाव की दशा में** अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर **व्यर्थनीय** होता है। ऐसे अनुबन्धों को पूर्ण रूप से निरस्त किया जा सकता है। यदि पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध के अधीन कुछ लाभ प्राप्त कर चुका है तो अनुबन्ध उन शर्तो के आधार पर रद्द किया जा सकता है, जो न्यायालय को उचित प्रतीत हो। **(धारा 19।)**
5. जब अनुबधं के दोनो पक्षकार अनुबन्ध के महत्वपूर्ण तथ्य सम्बन्धी गलती पर होते है तो वह अनुबन्ध व्यर्थ होता है। **(धारा 20)**
6. देश में लागू होने वाले राजनियम के सम्बन्ध में गलती करने से पक्षकारों का अनुबन्ध व्यर्थनीय समझने का अधिकार नही हो जाता है, किन्तु यदि अनुबन्ध का कोई पक्षकार **विदेशी राजनियम के सम्बन्ध में गलती** करता है तो अनुबन्ध व्यर्थ होता है। **(धारा 21)**
7. अनुबन्ध के किसी एक पक्षकार के तथ्य सम्बन्धी गलती पर होने की दशा में अनुबन्ध व्यर्थनीय नही होता है। **(धारा 22)**

**बोध प्रश्न–**

1. कपट व मिथ्यावर्णन में अन्तर बताईयें ?
2. कपट के स्वरूपों का संक्षेप में वर्णन कीजियें ?
3. स्वतंत्र सहमति नही होने के अनुबन्ध पर प्रभाव बताईयें।
4. व्यावहारिक प्रश्न – अ एक कारखाने का मालिक है, उसे ब को बेचने का इरादा रखते हुए, उसे धोखा देने के अभिप्राय से कहता है कि मेरे कारखाने में प्रतिमाह 1000 ईकाइयाँ उत्पादित की जाती है। यह कथन ब को अ के साथ अनुबन्ध के करने के लिए प्रेरित करता है। बाद में यह ज्ञात होता है कि कारखाना केवल 700 ईकाइयाँ ही बना रहा था। क्या यह अनुबन्ध वैध है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

# अध्याय 5.
# प्रतिफल
## (Consideration)

एक वैध अनुबन्ध के लिए कई तत्वों का होना आवश्यक है, जिसका उल्लेख भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 10 के अन्तर्गत किया गया है। उन आवश्यक तत्वों में से एक महत्वपूर्ण तत्व '**प्रतिफल**' है। किसी अनुबन्ध की वैधता के लिए प्रतिफल का होना अनिवार्य है। बिना न्यायोचित प्रतिफल के वैध अनुबन्ध नहीं होता और कानून की दृष्टि से वह व्यर्थ होता है।

**प्रतिफल तथा उद्देश्य (Consideration and Object)**

'**प्रतिफल**' तथा **'उद्देश्य'** सापेक्षिक शब्द हैं। प्रतिफल और उद्देश्य दो पक्षकारों के भिन्न दृष्टिकोणों से एक ही विषय के दो नाम हैं। प्रत्येक अनुबन्ध में दो पक्षकार होते है। वे एक–दूसरे को 'पारस्परिक वचन' प्रदान करते हैं। जो वस्तु या कार्य या मूल्य एक पक्षकार के दृष्टिकोण से **प्रतिफल** होता है, वही दूसरे पक्षकार के दृष्टिकोण से **उद्देश्य** होता है। अतः यह स्पष्ट है कि अनुबन्ध में प्रतिफल तथा उद्देश्य होना चाहिये, किन्तु केवल प्रतिफल या उद्देश्य होना ही पर्याप्त नहीं है। बल्कि ऐसा प्रतिफल तथा **उद्देश्य वैधानिक होना चाहिये।**

**उदाहरण**– अ अपना मकान ब को 25000 रूपये में बेचने का अनुबन्ध करता है। उदाहरण में ;पद्ध अ और ब इस अनुबन्ध के दो पक्षकार है। ;पपद्ध अ द्वारा 25,000 रूपये में ब को मकान बेचने का वचन और ब द्वारा उस मकान को खरीदने और बदले में 25,000 रूपये देने का वचन–पारस्परिक वचन है। ;पपपद्ध यहाँ मकान का विक्रय अ के दृष्टिकोण से अनुबन्ध का '**उद्देश्य**' है और ब के दृष्टिकोण से **प्रतिफल** है, और ;पअद्ध 25,000 रूपये का भुगतान अ के दृष्टिकोण से 'प्रतिफल' है व ब के दृष्टिकोण से अनुबन्ध का 'उद्देश्य'।

**प्रतिफल से आशय–** साधारण शब्दों में प्रतिफल से आशय उस मूल्य या प्राप्ति से होता है जो वचनदाता के वचन के बदले वचनग्रहिता द्वारा दिया जाता हैं। दूसरों शब्दों में हम कह सकते है कि एक पक्षकार जो किसी कार्य को करने अथवा उससे विरत रहने के बदले में दूसरे पक्षकार से जो प्राप्त करता है, वह वैधानिक दृष्टिकोण से 'प्रतिफल' कहलाता है। अतः प्रतिफल को **कुछ के बदले कुछ** भी कहा जाता हैं। वह प्रतिफल एक पक्षकार के लिए लाभ, हित, कार्य या अधिकार के रूप में हो सकता है तथा दूसरें पक्षकार के लिए हानि, अहित, दायित्व या वचन आदि के रूप में हो सकता है।

**प्रतिफल की परिभाषाएँ**

**पोलक के शब्दो में** – ''प्रतिफल वह मूल्य है जिसके बदले दूसरे का वचन खरीदा जाता है और इस मूल्य के बदले प्राप्त वचन को प्रवर्तित करवाया जा सकता है।''

**न्यायाधीश पेटरसन के अनुसार**– ''प्रतिफल किसी ऐसी वस्तु या कार्य को कहते है जिसका कानून की दृष्टि से कुछ मूल्य हो। यह वादी को कुछ लाभ अथवा प्रतिवादी को कुछ हानि पहुंचाने वाला हो सकता हैं।''

**न्यायाधीश लश द्वारा क्यूरी बनाम मीसा के विवाद में दी गई परिभाषा–** ''राजनियम के दृष्टि से मूल्यवान प्रतिफल वह है जिसमें यदि एक पक्षकार को किसी प्रकार का लाभ, हित या अधिकार प्राप्त होता है तो दूसरे पक्षकार को कोई हानि, अहित, विरती या उतरदायित्व प्राप्त होता है।''

**भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 2(d) के अनुसार–** ''जब वचनदाता की इच्छा पर वचनग्रहिता या किसी अन्य व्यक्ति ने कोई कार्य किया है या करने से विरत रहा है अथवा कुछ कार्य करता है या उसके करने से विरत रहता है अथवा कुछ कार्य करने या विरत रहने का वचन देता है, तो ऐसा कार्य या उससे विरती या वचन, उस वचन का प्रतिफल कहलाता हैं।''

उपरोक्त धारा 2(d) का विश्लेषण करके हम इसे इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते है–

| | | | |
|---|---|---|---|
| जब वचनदाता की इच्छा पर | वचनग्रहिता या किसी अन्य व्यक्ति ने | कोई कार्य | (i) किया है या करने से विरत रहा है, अथवा<br>(ii) करता है या उसके करने से विरत रहता है, अथवा<br>(iii) करने या विरत रहने का वचन देता है। |

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तो ऐसा कार्य या उससे विरती या वचन, उस वचन का प्रतिफल कहलाता है।

**प्रतिफल के आवश्यक लक्षण अथवा तत्व**

प्रतिफल की परिभाषाओं का विश्लेषण करने से प्रतिफल के निम्नलिखित आवश्यक लक्षण प्रकट होते है :

1. **प्रतिफल वचनदाता की इच्छा पर हो –** प्रतिफल का प्रथम लक्षण यह है कि प्रतिफल के रूप में किया जाने वाला कोई कार्य अथवा उस कार्य से विरति वचनदाता की इच्छा या प्रार्थना पर होनी चाहिए। यदि वचनग्रहीता अपनी स्वेच्छा से अथवा किसी अन्य व्यक्ति की इच्छा से कोई कार्य करता है तो उसे वचनदाता के वचन का प्रतिफल नही माना जा सकता है।

2. **प्रतिफल से वचनदाता को स्वयं को लाभ होना आवश्यक नहीं है –** प्रतिफल की वैधता के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वचनग्रहीता द्वारा किये जाने वाले कार्यो अथवा कार्य से विरति से वचनदाता को स्वयं को ही लाभ हो। यदि वचनदाता को स्वयं को लाभ न हो किन्तु उसकी इच्छा से ही वचनग्रहीता ने कोई कार्य किया है जिसका किसी अन्य पक्षकार को लाभ हुआ है तो भी यह वैध प्रतिफल कहलायेगा। इस सिद्धान्त को ही आजकल **'प्रतिज्ञा की विबाध्यता'** के सिद्धान्त अथवा **'समान विबाध्यता'** के नाम से भी जाना जाता है।

3. **प्रतिफल वचनग्रहीता अथवा किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा दिया जा सकता है–** प्रतिफल वचनग्रहीता अथवा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा भी दिया जा सकता है। यदि वचनग्रहीता की ओर से किसी अन्य व्यक्ति ने प्रतिफल दिया है और वह प्रतिफल वचनदाता की इच्छानुसार है तो प्रतिफल वैध माना जावेगा। इस नियम को **'रचनात्मक प्रतिफल का सिद्धान्त'** के नाम से पुकारा जाता है।

4. **प्रतिफल कुछ कार्य करने या न करने के सम्बन्ध में हो सकता है –** प्रतिफल सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों में से किसी भी प्रकार का हो सकता है। जब वचनग्रहीता वचनदाता की इच्छा के अनुसार कोई कार्य करता है तो हम उसे सकारात्मक प्रतिफल कह सकते हैं। इसके विपरीत यदि वचनग्रहीता वचनदाता की इच्छा के अनुसार किसी कार्य को करने से विरत रहता है (अर्थात् नहीं करता है) तो यह नकारात्मक प्रतिफल कहलाता है। इस प्रकार दोनों प्रकार के कार्य वैध प्रतिफल हो सकते है।

5. **कुछ प्रतिफल होना आवश्यक है–** प्रत्येक अनुबन्ध में कुछ न कुछ प्रतिफल अवश्य होना चाहिये। अनुबन्ध में प्रतिफल बहुत कम हो तो भी अनुबन्ध वैध हो सकता है। किन्तु बहुत कम प्रतिफल इस बात का सन्देह उत्पन्न करता है कि कहीं अनुबन्ध स्वतन्त्र सहमति के अभाव में तो नही किया गया है। प्रतिफल की पर्याप्तता देखना प्रस्तावक का कर्त्तव्य है। **एन्सन ने कहा– ''न्यायालय का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह जाँच करे कि प्रतिफल पर्याप्त है अथवा नहीं है।''**

   **धारा 25 के स्पष्टीकरण 2 में** भी निर्देश है कि प्रतिफल का पर्याप्त होना आवश्यक नहीं है। **उच्चतम न्यायालय ने चिदम्बर बनाम रेंगा** के मामले में निर्णय देते हुए कहा– प्रतिफल कुछ अवश्य होना चाहिये जिस न केवल पक्षकार माने वरन् कानून भी उसे कुछ मूल्य का मानें।

6. **प्रतिफल वास्तविक एवं मूल्यवान होना चाहिये–** प्रतिफल का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण यह है कि प्रतिफल वास्तविक एवं मूल्यवान होना चाहिए। **एन्सन ने लिखा है कि ''प्रतिफल का राजनियम की दृष्टि में कुछ मूल्य होना चाहिए।''** यदि प्रतिफल भ्रामक, अनिश्चित और असम्भव, अस्पष्ट है तो वह वास्तविक तथा मूल्यवान प्रतिफल नहीं माना जा सकता है।

7. **प्रतिफल भूत, वर्तमान अथवा भावी हो सकता है–** प्रतिफल की परिभाषा से एक बात और स्पष्ट होती है कि भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में भूतकालीन प्रतिफल, वर्तमान प्रतिफल व भावी प्रतिफल हो सकते है। अधिनियम में तीनों ही प्रकार के प्रतिफलों को वैध माना गया हैं।

   (i) **भूतकालीन प्रतिफल**– जब किसी वचन के पूर्व ही किसी पक्षकार द्वारा प्रतिफल दे दिया गया हो तो वह भूतकालीन प्रतिफल कहलाता है। दूसरे शब्दो में, भूतकालीन प्रतिफल में प्रतिफल पहले दिया जाता है और उसके बदले में वचन बाद में प्राप्त होता है। किन्तु किसी व्यक्ति द्वारा भूतकाल में **स्वैच्छा से की गई सेवाएँ भूतकालीन प्रतिफल नहीं होगा।**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उदाहरण– अ, ब को नदी में डूबने से बचाता है। ब, अ को 100 रूपये देने का वचन देता है यहाँ यह भूतकालीन प्रतिफल माना जायेगा। क्योकि अ ने यह कार्य ब के वचन के कारण नही किया, जो कुछ भी उसने किया वह ब के वचन देने से पूर्व ही किया था।

(ii) **वर्तमान प्रतिफल**– जब प्रतिफल तथा वचन साथ–साथ ही दिया जाता है तो वह वर्तमान या निष्पादित प्रतिफल कहलाता हैं। इसमें जिस वचन के लिए प्रतिफल दिया जा रहा है उस वचन का निष्पादन उसी समय कर दिया जाता है। अतः यह निष्पादित प्रतिफल कहलाता है।

उदाहरण – अ, ब को एक टी वी सैट बेचने का अनुबन्ध करता है। यदि वह उसे नकद भुगतान कर दे। नकद भुगतान तथा भुगतान के बदले टी वी देने का वचन वर्तमान प्रतिफल है।

(iii) **भावी प्रतिफल** – अनुबन्ध हो जाने के बाद दिये जाने वाला प्रतिफल भावी या निष्पादनीय प्रतिफल है।

उदाहरण :– अ, ब को 1, जनवरी को टीवी सैट देने का वचन देता है तथा ब उसके दस दिन बाद भुगतान का वचन देता है। इसमें दोनो ही पक्षकारों के लिए प्रतिफल भावी है।

8. **प्रतिफल वैधानिक होना चाहिये–** अनुबन्ध के वैध होने के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रतिफल वैधानिक होना चाहिए। अवैधानिक प्रतिफल वाले ठहराव व्यर्थ होते है।

9. **प्रत्येक अनुबन्ध के लिए पृथक प्रतिफल होना चाहिये–** प्रत्येक अनुबन्ध के लिए पृथक प्रतिफल होना आवश्यक है। यदि एक पक्षकार के साथ दो या अधिक अनुबन्ध किये जाते है तो भी अनुबन्ध का प्रतिफल पृथक–पृथक ही होना चाहिये।

**अवैधानिक प्रतिफल तथा उद्देश्य**

वैध अनुबन्ध होने के लिए केवल उचित प्रतिफल होना ही पर्याप्त नहीं है वरन् प्रतिफल और उद्देश्य दोनों का ही वैध होना अनिवार्य है। प्रत्येक ठहराव जिसका प्रतिफल और उद्देश्य अवैधानिक हो, अनुबन्ध अधिनियम की दृष्टि से व्यर्थ होता है। **धारा 23 के अनुसार** निम्नलिखित परिस्थितियों में एक अनुबन्ध का प्रतिफल और उद्देश्य अवैधानिक होता है। इनको छोड़कर शेष परिस्थितियों में अनुबन्ध का प्रतिफल एवं उद्देश्य वैधानिक माना जाता है।

1. **यदि वह राजनियम द्वारा वर्जित हो–** यदि ठहराव राजनियम की व्यवस्थाओं के प्रतिकूल हो या राजनियम की सामान्य नीति के विरूद्ध हो या कानून द्वारा वर्जित हो तो ऐसा ठहराव अवैधानिक माना जाता है। क्योंकि इसका उद्देश्य राजनियम द्वारा वर्जित होने के कारण अवैध है।

**उदाहरण** – अ एक मकान मालिक है और ब उसका किरायेदार है। अ ने ब को मकान खाली करने के लिए 20000 रूपये देता है और मकान खाली कराने का ठहराव करता है। ब रूपये रख लेता है और मकान भी खाली नही करता है। ऐसी स्थिति में अ द्वारा ब से रूपये वापस लेने के मामले में न्यायालय ने निर्णय दिया कि ऐसा करना किराया प्रतिबन्ध अधिनियम द्वारा वर्जित है। अतः यह अनुबन्ध व्यर्थ है।

2. **राजनियम की व्यवस्थाओं को निष्फल करने वाला ठहराव–** राजनियम जनता की सुरक्षा एवं हित के लिये बनाये जाते हैं अतः किसी अनुबन्ध का प्रतिफल तथा उसका उद्देश्य ऐसा है कि यदि ऐसा कार्य करने की पक्षकारों को अनुमति दे दी जाय तो वह किसी राजनियम की व्यवस्थाओं को निष्प्रभावी कर देगा तो ऐसा प्रतिफल व अनुबन्ध का उद्देश्य अवैधानिक माना जाता है और इस आधार पर जो भी अनुबन्ध किये जाते है वे सभी व्यर्थ है क्योकि उन्हें राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही कराया जा सकता है।

**उदाहरण–** एक मामले में गोद लेने वाले पिता तथा वास्तविक पिता के बीच यह अनुबन्ध हुआ कि गोद लेने वाला पिता पुत्र गोद लेने के बदले वास्तविक पिता पुत्र गोद लेने के बदले वास्तविक पिता को कुछ वार्षिक भत्ता दिया करेगा। न्यायालय ने इस अनुबन्ध को अवैध ठहराया। क्योंकि यह अनुबन्ध हिन्दु राजनियम की व्यवस्थाओं को निष्फल करता है। हिन्दु राजनियम के अनुसार बच्चे को केवल स्नेहवश गोद लिया जा सकता है। किसी मौद्रिक प्रतिफल के बदले नही।

3. **यदि वह कपटमय हो–** जब किसी अनुबन्ध का उद्देश्य किसी पक्षकार को जानबुझकर धोखा देना होता है तो वह अनुबन्ध व्यर्थ होता है। इस प्रकार कपटपूर्ण उद्देश्य से किये गए अनुबन्ध एवं उसका प्रतिफल दूसरे

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University, Ladnun

पक्षकार के साथ धोखा देना हो तो वे इसी श्रेणी में आते है और ऐसे अनुबन्ध राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही होते है। इसमें वे सभी कपटपूर्ण ठहराव भी सम्मिलित है जो ऋणदाताओं, राजस्व अधिकारियों, जन सामान्य आदि के साथ कपट करने के लिए किये जाते है।

**उदाहरण**– अ एक ऋणी है। वह अपने ऋणदाताओं से संपति को बचाने के उद्देश्य से अपनी पत्नी व रिश्तेदारों के नाम सम्पत्ति का हस्तातंरण कर देता है। ऐसे अनुबन्ध का उद्देश्य कपटमय होने के कारण अवैधानिक माना जाता है। अतः ये व्यर्थ होते है।

4. **यदि उससे किसी व्यक्ति के शरीर या सम्पत्ति को हानि पहुचंती है –** ऐसे ठहराव जिसका उद्देश्य दूसरे व्यक्ति के शरीर अथवा सम्पत्ति को हानि पहुंचाना हो तो वे व्यर्थ माने जाते है अर्थात किसी प्रतिफल के बदले किसी व्यक्ति के शरीर अथवा सम्पत्ति को नुकसान पहुचाने के उद्देश्य से किया गया हो तो ऐसे ठहराव अवैधानिक माने जाते है और वे सभी व्यर्थ होते है।

5. **यदि न्यायालय उसे अनैतिक समझता है–** यदि किसी ठहराव के उद्देश्य या प्रतिफल को न्यायालय अनैतिक मानता है तो वह व्यर्थ होता है। अतः ऐसा प्रत्येक ठहराव जिसका उद्देश्य या प्रतिफल अनैतिक है व कानून के विरूद्ध हो तो वह अवैधानिक माना जाता है क्योंकि ऐसा करने से व्यक्तियों का नैतिक पतन होता है।

**घेरूलाल पारीख बनाम कुमारी माया** के मामले में अनैतिक ठहराव को स्पष्ट करते हुए न्यायाधीश सुब्बाराव ने अनैतिक ठहरावों में निम्न को शामिल किया है–

- रखेल रखने के ठहराव।
- तलाक देने हेतु प्रोत्साहित करने के ठहराव।
- वैश्यालयों में रखी वस्तुओं को किराये पर देने या बेचने के ठहराव।

**उदाहरण–** एक व्यक्ति ने एक विवाहित स्त्री को अपने पति से तलाक लेने व बाद में उससे विवाह करने के लिए 5000 रूपये दिये। स्त्री ने रूपये रख लिए किन्तु तलाक नही दिया। उस व्यक्ति द्वारा रूपये वापस प्राप्त करने के मुकदमें में बम्बई उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि रूपये अनैतिक कार्य हेतु दिये गए है। अतः यह व्यर्थ है।

6. **यदि न्यायालय उसे लोकनीति के विरूद्ध समझता है–** लोकनीति का कानून व सिद्धान्त है जो यह स्पष्ट करता हैं कि कोई भी व्यक्ति ऐसा कार्य वैधानिक रूप से नही कर सकता जो किसी समाज एवं सामान्य व्यक्ति या राष्ट्र के हितों के विरूद्ध हो।

इस प्रकार ऐसे ठहराव जिनकी प्रक्रिया या ऐसा कार्य जो सामान्यतः समाज के हितों के विरूद्ध हो अथवा देश के लिए अहितकर हो वे लोकनीति के विरूद्ध माने जाते है। इसके अन्तर्गत सामाजिक राजनैतिक व्यक्तिगत आदि सभी प्रकार के ठहराव आ जाते है। अतः कोई ठहराव जिसमें लोकहित को क्षति पहुंचती है वह ठहराव व्यर्थ तथा अवैध होता है। वर्तमान समय में निम्न प्रकार के ठहराव न्यायालय की दृष्टि से लोकनीति के विरूद्ध माने जाते है।

**(I) न्याय सम्बन्धी ठहराव–**

(i) मुकदमेंबाजी को अनुचित रूप से प्रोत्साहन देने वाले ठहराव।
(ii) दण्डनीय मामलों को दबाने के ठहराव।
(iii) न्यायिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप के ठहराव।
(iv) न्यायालय के क्षेत्र में हस्तक्षेप के ठहराव।
(v) रिश्वत के ठहराव।
(vi) अधिनियम की अवधि को परिवर्तित करने वाले ठहराव।
(vii) प्रतिफल के बदले गवाही देने वाले ठहराव।

**(II)व्यापार सम्बन्धी ठहराव**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(i) व्यापार में रूकावट डालने के ठहराव।
(ii) लेनदानों के साथ कपट के ठहराव।
(iii) कर चोरी के ठहराव।
(iv) विदेशी शत्रु के साथ ठहराव।
(v) नीलाम में बोली न लगाने के ठहराव।
(vi) एकाधिकार निर्माण के ठहराव।
(vii) निविदा में एक दूसरे से अधिक मूल्य न लिखने के ठहराव।

**(III) व्यक्तिगत ठहराव–**

(i) विवाह में रूकावट डालने के ठहराव।
(ii) वैवाहिक सम्बन्धो में हस्तक्षेप करने के ठहराव।
(iii) दलाली के बदले विवाह के ठहराव।
(iv) पैतृक अधिकार में रूकावट डालने के ठहराव।

**(IV) सामाजिक ठहराव–**

(i) सार्वजनिक पदों के विक्रय के ठहराव–नौकरी दिलाना।
(ii) उपाधि या पदवी दिलाने के ठहराव।
(iii) चुनावों को गलत तरीके से प्राभावित करने के ठहराव।
(iv) व्यक्तिगत स्वंतत्रता को प्रभावित करने वाले ठहराव।
(v) कर्त्तव्य के विरूद्ध हित निर्माण के ठहराव।

**(V) अन्य ठहराव–**

(i) जुआ।
(ii) तस्करी।
(iii) वैश्यावृति।

**बोध प्रश्न** –

1. प्रतिफल की परिभाषा दीजिये ?
2. भूतकालीन प्रतिफल क्या है ?
3. लोकनीति के विरूद्ध ठहराव से क्या आशय है ?
4. व्यावहारिक प्रश्न – व्यावहारिक प्रश्न – अ की ब ने अपने पति को जेल से मुक्त कराने हेतु जेलर को रिश्वत देने के अभिप्राय से स को 10000 रूपये। जेलर उसके पति को मुक्ति दिलाने में असफल रहा। क्या ब उक्त धनराशि वापस प्राप्त कर सकती है ?

## आंशिक रूप से अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य के ठहराव

**अनुबन्ध अधिनियम की धारा 24 के अनुसार,** यदि किसी ठहराव का उद्देश्य अथवा प्रतिफल आंशिक रूप से अवैध है तो यह ठहराव व्यर्थ है।

यदि ठहराव का प्रतिफल पृथक–पृथक किया जा सकता है तो वैध प्रतिफल वाला अंश वैधानिक माना जायेगा और अवैध प्रतिफल वाला अंश अवैधानिक माना जायेगा। यदि ठहराव का वैध तथा अवैध भागो को अलग अलग नही किया जा सकता है तो पूरा ठहराव ही व्यर्थ होगा।

**उदाहरण**– एक मामले में प्रतिवादी ने वादी को, जो कि एक विवाहित महिला थी, अपने यहां निम्नलिखित दो कार्यो के लिए एक निश्चित वेतन पर रखा– (i) घर की नौकरानी के रूप में कार्य करने, तथा (ii) प्रतिवादी के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

साथ व्यभिचारपूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए। यह ठहराव आंशिक रूप से अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य वाला है। प्रतिवादी द्वारा निश्चित प्रतिफल न देने पर वादी ने न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया। न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह निश्चित करना कठिन है कि कितना पारिश्रमिक वैध कार्य के लिए था तथा कितना अवैध कार्य के लिए। अतः अनुबन्ध व्यर्थ घोषित कर दिया गया।

**बिना प्रतिफल का ठहराव व्यर्थ होता है।**

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 25 के अनुसार,** सामान्यतः बिना प्रतिफल के ठहराव व्यर्थ माना जाता हैं। अतः प्रत्येक अनुबन्ध में प्रतिफल होना आवश्यक है क्योंकि प्रतिफल के अभाव में अनुबन्ध जुएँ के समान माना जाता है और वह व्यर्थ हो जाता है। इसलिये **न्यायाधीश डनिंग ने कहा है कि** अनुबन्ध के निर्माण के लिए प्रतिफल अत्यन्त आवश्यक है। प्रतिफल अनुबन्ध की आधारशिला है।

**सालमण्ड तथा विनफिल्ड ने अपनी पुस्तक Law of Contracts** में बताया है कि– ''एक अनुबन्ध की वैधता के लिए प्रतिफल आवश्यक है। बिना प्रतिफल के वचन भेंट होता है। जब कि प्रतिफल वाला अनुबन्ध सौदा होता है।''

**एन्सन ने इसके सम्बन्ध में कहा है कि** ''प्रत्येक सामान्य अनुबन्ध के लिए प्रतिफल आवश्यक है। प्रतिफल के अभाव में ठहराव अप्रवर्तनीय रहता है।''

इन विद्धानों के विचारों से यही स्पष्ट होता है कि एक वैध अनुबन्ध के निर्माण के लिए प्रतिफल का होना आवश्यक है। इसलिए प्रतिफल को अनुबन्ध की रीढ़ की हड्डी के सामान माना गया है।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25 के प्रारम्भ में भी बताया गया है कि कोई भी ठहराव जो बिना प्रतिफल के है, व्यर्थ होता है। अतः निष्कर्षस्वरूप यह कहा जा सकता है कि राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय होने के लिए प्रत्येक ठहराव में कुछ न कुछ प्रतिफल अवश्य होना चाहिए। यदि ठहराव में प्रतिफल का सर्वथा अभाव होगा तो अनुबन्ध व्यर्थ होगा।

**अपवाद** – बिना प्रतिफल के ठहराव व्यर्थ होता है। प्रतिफल के इस सामान्य नियम के कुछ अपवाद है अर्थात कुछ अनुबन्ध ऐसे भी होते है जिनमें प्रतिफल नही होने पर भी वे वैध होते है। अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25 की उपधाराओं एवं अन्य में इन अपवादों का वर्णन किया गया है, जो निम्नांकित है–

1. **स्वभाविक प्रेम एवं स्नेह के कारण अनुबन्ध होना–** जब अनुबन्ध किन्ही निकटतम संबंधियों के बीच स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह के कारण होता है और वह अनुबन्ध लिखित एवं रजिस्टर्ड होता है तो बिना प्रतिफल के भी वैध होता है। **(धारा 25(i))**

   उपरोक्त धारा का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि ऐसा अनुबन्ध बिना प्रतिफल के भी वैध हो सकता है–

   (i) यदि वह लिखित है।
   (ii) यदि वह प्रचलित विधि के अन्तर्गत रजिस्टर्ड है।
   (iii) यदि वह निकटतम संबंधियों के बीच किया गया है।
   (iv) यदि वह स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह से प्रेरित होकर किया गया है।

   सामान्यतः माता–पिता एवं पुत्र–पुत्री, भाई बहन, पति–पत्नी, तथा दामाद एवं ससुर के बीच निकटतम सम्बन्ध होता है और यदि ये स्वभाविक प्रेम व स्नेह के आधार पर कोई अनुबन्ध करते है जो लिखित एवं रजिस्टर्ड हो तो ऐसे अनुबन्ध बिना प्रतिफल के भी वैध माने जाते है।

   **इस सम्बन्ध में रामदास बनाम श्रीमती किशनदेवी (1985) के मामले में हिमाचल प्रदेश के उच्च न्यायालय ने स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह के कारण अनुबन्ध को वैध माना है।**

   उदाहरण – अ अपने दामाद को स्नेहवश अपनी सम्पत्ति में से 50,000 रूपये देने का लेख पत्र तैयार करके रजिस्टर्ड करवा देता है। यह अनुबन्ध वैध है क्योंकि यह अनुबन्ध लिखित, रजिस्टर्ड है तथा प्राकृतिक स्नेहवश दे रहा है। ये निकटतम सम्बन्धी हैं।

2. **स्वेच्छा से किये गए कार्य की क्षतिपूर्ति के अनुबन्ध–** जब किसी व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के लिए स्वेच्छा से कुछ कार्य किया है, जिसे करने के लिए वह व्यक्ति नैतिक एवं वैधानिक रूप से बाध्य था और परिणामस्वरूप वह

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दूसरा व्यक्ति पहले व्यक्ति की सेवाओं की पूर्ण या आंशिक रूप से क्षतिपूर्ति करने के लिए अनुबन्ध करता है तो ऐसा अनुबन्ध प्रतिफल के अभाव में भी वैध होता है। **(धारा 25(ii))**

इस धारा के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि –

(i) एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के लिए स्वेच्छा से कार्य किया है।
(ii) उस कार्य को करने के लिए वह व्यक्ति नैतिक एवं वैधानिक रूप से बाध्य है।
(iii) दूसरे व्यक्ति ने पहले व्यक्ति की सेवाएँ या कार्य की क्षतिपूर्ति करने का वचन दिया हो तो ऐसी परिस्थितियों में बिना प्रतिफल के भी अनुबन्ध वैध होता है।

इस सम्बन्ध में **धीरज कौर बनाम विक्रमजीत सिंह का मामला** उल्लेखनीय है। इस मामले में वादी धीरजकौर ने अपनी स्वेच्छा से प्रतिवादी की सेवा की। प्रतिवादी ने वादी की सेवा की क्षतिपूर्ति के लिए कुछ धन देने का वचन दिया। किन्तु बाद में उसने मना कर दिया। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इसे धारा **(धारा 25(ii))** के अन्तर्गत वैध माना।

उदाहरण– अ को ब का बेग मिला जिसे अ ने उसे ब को लौटा दिया। ब ने अ को पांच सौ रूपये देने का वचन दिया। यहाँ अ ने बेग लौटाने का कार्य स्वेच्छा से किया, यह वैध अनुबन्ध था।

3. **अवधि वर्जित ऋण के भुगतान का अनुबंध–** वैसे कोई भी ऋणदाता अपने ऋणी से अवधि वर्जित ऋण वसुल करने का वैधानिक अधिकार नही रखता, क्योंकि न्यायालय द्वारा ऐसे अवधि वर्जित ऋण प्रवर्तनीय नही होते है किन्तु यदि कोई ऋणी स्वेच्छा से अपने किसी अवधि वर्जित ऋण का भुगतान करने के लिए ऋणदाता से अनुबन्ध कर लेता है तो ऐसा अनुबन्ध बिना प्रतिफल के होते हुए भी वैध होता है। **(धारा 25(iii))**

अवधि वर्जित ऋण के भुगतान के लिए अनुबन्धों में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(i) यह अनुबन्ध लिखित तथा ऋणी द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिए।
(ii) यह अनुबन्ध ऋण के भुगतान के लिए वचन के रूप में स्पष्ट होना चाहिए।
(iii) यह अनुबन्ध अवधि वर्जित ऋण के भुगतान के लिए पूर्ण या आंशिक भुगतान हो सकता है।
(iv) यह अनुबन्ध शर्त रहित अथवा शर्त सहित हो सकता है।
(v) यह आवश्यक नही है कि ठहराव करते समय ऋणी को यह ज्ञात हो कि ऋण अवधि वर्जित हो। अतः बाद में ऋणी यह नही कह सकता कि उसे मालूम नही था कि ऋण अवधि वर्जित था।

अवधि वर्जित ऋण के भुगतान के सम्बन्ध में **इलाहाबाद उच्च न्यायालय (1988) का विशम्भर दयाल बनाम विश्वनाथ अग्रवाल का मामला महत्वपूर्ण है।** इस मामले में विश्वनाथ अग्रवाल ने विशम्भर दयाल को पूर्व के ऋण के बदले नया प्रतिज्ञा पत्र लिखा। किन्तु बाद में उसने भुगतान करने से मना कर दिया। न्यायालय ने विश्वनाथ के तर्क को नही माना और भुगतान का आदेश दिया।

**उदाहरण**– अ, 10,000 रूपये के लिए ब का ऋणी है। किन्तु ऋण 'लिमिटेशन अधिनियम' के अधीन अवधि वर्जित है। अब अ इस ऋण के सम्बन्ध में ब को 5,000 रूपये देने के लिए लिखित प्रतिज्ञा–पत्र पर हस्ताक्षर कर देता है। यह अनुबन्ध मान्य है।

4. **एजेन्सी सम्बन्धी अनुबन्ध–** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की **धारा 185 के अनुसार** एजेन्सी अनुबन्ध में प्रतिफल का होना आवश्यक नही है। अर्थात बिना प्रतिफल के भी एजेन्सी अनुबन्ध वैध होता है तथा ऐसे अनुबन्धों को राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय भी कराया जा सकता है।

बिना प्रतिफल के यदि कोई एजेन्ट कार्य करता है तो उसके अधिकार एवं कर्तव्य ठीक उसी प्रकार के होते है। जैसे कि एक एजेन्ट प्रतिफल के आधार पर कार्य करता है। अन्तर केवल इतना है कि पारिश्रमिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(प्रतिफल) पाने वाला एजेन्ट अपने नियोक्ता द्वारा सौंपे हुए कार्य को करने के लिए बाध्य होता है। जबकि बिना पारिश्रमिक के एजेन्ट अपने नियोक्ता द्वारा सौंपे गये कार्य को करने के लिए बाध्य नही होता।

5. **निःशुल्क निक्षेप के अनुबन्ध–** निक्षेप दो प्रकार का होता है–सशुल्क और निःशुल्क।

सशुल्क निक्षेप में तो दिया जाने वाला शुल्क प्रतिफल होता है किन्तु निःशुल्क निक्षेप जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है कि शुल्क नही दिया जाता अर्थात इसमें प्रतिफल का अभाव होता है। किन्तु फिर भी निःशुल्क निक्षेप वाले अनुबन्ध भी वैध होते है और एक पक्षकार की त्रुटि की दशा में दूसरा पक्षकार ऐसे अनुबन्ध को राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय कराया जा सकता है।

**उदाहरण**– अ, ब की कार निशुल्क मांगकर ले जाता है। अ लापरवाही से गाड़ी चलाता है और दुर्घटना कर देता है तो ब अपनी गाड़ी की क्षतिपूर्ति के लिए अ को बाध्य कर सकता है।

6. **दान के अनुबन्ध–** अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25 की व्याख्या में दान के अनुबन्धों के सम्बन्ध में स्पष्ट किया गया है कि–

- यदि दान वास्तव में दे दिया गया है तो दान देने वाले तथा दान प्राप्त करने वाले के बीच हुए अनुबन्धों पर अनुबन्ध अधिनियम की धारा 25 लागू नही होगी।
- यदि दान देने का वचन दिया गया है तो प्रतिफल के अभाव में यह अनुबन्ध नही माना जायेगा। अतः यह राजनियम द्वारा प्रवर्तनीय नही है।
- किन्तु जब दान के वचन के फलस्वरूप वचनग्रहीता को दान न मिलने पर कुछ हानि हुई हो तो दानदाता को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। अर्थात ऐसे अनुबन्ध प्रवर्तनीय होते है।

सम्बन्ध में **केदारनाथ बनाम गौरी मोहम्मद** का मामला उल्लेखनीय है जिसमें दान के अनुबन्ध में प्रतिफल के अभाव में भी न्यायालय ने अनुबन्ध को वैध माना और पक्षकार को अनुबन्ध के आधार पर भुगतान करने के लिए उत्तरदायी ठहराया।

**बोध प्रश्न –**

1. आंशिक रूप से अवैधानिक प्रतिफल तथा उद्देश्य के ठहराव के सम्बन्ध में क्या प्रावधान है।
2. ''बिना प्रतिफल के ठहराव व्यर्थ होता है।'' इस कथन की व्याख्या कीजिए तथा इसके अपवाद बताइये ?
3. व्यावहारिक प्रश्न – अ को ब का बेग सड़क पर पड़ा हुआ मिलता है और वह उसे ब को दे देता हैं। इसके लिए ब, अ को 500 रूपये देने का वचन देता है। बाद में वह उस राशि का देने से इन्कार कर देता है। क्या अ यह राशि प्राप्त कर सकता है।

Jain Vishva Bharti Institute (Deemed University), Ladnun

# अध्याय 6.

# व्यर्थ घोषित ठहराव

## [Agreements Declared Void]

**भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 10 के अनुसार** अनुबन्ध के लिए ठहराव ऐसा नही होना चाहिये जो अधिनियम द्वारा व्यर्थ घोषित कर दिया गया हो। **धारा 2;हद्ध** के अनुसार ''ऐसे ठहराव जो राजनियम के द्वारा प्रवर्तनीय न हो, व्यर्थ ठहराव कहलाते है।'' ऐसा ठहराव पक्षकारों के मध्य किसी प्रकार के वैधानिक दायित्वों को उत्पन्न नही करता है। भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 में निम्नलिखित ठहराव स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित कर दिये गये हैं –

1. अयोग्य पक्षकारों द्वारा किये गये ठहराव (धारा 11)
2. तथ्य से संबंधित गलती वाले ठहराव (धारा 20)
3. विदेशी राजनियम की गलती वाले ठहराव (धारा 21)
4. अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य के ठहराव (धारा 23)
5. आंशिक रूप से अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य के ठहराव (धारा 24)
6. बिना प्रतिफल के ठहराव ( धारा 25)
7. विवाह में रूकावट डालने वाले ठहराव (धारा 26)
8. व्यापार में रूकावट डालने वाले ठहराव (धारा 27)
9. वैधानिक कार्यवाही में रूकावट डालने वाले ठहराव (धारा 28)
10. अनिश्चित अर्थ वाले ठहराव (धारा 29)
11. बाजी के ठहराव (धारा 30)
12. असम्भव घटना पर आधारित ठहराव (धारा 36)
13. असम्भव कार्यो को करने के ठहराव (धारा 56)

उपरोक्त बिन्दुओं का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार हैं–

### 1. अयोग्य पक्षकारों द्वारा किये गये ठहराव (Agreements made by incompetent Parties)

**धारा 11** में निम्नलिखित तीन प्रकार के व्यक्तियों को अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य घोषित किया गया है। (i) अवयस्क (ii) अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति तथा (iii) राजनियम द्वारा अनुबन्ध करने के लिए अयोग्य घोषित व्यक्ति। यदि इन तीन प्रकार के पक्षकारों द्वारा अनुबन्ध किया जाता है तो वह ठहराव व्यर्थ होता है।

### 2. तथ्य से संबंधित गलती वाले ठहराव (Agreements based on Mistake as to Fact)

**धारा 20** के अनुसार, ''जब ठहराव के दोनो पक्षकार ठहराव के किसी भी आवश्यक तथ्य के सम्बन्ध में गलती पर होते है तो वह ठहराव व्यर्थ होता है''। अतः ठहराव तथ्य सम्बन्धी गलती के आधार पर होता है तो वह ठहराव पूर्णतः व्यर्थ हो जाता है।

### 3. विदेशी राजनियम की गलती वाले ठहराव (Agreements based on Mistake of Foreign Law)

जब पक्षकार किसी ठहराव को करते समय किसी दूसरे देश के राजनियम के सम्बन्ध में गलती कर बैठते है तो ऐसी गलती विदेशी राजनियम से संबंधित गलती कहलाती है। विदेशी राजनियम के सम्बन्ध में गलती के आधार पर हुए ठहराव पूर्णतः व्यर्थ होते है। **(धारा 21)**

### 4. अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य के ठहराव (Agreements with Unlawful Object and Consideration)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जिन ठहरावों का प्रतिफल तथा उद्देश्य अवैधानिक होता है उन्हें अनुबन्ध अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित किया गया है। **धारा 23** में निम्नलिखित प्रकार के ठहरावों को अवैधानिक उद्देश्य एवं प्रतिफल का माना गया है।

(i) यदि कोई ठहराव राजनियम द्वारा वर्जित है;

(ii) यदि कोई ठहराव इस प्रकार का है कि यदि अनुमति दे दी जाये तो वह किसी राजनियम की व्यवस्थाओं को निष्फल कर देगा।

(iii) यदि वह ठहराव कपटमय है;

(iv) यदि उस ठहराव सें किसी व्यक्ति या सम्पति को हानि पहुचंती है;

(v) यदि न्यायालय उस ठहराव को अनैतिक समझता है;

(vi) यदि न्यायालय उस ठहराव को लोकनीति के विरूद्ध समझता है।

### 5. आंशिक रूप से अवैधानिक प्रतिफल एवं उद्देश्य के ठहराव (Agreements with partly Unlawful Objects and Consideration)

कई बार ऐसे अवसर आते है जबकि ठहराव आंशिक रूप से वैधानिक होता है तथा आंशिक रूप से अवैधानिक। यदि ऐसे ठहरावों के वैध एवं अवैध भाग को अलग अलग भागों में विभक्त किया जा सकता है तो वैध भाग वैध तथा अवैध भाग वाला ठहराव व्यर्थ होगा। यदि ठहराव को वैध अथवा अवैध भागों में अलग अलग नही किया जा सकता है तो सम्पूर्ण ठहराव ही व्यर्थ होगा। **(धारा 24)**

### 6. बिना प्रतिफल के ठहराव (Agreements without Consideration)

सामान्यतः बिना प्रतिफल के ठहराव व्यर्थ होते हैं। धारा 25 में जहां पर यह कहा गया है कि बिना प्रतिफल के ठहराव व्यर्थ होते हें वहाँ कुछ अपवादजनक परिस्थितियों का भी वर्णन किया गया है। जिनमें प्रतिफल के अभाव में भी ठहराव वैध होता है। अतः हम कह सकते है कि कुछ अपवादजनक परिस्थितियों को छोड़कर सामान्यतः बिना प्रतिफल के ठहराव व्यर्थ होते है।

### 7. विवाह में रूकावट डालने वाले ठहराव (Agreements in Restraint of Marriage)

अवयस्क को छोड़कर किसी भी अविवाहित व्यक्ति के विवाह में रूकावट डालने वाले ठहराव व्यर्थ होते हैं। **(धारा 26)** देश के प्रत्येक वयस्क नागरिक को विवाह करने की स्वतंत्रता है। अतः इस स्वतंत्रता को किसी ठहराव द्वारा समाप्त किया जाता है तो यह ठहराव व्यर्थ होता है।

**उदाहरण** – अ ने एक स्त्री को वचन दिया कि वह उसके अतिरिक्त किसी से विवाह नही करेगा तथा यदि किसी अन्य से करेगा तो वह उसे (स्त्री को) 2000 रूपये देगा। न्यायालय ने माना कि यह विवाह में रूकावट डालने वाला ठहराव है। अतः व्यर्थ है।

### 8. व्यापार में रूकावट डालने वाले ठहराव (Agreements in Restraint of Trade)

भारतीय संविधान द्वारा देश के प्रत्येक नागरिक को व्यापार, व्यवसाय व पेशे की स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार दिया गया है। **भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 27** में लिखा है कि प्रत्येक ठहराव जिसके द्वारा किसी व्यक्ति के किसी भी विधिपूर्ण व्यवसाय, धन्धें तथा व्यापार में रूकावट डाली जाती है तो वह ठहराव 'उस सीमा तक' व्यर्थ होगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी व्यक्ति के व्यापार, व्यवसाय, पेशे में रूकावट डालने के लिए कोई ठहराव करता है तो वह व्यर्थ होता है। यहाँ 'उस सीमा तक' वाक्याशं का विशेष अर्थ है। यदि उचित सीमा तक उचित प्रतिफल देकर रोक लगाई जाती है तो वह रोक उस सीमा तक वैध हो सकती है।

उदाहरण – इस सम्बन्ध में **मधुब चन्दर बनाम राजकुमार दास** का मामला विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस मामले के अनुसार वादी तथा प्रतिवादी दोनो ही कोलकाता के एक बाजार में बर्तनों का व्यापार करते थे। प्रतिवादी को इस व्यापार में हानि हो रही थी क्योंकि वादी उसका प्रतिस्पर्द्धी था। अतः प्रतिवादी ने वादी से कहा कि यदि वह अपना व्यापार बन्द कर दे तो वह स्वंय उसे वह समस्त राशि दे देगा जो उसने अपने कारीगरों को अग्रिम दे रखी है। वादी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस बात से सहमत हो गया और उसने उस क्षेत्र में अपना व्यापार बन्द कर दिया। किन्तु बाद में प्रतिवादी ने वह धनराशि देने से इन्कार कर दिया। न्यायालय ने निर्णय दिया कि यद्यपि यह व्यापार की रोक आंशिक या एक सीमित क्षेत्र के लिए लगाई गई है फिर भी यह ठहराव व्यर्थ है क्योंकि यह रोक उचित क्षेत्र एवं अवधि के लिए बिना प्रतिफल (ख्याति) के आधार पर लगाई गई थी।

### 9. वैधानिक कार्यवाही में रूकावट डालने वाले ठहराव (Agreements in Restraint of Legal Proceedings)

न्याय प्राप्त करना प्रत्येक नागरिक का मूलभूत अधिकार है। अतः जब किसी ठहराव का उद्देश्य वैधानिक कार्यवाही में रूकावट डालना होता है तो यह लोक–नीति के विरूद्ध है, अतः ऐसे ठहराव पूर्णतः व्यर्थ होते हैं।

इस धारा का आधार – न्याय की आत्मा कानून है जो दुर्बल पक्षकार की रक्षा करता है। न्याय पाना सबका मूल अधिकार है, अतः किसी को न्याय पाने से रोकना मूलभूत अधिकार का हनन करना है। यदि धारा 27 व्यापार करने की स्वतंत्रता प्रदान करती है तो **धारा 28** न्याय पाने की स्वतंत्रता प्रदान करती है, अतः इस धारा का आधार यह है कि न्यायालय द्वारा किसी को अपने वैधानिक अधिकार प्राप्त करने से वंचित न किया जाए।

**उदाहरण** – अ ने ब को 5000 रूपये का ऋण दिया और ब ने ऋण के प्रपत्र में यह लिख दिया कि ऋण की राशि व ब्याज का भुगतान 15 वर्षो में किया जायेगा तथा लिमिटेशन अधिनियम की समय सम्बन्धी व्यवस्था लागू न होगी तो यह व्यर्थ होगा।

### 10. अनिश्चित अर्थ वाले ठहराव (Agreement of Uncertain Meaning)

जब ठहराव इस प्रकार का हो कि उनका अर्थ निश्चित न हो अथवा उनका अर्थ निश्चित नहीं किया जा सकता हो तो ऐसे ठहराव अनिश्चित अर्थ वाले होते है। ऐसे ठहराव भ्रमात्मक तथा संदेहास्पद प्रकृति के होते हैं, अतः व्यर्थ होते है। **(धारा 29)** किन्तु यदि किसी ठहराव का परिस्थितियों के अनुसार अर्थ निश्चित किया जा सकता है तो ठहराव वैध माना जावेगा।

### 11. बाजी के ठहराव (Wagering Agreements)

**सर विलियम एन्सन** ख्पत ॅपससपंउ ।देवद, **के मतानुसार**, ''बाजी का ठहराव वह होता है जिसमें किसी अनिश्चित घटना के निश्चित हो जाने या अभिनिर्णित (Determination) हो जाने पर धन या धन का मूल्य देने की प्रतिज्ञा होती है।''

**कार्लिल बनाम कार्बोलिक स्मोक बॉल कम्पनी** के मामले के निर्णय में न्यायाधीश हॉकिन्स ;भूंपदेद्ध ने बाजी की परिभाषा इस प्रकार दी है।

''बाजी लगाने का ठहराव एक ऐसा ठहराव है जिसमें दो व्यक्ति किसी अनिश्चित धटना के विषय में विपरीत विचार रखते हुए परस्पर यह ठहराव करते है कि उस घटना के निश्चित होने पर एक की दूसरे पर जीत होगी और दूसरा उसको कुछ धन अथवा कोई अन्य वस्तु देगा।'' **(धारा 30)**

इस प्रकार की परिभाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि बाजी के ठहराव ऐसे ठहराव हैं जो किसी अनिश्चित घटना के घटित होने पर निर्भर करते है। ऐसे ठहरावों में पक्षकार यह ठहराव करते है कि ऐसी अनिश्चित घटना के निश्चित हो जाने या घटित हो जाने पर एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को एक निश्चित धनराशि देगा अथवा प्राप्त करेगा। इस प्रकार के ठहराव में किसी भी पक्षकार का हित निश्चित नही हेाता है। इसमें एक पक्षकार को लाभ तथा दूसरे पक्षकार को हानि होती है।

### 12. असम्भव भावी घटना पर आधारित ठहराव (Agreements Contingent on an Impossible Event)

यदि कोई ठहराव किसी असम्भव घटना के घटित होने पर निर्भर करता है तो वह ठहराव व्यर्थ होगा चाहे ऐसी घटना की असम्भवता की जानकारी ठहराव करते समय ही क्यो न हो। (धारा 36)

**उदाहरण** – कमल विमल से ठहराव करता है कि यदि वह सुजाता से शादी कर लेगा तो वह उसे 500 रूपये देगा जबकि ठहराव के समय से पूर्व सुजाता मर चुकी है। यह ठहराव असम्भव घटना पर आधारित है। अतः ठहराव व्यर्थ है।

### 13. असम्भव कार्यो को करने के ठहराव (Agreement to do Impossible Acts)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार ''ऐसा ठहराव व्यर्थ होता है जो किसी ऐसे कार्य को करने के लिए है जो प्रारम्भ से ही असंम्भव है'' इसका तात्पर्य यह नही समझ लेना चाहिये कि भविष्य में कोई कार्य असम्भव होने पर ठहरव व्यर्थ नहीं होगा। यदि भविष्य में कुछ घटनाओं के घटित होने या राजनियम में परिवर्तन होने के कारण कोई ठहराव पूरा नहीं किया जा सकता है तो ऐसा ठहराव असम्भवता के आधार पर व्यर्थ हो जाता है। किन्तु ऐसी असम्भवता भौतिक या वैधानिक कारणों से उत्पन्न हो सकती है। किन्तु यदि आर्थिक कारणों से कोई ठहराव पूरा करना असम्भव होता है तो ऐसा ठहराव व्यर्थ नही होगा। **(धारा 56)**

**उदाहरण** – अ एक महाराजा से जमींन में छिपे खजाने को जादू से निकालने का ठहराव करता है। वह ठहराव व्यर्थ है क्योकि यह एक असम्भव कार्य को करने का ठहराव है।

किन्तु इस सम्बन्ध में यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि जब कोई व्यक्ति ऐसा कार्य करने का वचन देता है जो उसकी दृष्टि में असम्भव है या उचित प्रयासों के द्वारा उसकी असम्भवता या अवैधानिकता को ज्ञात किया जा सकता है किन्तु दूसरे पक्षकार को उसकी असम्भवता की जानकारी का आभास भी नही होता है तो ऐसा ठहराव करने वाले व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति को होने वाली क्षति की पूर्ति करनी पड़ेगी।

**बोध प्रश्न –**

1. व्यर्थ ठहराव की परिभाषा दीजिए ?
2. भारतीय अनुबन्ध अधिनियम द्वारा स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित ठहरावों का संक्षेप में वर्णन कीजिए?
3. व्यावहारिक प्रश्न – अ कमल एण्ड कम्पनी में कर्मचारी नौकरी छोड़ने के बाद व कम्पनी से समझौता करता है कि जयपुर से 500 किलोमीटर की परिधि में वह इस प्रकार की किसी अन्य संस्था में नौकरी नही करेगा। क्या प्रतिबंध वैध है ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

# अध्याय 7.

# अनुबन्धों का निष्पादन

## [Performance of Contracts]

सामान्यतः एक अनुबन्ध के पक्षकारों का उद्देश्य उसका निष्पादन होता है। अतः अनुबन्ध के पक्षकारों द्वारा अपने–अपने दायित्वों को पूरा करना ही अनुबन्ध का निष्पादन कहलाता है। इस अध्याय में उन नियमों का उल्लेख किया गया, जिनका ध्यान में रखकर प्रत्येक पक्षकार को अपने दायित्वों को पूरा करना चाहियें।

### अनुबन्धों का निष्पादन करना पक्षकारों का दायित्व

**भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 37** में यह व्यवस्था है कि अनुबन्ध के पक्षकारों का यह दायित्व है कि वे अपने–अपने वचनों को पूरा करें अथवा उन वचनों को पूरा करने के लिए प्रस्ताव करें। किन्तु यदि इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन अथवा दूसरे राजनियम के लागू होने से किसी पक्षकार को अनुबन्ध के निष्पादन से मुक्त कर दिया गया है तो पक्षकार को अनुबन्ध का निष्पादन करने की आवश्यकता नहीं रहती है।

इस सम्बन्ध में यह बात महत्त्वपूर्ण है कि यदि अनुबन्ध के निष्पादन से पूर्व ही किसी पक्षकार की मृत्यु हो जाती है तो दूसरा पक्षकार उस पक्षकार के वैधानिक उत्तराधिकारियों को अनुबन्ध के निष्पादन के लिए बाध्य कर सकता है, यदि अनुबन्ध के निष्पादन के लिए किसी **विशेष चातुर्य अथवा योग्यता की आवश्यकता न हो** अथवा जब तक अनुबन्ध से विपरीत अभिप्राय प्रकट न हो।

**उदाहरण**– अ, ब को 100 टन गेहूँ 1, अगस्त को बेचने का ठहराव करता है। ब की 20 जुलाई को ही मृत्यु हो जाती है। अ, ब के उत्तराधिकारी को अनुबन्ध के निष्पादन अर्थात गेहूँ देने के लिए बाध्य कर सकता है।

### निष्पादन की विधियाँ

अनुबन्ध का निष्पादन निम्नांकित दो में से किसी भी विधि से किया जा सकता हैः

1. वास्तविक निष्पादन।
2. प्रस्तावित निष्पादन।

1. **वास्तविक निष्पादन**– वास्तविक निष्पादन तब होता है जबकि एक पक्षकार ने निष्पादन का प्रस्ताव किया हो तथा दूसरे ने उसे स्वीकार कर लिया हो। दूसरे शब्दों में, जब अनुबन्ध के दोनो पक्षकारा अपने–अपने वचनों का निष्पादन करते हैं तो यह अनुबन्ध का वास्तविक निष्पादन होता है।

   **उदाहरण–** अ, ब को अपनी कार एक लाख रूपये में बेचने का ठहराव करता है। अ कार की सुपुर्दगी दे देता है और ब रूपयों का भुगतान कर देता है। यह वास्तविक निष्पादन है।

2. **प्रस्तावित निष्पादन–** अनुबन्ध के निष्पादन के लिए प्रस्ताव करना पड़ता है। जब कोई पक्षकार अनुबन्ध के निष्पादन का (मुद्रा के अतिरिक्त) वैध प्रस्ताव करता है और दूसरा पक्षकार उसे स्वीकार नहीं करता है तो वह उस अनुबन्ध के निष्पादन के दायित्व से मुक्त हो जाता है। इसे ही प्रस्तावित निष्पादन कहते है।

### अनुबन्ध का निष्पादन कब आवश्यक नहीं ?

निम्नांकित दशाओं में अनुबन्ध के निष्पादन की आवश्यकता नहीं रहती हैः

1. **जब निष्पादन करना असम्भव हो जाय**– जब परिस्थितियों या कानून में परिवर्तन के परिणामस्वरूप अनुबन्ध का निष्पादन करना असम्भव हो जाय तो अनुबन्ध के निष्पादन की आवश्यकता नही रहती है। **(धारा 37)**
2. **नये अनुबन्ध की प्रतिस्थापना करना–** जब पक्षकार किसी अनुबन्ध के स्थान पर कोई नया अनुबन्ध कर लेता है तो उसे पुराने अनुबन्ध को पूरा नही करना पड़ता है। **(धारा 62)**
3. **जब निष्पादन क्षमा कर दिया जाय**– जब कोई वचनग्रहीता वचनदाता को किसी अनुबन्ध में उसके निष्पादन के दायित्व से मुक्त कर दे तो उस अनुबन्ध के निष्पादन की आवश्यकता नहीं रहती है। **(धारा 63)**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **जब अनुबन्ध को निरस्त कर दिया जाय–** जब कोई अनुबन्ध किसी पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय हो और वह पक्षकार उसे व्यर्थ समझ कर निरस्त मान ले तो उस अनुबन्ध के निष्पादन की आवश्यकता नहीं रहती है। **(धारा 64)**

5. **जब वचनग्रहीता निष्पादन प्रस्ताव को अस्वीकार कर दे**– जब कोई वचनदाता किसी अनुबन्ध के निष्पादन का वैध प्रस्ताव करता है किन्तु, वचनग्रहीता उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है तो ऐसी दशा में वचनदाता भविष्य में उस अनुबन्ध को पूरा करने के दायित्व से मुक्त हो जाता है। अतः उस अनुबन्ध के निष्पादन की आवश्यकता नहीं पड़ती है। **(धारा 38)**

6. **जब वचनग्रहीता उचित सुविधा उपलब्ध नहीं करे–** यदि कोई वचनग्रहीता अनुबन्ध के निष्पादन के लिए आवश्यक सहयोग या सुविधा उपलब्ध नहीं कराता है तो वचनदाना को उस अनुबन्ध को पूरा करने की आवश्यकता नहीं होती है।**(धारा 67)**

7. **जब ठहराव अवैधानिक हो–** जब कोई ठहराव अवैधानिक हो तो उसके निष्पादन की आवश्यकता नही रहती हैं। **(धारा 23)**

**अनुबन्ध के निष्पादन के लिए उत्तरदायी पक्षकार**

धारा 40 में बतलाया गया है कि अनुबन्ध का निष्पादन किसके द्वारा होना चाहिये। अनुबन्ध के निष्पादन के लिए निम्नलिखित पक्षकारो में से किसी भी पक्षकार को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। इस धारा के अन्तर्गत निम्न नियम है।

1. **वचनदाता**– यदि ठहराव की प्रकृति से ऐसा प्रकट होता है कि अनुबन्ध के पक्षकारों की इच्छा यह थी कि वचन का निष्पादन स्वयं वचनदाता द्वारा ही पूरा किया जायेगा तो ऐसी दशा में वचनदाता को ही वचन के निष्पादन के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जिन अनुबन्धो में व्यक्तिगत चातुर्य की आवश्यकता होती है उन अनुबन्धों के निष्पादन का दायित्व भी स्वयं वचनदाता पर ही होता है। **(धारा 40)**

2. **एजेन्ट–** जिन अनुबन्धों में व्यक्तिगत चातुर्य एवं सद्विश्वास की आवश्यकता नहीं होती है उन्हें वचनदाता अपने एजेण्ट द्वारा भी पूरा करवा सकता है।

3. **उत्तराधिकारी–** यदि अनुबन्ध के निष्पादन के पूर्व वचनदाता की मृत्यु हो जाती है तो उसके उत्तराधिकारियों को ऐसे अनुबन्ध का निष्पादन करना पड़ता है। यदि अनुबन्ध के निष्पादन में व्यक्तिगत चातुर्य की आवश्यकता हो तो उत्तराधिकारियों को उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता है।

4. **तृतीय पक्षकार–** जब कोई वचनग्रहीता तीसरे पक्षकार से वचन का निष्पादन स्वीकार कर लेता है तो वह पुनः वचनदाता को उस वचन के निष्पादन के लिए बाध्य नही कर सकता हे।

   **(धारा 41)**

5. **संयुक्त वचनदाताओं की स्थिति में वचन का निष्पादन–** जब एक अनुबन्ध में अनेक वचनदाता हो तो वचनों का निष्पादन अथवा संयुक्त दायित्वों का हस्तान्तरण निम्न प्रकार से होगाः

   **(i)** जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों ने कोई संयुक्त वचन दिया है, तो सामान्यतः उन्हें अपने जीवनकाल में उन सबको मिलकर वचन को पूरा करना हेागा। उनमें से किसी की भी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी को शेष जीवित वचनदाताओं के साथ मिलकर वचन को पूरा करना हेागा और अन्तिम जीवित वचनदाता की मृत्यु हो जाने पर उन सबके उत्तराधिकारियों को संयुक्त रूप से वचन को पूरा करना होगा। **(धारा 42)**

   **(ii)** जब दो या दो से अधिक व्यक्ति कोई संयुक्त रूप से वचन देते हैं तो इसके विपरीत किसी स्पष्ट ठहराव के अभाव में, वचनग्रहीता संयुक्त वचनदाताओं में से एक या अधिक को पूरे वचन का निष्पादन करके के लिए बाध्य कर सकता है। **(धारा 43)**

   **(iii)** दो या दो से अधिक वचनदाताओं में से किसी एक ने अनुबन्ध का निष्पादन किया है तो वह अन्य सह–वचनदाताओं से समान अंशदान की मांग कर सकता है जब तक की अनुबन्ध से कोई विपरीत अभिप्राय प्रकट न हो। **(धारा 43)**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**(iv)** यदि दो या दो से अधिक सह–वचनदाताओं में से कोई सह–वचनदाता अपने उत्तरदायित्व का भाग चुकाने में असमर्थ रहता है तो शेष वचनदाताओं को ऐसी हानि समान रूप से वहन करनी पड़ेगी। किन्तु यदि कोई सह–वचनदाता केवल प्रतिभू के ही रूप में रहा हो तो वचनदाता को मूल ऋण या ऋणियों के लिए अपने द्वारा भुगतान की गई धनराशि को प्राप्त करने का अधिकार होगा। **(धारा 43)**

(v) जहाँ दो या दो से अधिक व्यक्तियों ने संयुक्त रूप से वचन दिया है तो वचनग्रहीता द्वारा ऐसे संयुक्त वचनदाताओं में से एक वचनदाता को मुक्ति देने से दूसरे सभी संयुक्त वचनदाता दायित्व से मुक्त नही हो जाते है। इसके अतिरिक्त, मुक्त किया गया वचनदाता भी अन्य सभी सह–वचनदाताओं के प्रति दायित्व से मुक्त नहीं होता है। (धारा 44)

**जब समय अनुबन्ध का सार तत्त्व हो**

कई बार यह देखा जाता है कि अनुबन्ध का निष्पादन पूर्व निश्चित समय पर नही हो पाता है। ऐसी स्थिति में पक्षकारों के क्या अधिकार होंगे, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, किन्तु प्रश्न का हल ढूँढने के लिए यह देखना पड़ेगा कि अनुबन्ध में 'समय तत्त्व' का क्या स्थान है? क्या अनुबन्ध में समय सार तत्त्व है अथवा नहीं **राजस्थान उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि किसी भी अनुबन्ध में समय सार तत्त्व है अथवा नहीं, यह उस अनुबन्ध की** भाषा या लेख, विक्रय की गई वस्तु की प्रकृति, पक्षकारों के आचरण तथा आसपास की परिस्थितियाँ आदि बातों की जानकारी करके तय किया जायेगा।

**नियम –** अनुबन्ध अधिनियम के अनुसार समय पर अनुबन्ध पूरा न करने पर निम्नलिखित नियम लागू होते है –

(i) **जब समय अनुबन्ध का सार तत्त्व हो तो अनुबन्ध को निश्चित समय में पूरा न करने का प्रभाव–** यदि अनुबन्ध का एक पक्षकार किसी कार्य अथवा कार्यो को एक निश्चित समय पर अथवा उससे पहले पूरा करने का वचन देता है किन्तु वह ऐसा करने में असफल रहे तो वह अनुबन्ध अथवा उसका उतना भाग जो निष्पादित न किया गया हो, वचनग्रहीता की इच्छा पर व्यर्थनीय हो जाता है यदि पक्षकारों का अभिप्राय यह था कि **समय ही अनुबन्ध का सार तत्व है**। **(धारा 55)**

**(ii) जब समय को अनुबन्ध का सार तत्व समझने का अभिप्राय न हो–** यदि पक्षकारों का अभिप्राय यह नहीं था कि समय अनुबन्ध का सार तत्व है तो अनुबन्ध निश्चित समय पर अथवा उसके पहले ऐसे कार्य को नहीं करने से व्यर्थनीय नही हो जाता है। यदि एक पक्षकार द्वारा अनुबन्ध पूरा न करने के फलस्वरूप उसे कोई हानि भी हुई हो तो भी वचनदाता से ऐसी क्षति की पूर्ति करने का ही अधिकारी होता है। **(धारा 55)**

**(iii) निश्चित समय के बाद निष्पादन स्वीकार करने का प्रभाव–** यदि वचनदाता द्वारा निश्चित समय पर वचन का निष्पादन नहीं किया जाता है तो अनुबन्ध व्यर्थनीय हो जाता है। किन्तु, यदि वचनग्रहीता ने उस निश्चित समय के अतिरिक्त अन्य किसी दूसरे समय पर निष्पादन स्वीकार कर लिया है तो वचनग्रहीता निश्चित समय पर वचन के निष्पादित न होने के कारण हुई हानि की पूर्ति की मांग नहीं कर सकता, जब तक कि ऐसे निष्पादन की स्वीकृति के समय वह ऐसा कराने के अपने अभिप्राय की सूचना वचनदाता को नही दे देता। **(धारा 55)**

**पारस्परिक वचनों का निष्पादन**

**धारा 2(f) के अनुसार,** ''जो वचन एक–दूसरे के प्रतिफल अथवा आंशिक प्रतिफल हो, पारस्परिक वचन कहलाते हैं।'' दूसरे शब्दो में, हम कह सकते है कि एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को कोई वचन देता है और दूसरा पक्षकार उसके बदले में पुनः वचन देता है तो ये पारस्परिक वचन या एक–दूसरे के लिए वचन हैं। पारस्परिक वचनों के निष्पादन के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम लागू होते हैः

1. **ऐसे अनुबन्ध जिनमें पारस्परिक वचनों का निष्पादन एक साथ करना हो–** जब किसी अनुबन्ध के दोनों पक्षकारों को पारस्परिक वचनों का निष्पादन एक साथ करना है तो ऐसे अनुबन्धों में किसी भी वचनदाता को तब तक अपने वचन का निष्पादन करने की आवश्यकता नहीं है जब तक कि वचनग्रहीता अपने वचन को पूरा करने के लिए तत्पर न हो। **(धारा 51)**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. **जब पारस्परिक वचनों के निष्पादन का क्रम निश्चित हो–** किसी अनुबन्ध में पारस्परिक वचनों के निष्पादन का क्रम निश्चित कर दिया गया है तो पारस्परिक वचनों का निष्पादन उसी क्रम में किया जायेगा। किन्तु क्रम निश्चित नहीं किया गया है तो वचन उस क्रम से पूरे किये जायेगें जो अनुबन्ध की प्रकृति के अनुसार आवश्यक है। **(धारा 52)**

3. **जब कोई पक्षकार वचन के निष्पादन को रोकता हो**– यदि कोई अनुबन्ध पारस्परिक वचन पर निर्भर है और अनुबन्ध का एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को उसके वचन का निष्पादन करने से रोकता है तो इस प्रकार रोके गये पक्षकार की इच्छा पर वह अनुबन्ध व्यर्थनीय होता है और अनुबन्ध के निष्पादन न होने के फलस्वरूप उसे जो हानि हुई हो, उसकी क्षतिपूर्ति करवाने का अधिकार हैं। **(धारा 53)**

4. **पहले निष्पादित किये जाने वाले वचन को पूरा न करने पर –** पारस्परिक रूप से निर्भर वचनों के अनुबन्ध में यदि वचनदाता जिसका पहले वचन का निष्पादन करना है, अपना वचन निष्पादित करने में असफल रहता है तो ऐसा वचनदाता पारस्परिक वचन के निष्पादन की मांग नहीं कर सकता है। ऐसे वचनदाता को दूसरे पक्षकार की क्षतिपूर्ति के लिए भी दायी ठहराया जा सकेगा। जो उसे अनुबन्ध निष्पादित न होने की दशा में उठानी पड़ी होगी। **(धारा 54)**

5. **कुछ वैधानिक तथा अवैधानिक कार्य करने के पारस्परिक वचन –** जब कोई व्यक्ति पहले कुछ ऐसे कार्य करने का पारस्परिक वचन देते है जो वैधानिक होते है और बाद में कुछ विशिष्ट परिस्थितियों के कारण कुछ ऐसे कार्य करने के पारस्परिक वचन देते हैं जो अवैधानिक होते है तो पारसपिक वचनों का पहला समूह वैध अनुबन्ध होगा तथा दूसरा समूह व्यर्थ ठहराव होगा। **(धारा 57)**

6. **वैकल्पिक वचन जिसका एक भाग अवैधानिक हो –** किसी वैकल्पिक पारस्परिक वचन में यदि वचन का एक भाग वैधानिक हो तथा दूसरा भाग अवैधानिक हो तो ऐसे वचन में केवल वही भाग प्रवर्तित करवाया जा सकेगा, जो वैध है। **(धारा 58)**

**बोध प्रश्न–**

1. अनुबन्ध का वास्तविक निष्पादन क्या है ?
2. अनुबन्ध निष्पादन का दायित्व किसका होता है ?
3. समय अनुबन्ध का सार तत्व है। समझाइयें ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

# अध्याय 8.

# अनुबन्धों की समाप्ति

## [Discharge of Contracts]

जब अनुबन्ध के दोनों पक्षकार अपने–अपने वचनों का निष्पादन करते है तो अनुबन्ध समाप्ति की ओर अग्रसर होता है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि अनुबन्ध के सभी पक्षकार तत्काल अपने वचनों का निष्पादन करें। कुछ पक्षकार पुराने अनुबन्ध के स्थान पर नया अनुबन्ध कर लेते हैं। इसी प्रकार ऐसे अन्य कई कारण होते है जिनसे पुराना अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। प्रस्तुत अध्याय में उन्हीं रीतियों का वर्णन किया गया है।

### अनुबन्ध समाप्ति की विधियाँ

अनुबन्ध को समाप्त करने की अनके विधियाँ हैं, उनमें से किसी भी रीति में परिस्थितियों के अनुसार अनुबन्ध को समाप्त किया जा सकता है। अनुबन्ध समाप्ति कि प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित है –

1. वचनों के निष्पादन द्वारा समाप्ति
2. पारस्परिक ठहराव या सहमति द्वारा समाप्ति
3. अवधि समाप्त होने से समाप्ति
4. राजनियम के प्रभावित हो जाने से समाप्ति,
5. महत्त्वपूर्ण परिवर्तन द्वारा समाप्ति,
6. अनुबन्ध भंग द्वारा समाप्ति, ,
7. निष्पादन की असम्भवता द्वारा समाप्ति

अनुबन्ध समाप्ति की उपरोक्त विधियों का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है –

### 1. वचनों के निष्पादन द्वारा समाप्ति

जब पक्षकार, अनुबन्ध से उत्पन्न अपने–अपने दायित्वों का पालन कर देते है तो अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। यह अनुबन्ध को समाप्त करने का सबसे साधारण, प्रचलित एवं स्वाभाविक ढंग है। उदाहरण के लिए, अ अपना घोड़ा ब को 500 रूपये में बचेने का अनुबन्ध करता है। अब निश्चित समय पर अ अपना घोड़ा ब को देता है और ब उसका मूल्य 500 रू. अ को देता है तो माना जाता है कि पक्षकारों ने अपने अपने वचन (दायित्व) का निष्पादन कर दिया। इस प्रकार पारस्परिक वचनों के निष्पादन से अनुबन्ध की पूर्णतः समाप्ति हो जाती हैं।

### 2. पारस्परिक ठहराव या सहमति द्वारा समाप्ति

अनुबन्ध के दोनो पक्षकार अपने पारस्परिक ठहराव द्वारा भी अनुबन्ध की समाप्ति कर सकते हैं, यदि अनुबन्ध के पक्षकार पारस्परिक ठहराव करके अनुबन्ध की समाप्ति करते है तो बाद में मूल अनुबन्ध को पूरा करने की आवश्यकता नहीं रहती हैं। (धारा 62) पारस्परिक ठहराव द्धारा अनुबन्ध को निम्नलिखित में से किसी भी विधि से समाप्त किया जा सकता हैं।

1. **नवीनीकरण द्वारा समाप्ति –** नवीनीकरण से आशय पुराने अनुबन्ध के स्थान पर नये अनुबन्ध करना। दूसरे शब्दों में नवीनीकरण से आशय मूल अनुबन्ध को समाप्त करना और एक नये वैध अनुबन्ध का निर्माण करना। इसके परिणामस्वरूप पुराना अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। **प्रिवी कौन्सिल** ने इस संबंध में बहुत स्पष्ट रूप से लिखा है कि प्रभावशाली नवीनीकरण के लिये केवल नये ठहराव का होना ही पर्याप्त नही है, बल्कि नया ठहराव अनुबन्ध भी होना चाहिए।
2. **परिवर्तन द्वारा समाप्ति –** परिवर्तन के अन्तर्गत पुराने अनुबन्ध को पूर्णतः नही बदला जाता है। किन्तु उसकी शर्तो में परिवर्तन कर दिया जाता है। शर्तो में ऐसा परिवर्तन समय, स्थान, राशि, किस्म एवं संख्या आदि से सम्बन्धित हो सकता है। ऐसे परिवर्तन के परिणामस्वरूप मूल अनुबन्ध समाप्त हो जाता है और परिवर्तित अनुबन्ध लागू हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उदाहरण :– अ, ब को एक हजार क्विंटल 5000 रूपये प्रति की दर से चार माह में देने का वचन देता है। बाद में अ और ब इस प्रकार परिवर्तन कर देते है कि अ, ब उसी दर पर 700 क्विंटल गेहूँ छः माह के अन्दर देगा। इस प्रकार बाद वाला अनुबन्ध पहले अनुबन्ध को समाप्त कर देता है।

3. **अधिकार परित्याग द्वारा समाप्ति –** अधिकार परित्याग द्वारा अनुबन्ध को समाप्त करने की दशा में एक पक्षकार दूसरे पक्षकार से अपने अधिकारों से भिन्न बात को स्वीकार करने के लिए सहमत हो जाता है तो मूल अनुबन्ध समाप्त हो जाता है और पक्षकार शेष अनुबन्ध के निष्पादन की मांग नही कर सकता।

इस सम्बन्ध में भारत के उच्चतम न्यायालय का **कपूरचंद गोधा बनाम मीर नवाब हिमायत अली खाँ** का मामला उल्लेखनीय है जिसमें पक्षकार ने 27000 रूपये के सम्पूर्ण हिसाब में 20000 रूपये प्राप्त किये और शेष 7000 रूपये की राशि के लिए न्यायालय में वाद प्रस्तुत किया। किन्तु उच्चतम न्यायालय ने कपूरचंद को शेष राशि प्राप्त करने का अधिकारी नही माना।

4. **सन्तुष्टि द्वारा समाप्ति –**जब अनुबन्ध के दोनों पक्षकारों के मध्य मूल अनुबन्ध के निष्पादन से छुटकारा पाने के लिए कोई दूसरा नया अनुबन्ध किसी दूसरे कार्य को करने के लिए किया जाता है और वचनदाता ऐसे दूसरे कार्य को पूरा कर देता है तो पहला अनुबन्ध आश्वासन एवं संतुष्टि द्वारा समाप्त हुआ माना जायेगा।

5. **निरस्तीकरण द्वारा समाप्ति –**निरस्तीकरण का अर्थ सम्पूर्ण अनुबन्ध को रद्द करने से होता है। अतः जब अनुबन्ध के दोनों पक्षकार अनुबन्ध को रद्द समझ लेते है तो अनुबन्ध समाप्त हो जाता है। अनुबन्ध को निम्न प्रकार से निरस्त किया जा सकता है–

   - अनुबन्ध के पक्षकार आपस में समझौता करके अनुबन्ध को समाप्त कर सकते है।
   - अनुबन्ध का पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को निरस्त कर सकता है।
   - यदि एक पक्षकार अपने वचन को पूरा नही किया है तो दूसरा पक्षकार अनुबन्ध को निरस्त कर सकता है।

### 3. अवधि समाप्त होने से अनुबन्ध की समाप्ति

यह एक साधारण नियम है कि यदि अनुबन्ध एक निश्चित अवधि के अन्दर ही सम्पन्न करना है तो पक्षकरों को अपने–अपने वचन का निष्पादन उसी निश्चत अवधि में कर देना चाहिए। ऐसी निश्चित की अवधि व्यतीत हो जाने पर अनुबन्ध की समाप्ति मान ली जाती है। पक्षकारों द्धारा अपने अधिकारों को प्रवर्तनीय कराने के लिए 'परिसीमन अधिनियम' द्धारा अवधि निश्चित होती है। इस निश्वित अवधि में ही पक्षकार अपने अधिकरों को प्रवर्तित करा सकते है। उदाहरण के लिए, ऋणदाता अपने ऋण के लिए ऋणी पर तीन वर्ष की अवधि में दावा नहीं करता तो ऋणी अपने दायित्वों से मुक्त हो जाता है।

### 4. राजनियम के प्रभावित होने से अनुबन्ध की समाप्ति

राजनियम की क्रियाशीलता के द्धारा के द्वारा भी कभी–कभी अनुबन्ध का अंत हो जाता है। राजनियम के प्रभावित होने से अनुबन्ध निम्नलिखित प्रकार से समाप्त हो जाता है :–

1. **पक्षकार की मृत्यु होने पर** (By death of a party) जब अनुबन्ध के निष्पादन में व्यक्तिगत चातुर्य अथवा सद्विश्वास की आवश्यकता होती है तो ऐसा अनुबन्ध उस पक्षकार की मृत्यु होने पर स्वतः ही समाप्त समझा जावेगा। यदि अनुबन्ध सामान्य है तथा जिसके निष्पादन में किसी व्यक्ति विशेष के व्यक्तिगत गुणों एवं चातुर्य की आवश्यकता नहीं होती है तो उस अनुबन्ध का निष्पादन मृत पक्षकार के उत्तराधिकारियों से करवाया जा सकता है।

2. **दिवालिया होने पर** – (By insolvency of the party) जब किसी अनुबन्ध का एक पक्षकार दिवालिया घोषित कर दिया जाता है तो ऐसा पक्षकार अनुबन्ध के निष्पादन के दायित्व से मुक्त हो जाता है।

3. **विलयन** (Merger) जब एक ही व्यक्ति में उच्च तथा निम्न कोटि ;स्मेमत मेजंजम ंदक हतमंजमत मेजंजमद्ध के अधिकार केन्द्रित हो जाते है तो इसे विलयन कहते हैं। ऐसे विलयन के परिणामस्वरूप ऐसे पक्षकार को प्राप्त निम्न कोटि के अधिकार स्वतः ही उच्च कोटि के अधिकारों से मिल जाते हैं। अतः निम्न कोटि के अधिकारों वाला अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. **प्रमाणों के नष्ट होने पर** – (By disappearance of the evidence)- जब अनुबन्ध से संबंधित सभी प्रमाण नष्ट हो जाते है तो अनुबन्ध स्वतः ही समाप्त हो जाता है।

**5. महत्त्वपूर्ण परिवर्तन द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति**

जब कोई पक्षकार अनुबन्ध पत्र में दूसरे पक्षकार की सहमति के बिना कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर देता है तो ऐसे परिवर्तन के बाद दूसरे पक्षकार को अनुबन्ध के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता हैं।

**लूनकरण सेठिया बनाम इवान इ. जॉन के मामने में सुप्रीम कोर्ट** ने यही कहा कि– यदि किसी अनुबन्ध के करने के बाद उसके लेख में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन दूसरे पक्षकारों की सहमति के बिना किया जाता है तो ऐसा परिवर्तन अनुबन्ध को व्यर्थ बना देता है।

यहाँ 'महत्वपूर्ण परिवर्तन से आशय ऐसे परिवर्तनों से है जिनके कारण पक्षकारो के अधिकारों, दायित्वों तथा उनकी वैधानिक स्थिति में मूल अनुबन्ध की तुलना से भिन्नता आ जाती हैं किन्तु इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यदि अनुबन्ध पत्र में कोई ऐसा परिवर्तन किया जाता है, जैसा कि पक्षकार स्वयं सोचने थे, तो वह परिवर्तन वैध हेागा और पक्षकार उस परिवर्तन से बाध्य होंगें।

**6. खण्डन द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति**

धारा 38 में बताया गया है कि यदि प्रस्तावक ने वचन को निष्पादन करने का प्रस्ताव किया है और इसे वचनग्रहीता नहीं करता है तो प्रस्तावक इसके खण्डन के लिए दायी नही है और न ही वह अनुबन्धों के अन्तर्गत अपने किसी अधिकार को खोता है। अनुबन्ध के खण्डित होने पर पीड़ित पक्षकार को अपने अधिकार सुरक्षित कराने के हेतु वाद प्रस्तुत करने का अधिकार है।

यदि एक पक्षकार ने अनुबन्ध के निष्पादन से इन्कार कर दिया हो अथवा उसके आचरण से स्पष्ट हो जाये कि वह अपना वचन पूरा नहीं करना चाहता तो भी अनुबन्ध को भंग हुआ समझते है। अतः अनुबन्ध दो प्रकार से भंग किया जा सकता है– (क) वास्तविक खण्डन (Actual Breach) और (ख) प्रत्याशित अथवा रचनात्मक खण्डन (Anticipaton of Contructive Breach)

**(क) वास्तविक खण्डन** :– यदि अनुबन्ध के निष्पादन के निश्चित समय पर अथवा निष्पादन करते समय, कोई पक्षकार अनुबन्ध के अधीन दायित्वों को निष्पादित करने में असफल रहता है अथवा अपने दायित्वों को निष्पादित करने से इन्कार कर देता है तो यह वास्तविक खण्डन कहलाता है।

**उदाहरण** :– अ, ब को 17 दिसम्बर को 500 क्विंटल गेहूँ सुपुर्द करने का ठहराव करता है। वह ब को निश्चित तिथि पर सुपुर्दगी देने में असफल रहता है। यहां अ द्वारा अनुबन्ध को भंग माना जायेगा और यदि 17 दिसम्बर को अ तो 500 क्विंटल गेहू ब को सुपुर्द करने का प्रस्ताव करे किन्तु ब (बिना किसी उचित कारण से) सुपुर्दगी लेनी से इन्कार कर दे तो, यहा ब द्वारा अनुबन्ध भंग माना जायेगा।

(ख) **प्रत्याशित अथवा रचनात्मक खण्डन** – यदि अनुबन्ध का कोई पक्षकार निष्पादन के निश्चित समय से पूर्व ही अपने शब्दो से अथवा आचरण द्वारा अनुबन्ध को निष्पादित करने का अपना स्पष्ट अभिप्राय प्रकट करता है अथवा निष्पादन के लिए अपने आप को असमर्थ बना लेता है तो इसे प्रत्याशित अथवा रचनात्मक खण्डन कहते है।

**उदाहरण** :– अ ने ब को 17 दिसम्बर को 500 क्विंटल गेहूँ सुपुर्द करने का अनुबन्ध किया। वह ब को 17 दिसम्बर से पहले ही सूचना दे देता है कि वह गेहूँ सुपुर्द नही कर सकेगा।

**7. निष्पादन की असम्भवता द्वारा अनुबन्ध की समाप्ति**

**धारा 56** में लिखा है कि ''असम्भव कार्यो को करने के ठहराव अपने आप में ही व्यर्थ होते है–'' असम्भवता को हम मूल रूप से दो वर्गो में विभक्त कर सकते है।

(अ) विद्यमान असम्भवता;

(ब) आकस्मिक असम्भवता।

**(अ) विद्यमान असम्भवता**; (Existing impossibility) जब असम्भवता अनुबन्ध करते समय विद्यमान होती है, उसे विद्यमान असम्भवता कहते हैं। ऐसी असम्भवता को दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता हैः प्रथम, ज्ञात असम्भवता, जो अनुबन्ध के पक्षकारों की जानकारी में होती है या सामान्य चातुर्य से ज्ञात की जा सकती है। ऐसी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

असम्भवता के कारण ठहराव प्रारम्भ से ही व्यर्थ होते है। ऐसी असम्भवता की जानकारी यदि वचनदाता को हो तो, उसे दूसरे पक्षकार की क्षतिपूर्ति भी करनी पड़ती है। द्वितीय अज्ञात असम्भवता वह है जो किसी भी पक्षकार की जानकारी में न हो तथा जिसकी सामान्य चातुर्य से जानकारी की भी नहीं जा सकती हो। ऐसी असम्भवता की जानकारी होते ही अनुबन्ध व्यर्थ हो जाता है।

**(ब) आकस्मिक असम्भवता** (Supervening impossibility :– ऐसी असम्भवता जो अनुबन्ध करने के बाद आकस्मिक रूप से उत्पन्न होती है, जिससे अनुबन्ध को पूरा करना असम्भव हो जाता है तो वह आकस्मिक असम्भवता कहलाती है। धारा 56 के अनुसार ''किसी कार्य को करने का ऐसा अनुबंध, जो अनुबन्ध करने के बाद असम्भव हो जाय अथवा किसी ऐसी घटना के घटित होने के कारण, जिसे वचनदाता द्वारा रोक नही पाने के कारण अवैध हो जाय तो वह अनुबन्ध तब व्यर्थ हो जाता है,जबकि वह कार्य करना असम्भव या अवैध हो जाय।'' इस धारा के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आकस्मिक असम्भवता के आधार पर अनुबन्ध तब व्यर्थ हो जाता है, जबकि–

(i) अनुबन्ध द्वारा निर्धारित कार्य को करना अनुबन्ध करने के बाद असम्भव हो गया हो, अथवा

(ii) अनुबन्ध द्वारा निर्धारित कार्य किसी ऐसी घटना के घटित होने के कारण अवैध हो गया हो, जिसे वचनदाता रोक नहीं सकता था।

**नैराश्यता या विवशता का सिद्धान्त** (Doctine of Frustration)

**'नैराश्य का सिद्धान्त'** यह बताता है कि यदि किसी अनुबन्ध के करने के बाद कुछ परिस्थितियों के परिणामस्वरूप उस अनुबन्ध को पूरा करना सम्बन्धित पक्षकारों के नियन्त्रण से बाहर हो जाता है तो वहां पर विवशता का सिद्धान्त लागू हुआ माना जाता है। **'नैशराश्य का सिद्धान्त' को भारत के उच्चतम न्यायालय ने सत्यव्रत घोष बनाम मंगनीराम** के मामले में निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है।

'नैराश्य का सिद्धान्त अनुबन्ध के निष्पादन की असम्भवता से संबंधित है। वास्तव में नैराश्य अथवा असम्भवता शब्दों को परस्पर बदल कर प्रयोग किया जा सकता है। जब परिस्थितियों के परिवर्तन से अनुबन्ध का निष्पादन असम्भव हो जाता है तो संबंधित पक्षकारों को अनुबन्ध के निष्पादन के दायित्व से मुक्त कर दिया जाता हैं क्योंकि वे पक्षकार 'असम्भवता के निष्पादन का अनुबन्ध नहीं करते हैं। वास्तव में नैराश्य का सिद्धान्त आकस्मिक असंम्भवता या अवैधता के सिद्धान्त के समान ही है जिसका उल्लेख धारा 56 के अन्तर्गत किया गया हैं। धारा 56 में राजनियम को एक निश्चित रूप में रखा गया है और इसको पक्षकारों के इरादे या उनकी इच्छा पर नही छोड़ा गया है।

इस मामले के निर्णय में आगे यह कहा गया है कि भारत में नैराश्य के सिद्धान्त के आधार पर न्यायालय अनुबन्ध से मुक्ति तभी प्रदान करता है जबकि यह सिद्ध हो जाय कि किसी अप्रत्याशित घटना के घटित हो जाने से अनुबन्ध का सम्पूर्ण उद्देश्य अथवा आधार ही समाप्त हो गया है तथा ऐसा पक्षकारों के नियन्त्रण के बाहर की परिस्थितियों के कारण हुआ है। संक्षेप में, भारत में नैराश्यता के सिद्धान्त को लागू करने के लिए **निम्नलिखित सभी शर्तो को पूरा करना आवश्यक है–**

(i) पक्षकारों में वैध अनुबन्ध हुआ हो;
(ii) ऐसा अनुबन्ध या उसके कुछ भाग का निष्पादन करना बाकी हो;
(iii) अनुबन्ध करने के बाद परिस्थितियों में परिवर्तन हो गया हो;
(iv) परिवर्तित परिस्थितियें पर पक्षकार का नियन्त्रण बिल्कुल न हो; तथा
(v) उक्त परिस्थियितों के कारण अनुबन्ध का निष्पादन करना असम्भव हो गया हो।

**वे परिस्थितियॉ जिनमें असम्भवता अथवा नैराश्यता उत्पन्न होती हैः**

निम्नलिखित कुछ ऐसी परिस्थितियॉ है, जिनमें अनुबन्ध के निष्पादन की असम्भवता अथवा नैराश्यता उत्पन्न होती है :

1. **अनुबन्ध की विषयवस्तु का नष्ट होना**– जब अनुबन्ध करने के बाद अनुबन्ध की विषयवस्तु अचानक नष्ट हो जाती है तो ऐसा अनुबन्ध 'नैराश्य के सिद्धान्त'के आधार पर व्यर्थ हो जाता है।
2. **किसी विशिष्ट घटना का घटित न होना–** यदि अनुबन्ध के लिए आवश्यक कोई घटना घटित नही होती है तो अनुबन्ध भी व्यर्थ हो जाता हे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. **पक्षकार की मृत्यु अथवा अयोग्यता–** जब अनुबन्ध का निष्पादन किसी पक्षकार की व्यक्तिगत योग्यता सेवाओं पर निर्भर करता है तो ऐसा अनुबन्ध उस समय समाप्त हो जाता हैं जबकि पक्षकार की मृत्यु हो जाय अथवा वह पक्षकार उस कार्य को पूरा करने के अयोग्य हो जाय। अतः पक्षकारों की मृत्यु अथवा अयोग्यता भी अनुबन्ध के नैराश्य का एक कारण बन जाती है।

4. **परिस्थितियों में परितर्वन–** यदि अनुबन्ध के निष्पादन के लिए आवश्यक परिस्थितियों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप अनुबन्ध का पालना करना असम्भव हो जाये तो अनुबन्ध स्वतः ही समाप्त हो जाता है। परन्तु यदि परिवर्तित परिस्थितियों में भी अनुबन्ध का पालना करना सम्भव हो तो ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ नही हो सकता है।

5. **राजनियम में परिवर्तन–** जब किसी राजनियम में परिवर्तन होने या नये राजनियम के लागू होने के परिणामस्वरूप किसी अनुबन्ध का निष्पादन करना असम्भव हो जाता है तो वह अनुबन्ध समाप्त हो जाता है।

6. **युद्ध छिड़ने पर –** युद्ध काल में शत्रु राष्ट्र के व्यक्तियों के साथ किये गये अनुबन्ध अवैध होते है तथा व्यर्थ हो जाते हैं। लेकिन यदि अनुबन्ध युद्ध प्रारम्भ होने के पहले ही कर लिया गया है तो ऐसे अनुबन्ध का निष्पादन युद्ध काल के दौरान नही किया जा सकता है। युद्ध समाप्ति के बाद ही ऐसे अनुबन्धों का निष्पादन किया जा सकता है किन्तु, युद्ध छिड़ने से पहले ही किया गया अनुबन्ध भी तब व्यर्थ होता है जबकि उस अनुबन्ध से शत्रु को सहायता मिलती हो।

7. **न्यायालय के आदेश पर –** कभी–कभी न्यायालय द्वारा आदेश जारी कर दिये जाने पर भी अनुबन्ध पूरा करना असम्भव हो जाता है तथा नैराश्यता उत्पन्न हो जाती है।

**उदाहरण –** इस सम्बन्ध में भारत के **उच्चतम न्यायालय का** मामला उल्लेखनीय है। इस मामले में कम्पनी ने शहजादी के पिता के ट्रस्ट में से कुछ जवाहरात खरीदने का अनुबन्ध किया। शहजादी द्वारा वाद प्रस्तुत करने पर भारत के उच्चतम न्यायालय ने निषेधाज्ञा जारी करके जवाहरात विक्रय पर रोक लगा दी। यहाँ न्यायालय के आदेश के आधार पर अनुबन्ध पूरा करना असम्भव हो गया था। अतः नैराश्यता उत्पन्न हुई मानी गई।

**आकस्मिक असम्भवता अथवा नैराश्यता के प्रभाव**

इस सिद्धान्त के लागू होने पर एक अनुबन्ध के निम्नांकित प्रभाव हो सकते हैः

1. **अनुबन्धों का व्यर्थ होना–** अनुबन्ध करने के बाद जब अनुबन्ध का निष्पादन असम्भव हो जाता है तो वह अनुबन्ध व्यर्थ हो जाता है।

2. **पक्षकारों की मुक्ति**– पक्षकारों को अनुबन्ध के निष्पादन से मुक्ति मिल जाती है।

3. **प्रत्यास्थापन–** इस सिद्धान्त के लागू होने के बाद पक्षकारों को उन सभी वस्तुओं एवं लाभों को एक–दूसरे को लौटाना पड़ेगा जो उन्होनें ऐसे अनुबन्ध के अन्तर्गत प्राप्त किये गये हैं।

4. **क्षतिपूर्ति –** यदि किसी पक्षकार को अनुबन्ध के समय ऐसी असम्भवता का ज्ञान था अथवा वह पक्षकार सामान्य ज्ञान का प्रयोग करके उस असम्भवता का पता लगा सकता था तो ऐसे पक्षकार को दूसरे पक्षकार की ऐसी क्षति की पूर्ति करनी पड़ेगी जो उसने ऐसे अनुबन्ध के द्वारा उठायी है।

**बोध प्रश्न**–

1. अनुबन्ध समाप्ति की विधियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए ?
2. नैराश्य के सिद्धान्त का संक्षेप में समझाइये ?
3. व्यावहारिक प्रश्न– अ अपना मकान ब को एक शादी के उत्सव के लिए 1 मार्च को किराये पर देने के लिए ठहराव करता है। 20 फरवरी को अचानक आग लग जाने से अ का मकान नष्ट हो गया। अ और ब के सम्बन्धित अधिकारों का विवेचन कीजिए ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

# अध्याय 9.

# अनुबन्ध भंग के उपचार

## [Remedies for Breach of Contract]

जब अनुबन्ध के किसी एक पक्षकार द्वारा अनुबन्ध के अन्तर्गत उत्पन्न हुए अपने दायित्वों को पूरा नहीं किया जाता है, तो अनुबन्ध भंग हो जाता है। जब एक पक्षकार द्वारा अनुबन्ध भंग कर दिया जाता है तो दूसरे पक्षकार (पीड़ित पक्षकार) को निम्नलिखित उपचार प्राप्त होते है। जो इस प्रकार है –

I- अनुबन्ध को निरस्त करना,

II- क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करना,

III- अर्जित पारिश्रमिक प्राप्त करना,

IV- विर्निष्ट निष्पादन का अधिकार,

V- निषेधाज्ञा पाने का अधिकार

I. **अनुबन्ध को निरस्त करना** – जब एक पक्षकार अनुबन्ध के अन्तर्गत उत्पन्न अपने दायित्वों को पूरा नहीं करता है तो दूसरा पक्षकार अनुबन्ध को निरस्त या समाप्त हुआ समझ सकता है तथा वह क्षतिपूर्ति की मांग कर सकता है। ऐसी स्थिति में पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध के अन्तर्गत उत्पन्न हुए अपने दायित्वों से भी मुक्त हो जाता हैं।

**उदाहरण** – अ, ब को 100 रूई की गाँठे 1 जनवरी को बेचने का ठहराव करता हैं। अ 1 जनवरी को रूई की गाँठे नहीं देता है। यहा अ द्वारा अनुबन्ध भंग किया गया है। ब को यह अधिकार है कि वह अनुबन्ध भंग समझकर उसके विरूद्ध क्षतिपूर्ति का वाद प्रस्तुत करे तथा क्षतिपूर्ति करवा ले।

**न्यायालय कब निरस्तीकरण की आज्ञा देता है ?**

न्यायालय निम्नलिखित परिस्थितियों में ही अनुबन्ध निरस्त करने की स्वीकृति प्रदान करता है :

1. यदि अनुबन्ध पीड़ित पक्षकार अथवा वादी की इच्छा पर व्यर्थनीय है।
2. यदि अनुबन्ध किन्हीं अप्रत्यक्ष कारणों से राजनियम के विरूद्ध है तथा वादी की अपेक्षा प्रतिवादी अधिक दोषी है।

**न्यायालय कब निरस्तीकरण से इन्कार कर सकता है ?**

1. जब स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से पीड़ित पक्षकार ने अनुबन्ध की पुष्टि कर दी हो।
2. यदि अनुबन्ध के आंशिक निरस्तीकरण की मांग की गई हो तथा अनुबन्ध का विभाजन करना सम्भव नही हो।
3. यदि अनुबन्ध करने के बाद की परिवर्तित परिस्थितियों के परिणामस्वरूप पक्षकारों को अनुबन्ध की पूर्व स्थिति में लौटाना संभव न हो।
4. यदि अनुबन्ध के वैध रहने की अवधि में तृतीय पक्षकारों ने कुछ अधिकार तथा वस्तु मूल्य चुकाकर सद्विश्वास के साथ प्राप्त कर लिये हों।

**निस्तीकरण के परिणाम/प्रभाव**

अनुबन्ध निरस्त करने पर दो परिणाम उत्पन्न होते है:

1. यदि पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को निरस्त करता है तो उसे वे सभी लाभ तथा वस्तुएँ जो अनुबन्ध के अन्तर्गत प्राप्त की हैं, लौटानी होंगी।
2. यदि दूसरा पक्षकार अनुबन्ध का निष्पादन नहीं करता है तो पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध के निष्पादन नही होने से उत्पन्न क्षति की पूर्ति करवा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

II. **क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करना –** अनुबन्ध भंग के परिणामस्वरूप पीड़ित पक्षकार को दूसरे पक्षकार से क्षतिपूर्ति करवाने का अधिकार होता है। क्षतिपूर्ति केवल धन सम्बन्धी ही हो सकती है। क्षतिपूर्ति का उद्देश्य पीड़ित पक्षकार को आर्थित दृष्टि से उस स्थिति में रखना है जहॉ पर अनुबन्ध के निष्पादन की दशा में होता। क्षतिपूर्ति दण्ड के रूप में नही वरन हानि की पूर्ति करने के लिए होती है।

**क्षतिपूर्ति की राशि निर्धारित करने से सम्बन्धित नियम :**

**धारा 73 के अनुसार,** क्षतिपूर्ति की राशि निर्धारित करते समय निम्नलिखित नियमों का पालन किया जाना चाहिये –

1. **क्षति अनुबन्ध भंग से स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होनी चाहिए या साधारण क्षति की पूर्ति** – अनुबन्ध भंग होने से होने वाली क्षति के निर्धारण में सर्वप्रथम यह देखा जाता है कि क्षति अनुबन्ध भंग करने से स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हुई है अथवा नहीं। दूसरे शब्दो में, केवल क्षति की ही पूर्ति करवायी जा सकती है जो उस अनुबन्ध भंग से सामान्य रूप से उत्पन्न होती है। यदि अनुबन्ध भंग के दूरगामी कारणों से क्षति होती है तो उसकी पूर्ति नहीं करवायी जा सकती है।
2. **अनुबन्ध करते समय पक्षकारों की कल्पना या विशेष क्षति की पूर्ति –** सामान्यतः अनुबन्ध भंग की स्थिति में स्वाभाविक क्षति की पूर्ति ही की जाती है। किन्तु कुछ विशेष प्रकार की क्षति की पूर्ति करवाने का भी पीड़ित पक्षकार को अधिकार होता है, यदि अनुबन्ध के दोनो पक्षकारों ने अनुबन्ध करते समय ही ऐसी क्षति की कल्पना कर ली हो।
3. **दूरगामी एवं अप्रत्यक्ष क्षति की क्षतिपूर्ति नहीं –** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम दूरगामी एवं अप्रत्यक्ष कारणों से उत्पन्न हानियों की पूर्ति की अनुमति नही देता है।
4. **अर्द्ध–अनुबन्ध भंग की दशा में क्षतिपूर्ति –** अर्द्ध–अनुबन्ध के अन्तर्गत उत्पन्न दायित्वों की पूर्ति न करना भी अनुबन्ध भंग के समान ही माना जाता है। अतः ऐसे अनुबन्ध भंग की दशा में क्षतिपूर्ति ठीक उसी प्रकार की जाती है जिस प्रकार अन्य किसी अनुबन्ध में की जाती है।
5. **क्षति का अनुमान–** अनुबन्ध भंग से उत्पन्न क्षति का अनुमान लगाते समय अनुबन्ध भंग होने से उत्पन्न असुविधा का उपचार या उपाय करने के लिए उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखा जाना चाहिये।

   **दिल्ली उच्च न्यायालय ने एन्डर्ड माउन्ट लि. इंग्लैण्ड बनाम क्योरवैल इण्डिया लि. नई दिल्ली के वाद में निर्णय किया कि–**

   - ❖ यदि क्षतिपूर्ति की राशि का निर्धारण निश्चितता से नहीं किया जा सकता है तो वादी को उचित क्षतिपूर्ति की राशि प्राप्त करने से वंचित नहीं किया जा सकता हैं। ऐसी दशा में वादी को प्रत्येक उचित मान्यता का लाभ, क्षतिपूर्ति की राशि का निर्धारण करने के लिए प्राप्त करने का अधिकार है।
   - ❖ अनुबन्ध–भंग की दशा में क्षतिपूर्ति की राशि पर ब्याज पाने का अधिकार है।

अन्य नियम– धारा 73 के उपरोक्त प्रावधानों के अतिरिक्त क्षतिपूर्ति के कुछ सामान्य नियम और भी है, जो निम्नानुसार है :

1. क्षति वास्तव में हुई हो
2. दण्डात्मक या उदाहरणीय क्षतिपूर्ति
3. नाममात्र की क्षतिपूर्ति
4. व्यापारिक सौदों में क्षतिपूर्ति
5. ऋणो के अनुबन्धो में क्षतिपूर्ति
6. वस्तुओं के वाहक द्वारा देरी की स्थिति में क्षतिपूर्ति
7. ख्याति नष्ट होने पर क्षतिपूर्ति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**धारा 74 के अनुसार ,** ''यदि अनुबन्ध को भंग कर दिया गया है और अनुबन्ध भंग की दशा में दी जाने वाली राशि निश्चित कर रखी है अथवा यदि अनुबन्ध में दण्डस्वरूप किसी प्रकार की अन्य शर्त विद्यमान है तो ऐसी दशा में अनुबन्ध भंग का वाद प्रस्तुत करने वाला पक्षकार उस पक्षकार से जिसने अनुबन्ध भंग किया है, से केवल उचित क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकारी होगा जो कि निश्चित धनराशि अथवा दण्ड से अधिक नहीं होगी।''

इस धारा के विश्लेषण से निम्न बातें स्पष्ट होती है :

1. अनुबन्ध भंग कर दिया गया हो।
2. अनुबन्ध में इस बात का प्रावधान होना चाहिए कि अनुबन्ध भंग होने पर कोई हानि हुई है अथवा नही।
3. इस धारा को लागू करने के लिए यह सिद्ध नहीं करना पड़ता है कि वास्तविक हानि हुई है अथवा नहीं।
4. अनुबन्ध का पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध करने वाले से उचित क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है।
5. क्षतिपूर्ति किसी भी दशा में अनुबन्ध में निश्चित की गई राशि अथवा दण्ड की राशि से अधिक नहीं हो सकती है।

III. **अर्जित पारिश्रमिक प्राप्त करना –** जितना काम उतना दाम अथवा जितना अर्पित किया है उतना। अर्थात किसी व्यक्ति को उतना ही धन देना, जितना उसने अपने कार्य द्वारा अर्जित किया है। यह सिद्धान्त यह कहता है कि जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को उसकी प्रार्थना पर किसी वस्तु की पूर्ति करता है अथवा उसके लिए कोई कार्य करता है और यदि उसके लिए पहले से ही कोई पारिश्रमिक निश्चित नही किया गया होता है, तो उसे न्याय की दृष्टि से सदैव उचित पारिश्रमिक मिलना चाहिए। ऐसी दशा में दिया हुआ **'उचित पारिश्रमिक ही'** 'Quantum meruit' कहलाता है। अनुबन्ध भंग की दशा में इस सिद्धान्त का महत्व ज्ञात होता है। यह सिद्धान्त विशेषतः उस अवस्था में प्रभावशील होता है जब अनुबन्ध पूरा किया जा रहा हो और दूसरा पक्ष अनुबन्ध को बीच में ही समाप्त कर दें। ऐसी परिस्थिति में पूरे किये गये भाग के लिए पहला पक्षकार न्यायपूर्ण पारिश्रमिक पाने का अधिकारी है।

**अर्जित पारिश्रमिक के सिद्धान्त का लागू होना–**

अर्जित पारिश्रमिक का सिद्धान्त निम्नलिखित परिस्थितियों में लागू होता है–

1. **कुछ कार्य करने के बाद अनुबन्ध भंग करना** – यदि एक पक्षकार ने दूसरे पक्षकार द्वारा अनुबन्ध भंग करने से पूर्व ही कुछ कार्य कर लिया है तो पीड़ित पक्षकार को उस कार्य के लिए उपार्जित पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार होगा।
2. **कुछ कार्य करने के बाद अनुबन्ध का व्यर्थ हो जाना** – यदि किसी अनुबन्ध के अन्तर्गत किसी एक पक्षकार ने कुछ कार्य किया हो अथवा वस्तु प्रदान की हो किन्तु वह अनुबन्ध किन्हीं कारणों से व्यर्थ हो जाता है तो दूसरे पक्षकार को पहले पक्षकार की अर्जित पारिश्रमिक की क्षतिपूर्ति करनी होगी और यदि कोई वस्तु अथवा लाभ प्राप्त किया है तो लौटाना पड़ेगा।
3. **जब कार्य निःशुल्क करने का अभिप्राय न हो** – जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के लिए स्वेच्छा से कोई कार्य करता है और दूसरा व्यक्ति उस कार्य से लाभ उठाता है तो ऐसी दशा में दूसरा व्यक्ति पहले व्यक्ति का अर्जित पारिश्रमिक चुकाने के लिए उत्तरदायी होगा।
4. **विभाजनीय अनुबन्ध में लाभ उठाने पर** – यदि किसी विभाजन योग्य अनुबन्ध के अन्तर्गत पीड़ित पक्षकार ने दोषी पक्षकार द्वारा किये गये कार्यो से लाभ प्राप्त किया है तो दोषी पक्षकार को पीड़ित पक्षकार से उपार्जित पारिश्रमिक के सिद्धान्त के आधार पर क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार होगा।
5. **जब अनुबन्ध का निष्पादन उचित रूप से नही किया जा सकता हो–** जब किसी अनुबन्ध का निष्पादन अनुबन्ध की शर्तो के अनुसार नहीं हो सकता है तो ऐसी स्थिति में भी उपार्जित पारिश्रमिक सिद्धान्त लागू होता है।

**अपवाद**

1. यदि अनुबन्ध विभाजन – योग्य नहीं है और सम्पूर्ण राशि का भुगतान कार्य समाप्त होने पर किया जाना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. यदि कोई कार्य करने का परिश्रमिक या मूल्य भुगतान करने का स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से कोई आश्वासन नहीं दिया गया है।

3. यदि अर्जित पारिश्रमिक के सिद्धान्त के आधार पर क्षतिपूर्ति की मांग करने वाला पक्षकार स्वयं ही अनुबन्ध भंग करने का दोषी है।

**IV. निर्दिष्ट निष्पादन का अधिकार** – जब अनुबन्ध भंग की दशा में मौद्रिक क्षतिपूर्ति पर्याप्त उपचार न समझा जाये तो 'विशेष सहायता अधिनियम' 1877 के अन्तर्गत पीड़ित पक्षकार को निर्दिष्ट निष्पादन पाने का अधिकार है। वैयक्तिक सेवा अनुबन्धों के लिए निर्दिष्ट निष्पादन की आज्ञा नहीं दी जा सकती। न्यायालय सामान्यतः निम्नलिखित परिस्थितियों में निर्दिष्ट निष्पादन का आदेश दे सकता है–

1. जब कार्य आंशिक या पूर्ण रूप से न्यास या विश्वास पर आधारित हो।
2. जब अनुबन्ध भंग होने पर होने वाली क्षति का माप करना असम्भव हो।
3. जब अनुबन्ध भंग के लिए आर्थिक रूप से क्षतिपूर्ति करना ही पर्याप्त प्रतीत नहीं होता हो।
4. जब अनुबन्ध भंग के लिए आर्थिक रूप से क्षतिपूर्ति प्राप्त करना सम्भव न हो।

**उदाहरण** – अ ने ब से एक प्राचीन मूर्ति खरीदने का अनुबन्ध किया। ब इस मूर्ति को नहीं देता। यहॉ वास्तविक क्षतिपूर्ति का माप उपलब्ध न होने के कारण न्यायालय अनुबन्ध के निर्दिष्ट निष्पादन का आदेश दे सकता है।

**V. निषेधाज्ञा पाने का अधिकार –** पीड़ित पक्षकार को विशेष परिस्थितियों में निषेधाज्ञा प्राप्त करने का भी अधिकार होता है। जब अनुबन्ध का कोई पक्षकार किसी कार्य को नहीं करने का वचन देता है परन्तु वह पक्षकार उसी कार्य को करके उस अनुबन्ध को भंग करता है तो कुछ परिस्थितियों में दूसरे पक्षकार को यह अधिकार होता है कि वह न्यायालय की मदद से उस पक्षकार को अनुबन्ध भंग करने से रोक सकता है। न्यायालय द्वारा अनुबन्ध भंग को रोकने के लिए यह दी गई आज्ञा ही निषेधाज्ञा है। इस प्रकार न्यायालय दूसरे पक्षकार को जब तक की मामले का निर्णय न कर दिया जाये ऐसा कार्य करने से, जिसके लिए पीड़ित पक्षकार ने शिकायत की है, रोकने की आज्ञा दे सकता है। न्यायालय परिस्थितियों के अनुसार स्थायी अथवा अस्थायी निषेधाज्ञा जारी कर सकता है।

**बोध प्रश्न –**

1. अर्जित पारिश्रमिक प्राप्त करने के अधिकार पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
2. निर्दिष्ट निष्पादन प्राप्त करने के अधिकार से आप क्या समझते है।
3. निषेधाज्ञा क्या हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

## खण्ड–ब

# विशेष अनुबन्ध (हानि रक्षा, गारण्टी, निक्षेप, गिरवी एवं एजेन्सी)

**हानि रक्षा अनुबन्ध (Contract of Indemnity) :–** एक ऐसा विशेष अनुबंध है जिसमें हानिरक्षक या वचनदाता, हानिरक्षाधारी या वचनगृहीता को अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार हुई हानि को चुकाने का वचन देता है। जो व्यक्ति हानि की पूर्ति का वचन देता है, उसे हानिरक्षक (Indemnifier) कहा जाता है। जबकि जिस व्यक्ति को वचन दिया जाता है, उसे 'हानि रक्षाधारी' (Indemnity holder or Inemnifief) कहा जाता है। इस 'अध्याय' के अध्ययन से पाठक को हानिरक्षक एवं हानिरक्षाधारी के अधिकार एवं कर्त्तव्य, दायित्व की सीमा, दायित्व की उत्पति एवं अन्य आवश्यक विषय वस्तु के सम्बन्ध में जानकारी होगी।

'गारण्टी का अनुबन्ध (Contract of Guarantee) – एक ऐसा विशेष अनुबन्ध है जिसमें किसी तीसरे पक्षकार की भूल या त्रुटि की दशा में, उसके वचन का निष्पादन किया जाता है। जिस व्यक्ति द्वारा गारण्टी प्रदान की जाती है, उसे 'प्रतिभू' (Surety), जिस व्यक्ति के पक्ष में गारण्टी दी जाती है, उसे मूल ऋणी (Principal debtor) तथा जिस व्यक्ति को गारण्टी प्रदान की जाती है, उसे ऋणदाता (Creditor) कहा जाता है। इस अध्याय में गारण्टी के आवश्यक लक्षण, प्रतिभू का दायित्व, गारण्टी के प्रकार, प्रतिभू के दायित्व से मुक्ति एवं प्रतिभू के अधिकारों को समावेशित किया गया हैं।

**निक्षेप (Bailment) :–**निक्षेप अनुबन्ध में कोई विशेष प्रयोजनार्थ माल का भौतिक हस्तान्तरण किया जाता है। जो व्यक्ति माल सुपुर्द करता है, उसे 'निक्षेपी' (bailor) एवं जिस व्यक्ति को सुपुर्द किया जाता है, उसे 'निक्षेपगृहीता' (bailee) कहा जाता है। इस अध्याय के अध्ययन से पाठक को निक्षेप की विशेषताएं, निक्षेपी एवं निक्षेपगृहीता के अधिकार एवं कर्तव्य, ग्रहणाधिकार, खोई हुई वस्तु के प्राप्तकर्ता की वैधानिक स्थिति एवं निक्षेप की समाप्ति जैसे विषयों की जानकारी होगी।

**गिरवी (Pledge) :–** गिरवी एक प्रकार का निक्षेप ही है। जब ऋण या किसी दायित्व की सुरक्षार्थ किसी चल वस्तु का निक्षेप किया जाता है तो उसे गिरवी कहते हैं। इस स्थिति में निक्षेपी को गिरवीकर्त्ता (Pledger or pawnor) एवं निक्षेपगृहीता को गिरवीग्राही (plegee or pawnee) कहा जाता है। इस अध्याय में गिरवीकर्त्ता एवं गिरवीग्राही के अधिकार एवं कर्तव्य, गैर–मालिकों द्वारा गिरवी, गिरवी एवं निक्षेप में अन्तर को समावेशित किया गया है।

**एजेन्सी (Agency) :–** एजेन्सी का अनुबन्ध हमें यह संकेत देता है कि आधुनिक जटिल युग में संपूर्ण कार्य स्वयं के द्वारा निष्पादित नहीं किये जा सकते हैं। आवश्यकतावश स्वयं के कार्यों में दूसरों की सेवाएं लेनी पड़ती है। अतः जिन व्यक्तियों द्वारा कार्य करवाया जाता है, उन्हें एजेन्ट (Agent) कहते हैं । 'एजेन्ट एवं नियोक्ता' के मध्य व्याप्त सम्बन्ध को 'एजेन्सी' कहा जाता है। इस अध्याय के अध्ययन से पाठक को एजेन्सी का निर्माण, नियोक्ता व एजेन्ट के मध्य संबंध, अधिकारों का भारार्पण, नियोक्ता का तृतीय पक्षकारों के साथ संबंध एवं एजेन्सी की समाप्ति जैसे विषयों की जानकारी होगी ।

### खण्ड–ब–1, हानिरक्षा अनुबन्ध (Contract of Indemnity)

हानिरक्षा अनुबंध से संबंधित सम्पूर्ण विषयवस्तु को सुविधा के दृष्टिकोण से विभिन्न वर्गों में विभाजित किया गया है, जो इस प्रकार है –

**(A) – प्रस्तावना (Introduction) :–** भारतीय अनुबंध अधिनियम की धारा 124 के अनुसार, ''हानिरक्षा अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है, जिसके द्वारा एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को ऐसी हानि से बचाने का वचन देता है, जो स्वयं वचनदाता अथवा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से हुई हो'' (A contract by which one party promises to save the other from loss caused to him by the conduct of the promisor himself, or by the conduct of any other person, is called a 'contract of indeminity')।

जो व्यक्ति किसी दूसरे पक्षकार की हानि को बचाने का वचन देता है, उसे हानिरक्षक (Indemnifier) कहा जाता है जबकि जिस व्यक्ति को वचन दिया जाता है, उसे हानि रक्षाधारी (Indeminity holder or Indemnified) कहा जाता है ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अंग्रेजी राजनियम में हानिरक्षा अनुबन्ध के द्वारा किसी व्यक्ति को सम्भावित घटना से उत्पन्न हानि से बचाने का वचन दिया जाता है । यह वचन स्पष्ट या गर्भित हो सकता है । इस प्रकार अंग्रेजी राजनियम में हानिरक्षा अनुबन्ध को विस्तृत अर्थ में लिया गया है ।

**उदाहरण :** अ एवं ब दोनों रेलवे कम्पनी के पास निर्दिष्ट समान लेने के लिए पहुँचते हैं। रेलवे कम्पनी ने इस वचन के साथ कि यदि ब माल का वास्तविक स्वामी होना सिद्ध हो जाता है तो अ रेलवे कम्पनी को हुई क्षति की पूर्ति करेगा, माल अ को सुपुर्द कर देता है । यह अ एवं रेलवे कम्पनी के बीच हानिरक्षा का अनुबन्ध है ।

भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में दी गई परिभाषा सुविस्तृत (exhaustive) नहीं है क्योंकि इसमें निम्नांकित दो पहलुओं का ही समावेश है–

(।) हानिरक्षा का स्पष्ट वचन होना चाहिए, और

(।।) हानि, वचनदाता या किसी अन्य व्यक्ति के आचरण से अर्थात् किसी मानवीय घटक से होनी चाहिए ।

उक्त विवेचना के अनुसार हानिरक्षा अनुबन्ध में हानिरक्षा के गर्भित वचन को सम्मिलित नहीं किया जाता है। साथ ही ऐसी घटनाएं या दुर्घटनाएं (आग लगना, दुर्घटना होना) जिसमें मनुष्य के आचरण का समावेश न हो, को भी इसकी परिधि के बाहर रखा है।इस दृष्टि से धारा 124 एवं 125 को संकीर्ण अर्थ में प्रस्तुत किया गया है जबकि भारतीय न्यायालयों ने हानिरक्षा अनुबन्ध को अंग्रजी राजनियम के अनुरूप की लागू करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि अग्नि बीमा एवं दुर्घटना बीमा हानिरक्षा अनुबन्ध के अन्तर्गत ही लिये गये हैं ।

**निष्कर्ष :** इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि हानिरक्षा अनुबन्ध में वचनग्रहीता को अनुबन्ध की शर्तानुसार किसी संभावित हानि, जो वचनदाता, किसी घटना अथवा तृतीय पक्षकार के आचरण से उत्पन्न हो सकती है, के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करने का वचन है ।

**;ठद्ध हानिरक्षा अनुबन्ध के आवष्यक लक्षण**

1. दो पक्षकार अर्थात् हानिरक्षक एवं हानिरक्षाधारी।
2. वैध अनुबन्ध के समस्त आवश्यक लक्षणों का होना।
3. हानिरक्षा का वचन।
4. स्पष्ट अथवा गर्भित।
5. सद्विश्वास पर आधारित।
6. हानिरक्षक का दायित्व तब उत्पन्न होगा जब हानिरक्षाधारी के लिए 'हानि' निश्चित एवं स्पष्ट हो गई हो।
7. हानिरक्षा अनुबन्ध में हानि से बचाने का वचन होता है, अतः हानिरक्षक केवल वास्तविक क्षति के लिए ही उत्तरदायी होता है।
8. हानिरक्षक का दायित्व ऐसी हानि के प्रति होता है जो स्वयं वचनदाता या किसी दूसरे पक्षकार के आचरण से, अथवा संभावित घटना के घटित होने के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई हो।, और
9. हानिरक्षक किसी ऐसी हानि के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है जो स्वयं हानिरक्षाधारी के आचरण के कारण उत्पन्न हुई हो।

## (C) हानिरक्षाधारी के अधिकार अथवा हानिरक्षक का दायित्व (धारा 125)

धारा 125 में हानिरक्षाधारी के निम्नांकित अधिकारों का उल्लेख है –

1. **क्षति के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार –** हानिरक्षाधारी ऐसी समस्त क्षति, जो अनुबन्ध की शर्तानुसार उत्पन्न हुई हो, को प्राप्त करने के लिए हानिरक्षक के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. **व्यय की राशि प्राप्त करने का अधिकार –** हानिरक्षाधारी ऐसा सम्पूर्ण व्यय, जो अपने हितों की रक्षा के लिए वाद प्रस्तुत करने या प्रस्तुत वाद का बचाव करने या हानि को कम करने के लिए किया हो, को हानिरक्षक से प्राप्त कर सकता है ।

3. **चुकाई गई राशि प्राप्त करने का अधिकार –** यदि हानिरक्षाधारी ने अपने विरूद्ध प्रस्तुत किसी वाद से समझौते के अन्तर्गत कोई राशि चुकाई है, तो ऐसी धनराशि भी प्राप्त कर सकता है।

**हानिरक्षाधारी को उपर्युक्त अधिकार तभी प्राप्त होंगे जब**

(i) हानिरक्षाधारी ने अनुबन्ध की शर्तानुसार कार्य किया हो,

(ii) हानिरक्षक के निर्देशानुसार कार्य किया हो, और

(iii) कार्य इस प्रकार किया हो जैसा कि एक विवेकशील व्यक्ति स्वयं के हितों की रक्षा के लिए करता है।

### (D) हानिरक्षक के अधिकार

यद्यपि हानिरक्षक के अधिकारों के संबंध में अनुबन्ध अधिनियम मौन है, परन्तु न्यायालयों के विभिन्न निर्णयों एवं अंग्रजी राजनियम की अभिव्यक्ति के आधार पर हानिरक्षक के अधिकारों को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:–

1. **स्थान ग्रहण का अधिकार** (Right of Subrogation) – हानिरक्षक द्वारा अनुबन्ध की शर्तानुसार अपने वचन का निष्पादन करते ही हानिरक्षक, हानिरक्षाधारी का स्थानग्रहण कर लेता है । दूसरे शब्दों में, हानिरक्षक को वे समस्त अधिकार प्राप्त हो जाते हैं, जो हानिरक्षाधारी को प्राप्त है।

2. **क्षतिपूर्ति की राशि तक सीमित अधिकार** – हानिरक्षक के अधिकार उतनी राशि तक ही सीमित होते हैं, जिस सीमा तक उसने हानि–रक्षाधारी की क्षतिपूर्ति की है।

3. **वाद प्रस्तुत करने का अधिकार –** यदि आवश्यकता हो तो हानिरक्षक, हानिरक्षाधारी के नाम से, अन्य पक्षकारों के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है।

4. **क्षतिपूर्ति से इन्कार करने का अधिकार –** यदि क्षति ऐसे कारणों की वजह से हुई हो जो अनुबन्ध की परिधि के बाहर हो अथवा क्षति हानिरक्षाधारी के स्वयं के आचरण की वजह से हुई तो हानिरक्षक क्षतिपूर्ति से इन्कार कर सकता है ।

### (E) क्या बीमा के अनुबन्ध हारिक्षा के अनुबन्ध है ?

जीवनबीमा को छोड़कर अन्य सभी बीमा अनुबन्ध, क्षतिपूर्ति के अनुबन्ध माने जाते हैं क्योंकि अग्नि बीमा, समुद्री बीमा, दुर्घटना बीमा इत्यादि का मुख्य प्रयोजन बीमित को हानि से बचाना है। जीवन बीमा को हानिरक्षा अनुबन्ध की परिधि से बाहर रखा है क्योंकि जीवन की क्षति का मूल्यांकन करना संभव नहीं है। साथ ही जीवन बीमा में विनियोग तत्व भी विद्यमान है। यह भी उल्लेखनीय है कि चाहे बीमित की मृत्यु हो अथवा न हो, बीमा कम्पनी भुगतान के लिए उत्तरदायी होती है।

### बोध प्रश्न (Test Questions)

1. हानिरक्षा अनुबन्ध क्या है ? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये । (5 अंक)
2. 'बीमा अनुबन्ध' की प्रकृति क्या है ? (5 अंक)
3. हानिरक्षक के दायित्व की उत्पत्ति कब होती है ? (5 अंक)
4. हानिरक्षाधारी के अधिकारों की विवेचना कीजिये । (5 अंक)
5. हानिरक्षा अनुबन्ध क्या है ?हानिरक्षाधारी एवं हानिरक्षक के अधिकारों की व्याख्या कीजिए। (15 अंक)

******

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

# खण्ड–ब–2 गारण्टी का अनुबन्ध
# (Contract of Guarantee)

## (A) प्रस्तावना (Introduction)

व्यावसायिक गतिविधियों में गारण्टी की अहम भूमिका है। चाहे ऋण लेना हो या उधार की शर्त पर माल क्रय करना हो या कोई अन्य दायित्व हो, गारण्टी की मुख्य भूमिका होती है। सरल शब्दों में, 'गारण्टी एक ऐसा अनुबन्ध है जिसमें तीसरे पक्षकार की त्रुटि की दशा में, उसके वचन के निष्पादन का वचन दिया जाता है।

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 126 के अनुसार, गारण्टी का अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसमें तीसरे पक्षकार की त्रुटि की दशा में उसके वचन के निष्पादन अथवा दायित्व को पूरा करने का वचन दिया जाता है। (A contract of guarantee is a contract to perform the promise or discharge the liability of a third person in case of his default.)

गारण्टी के अनुबन्ध में त्रिपक्षीय ठहराव होता है तो मूलऋणी, ऋणदाता एवं प्रतिभू ;नतमजलद्ध के बीच पारस्परिक सम्बन्धों का निर्धारण करता है । इस संबंध को त्रिभुजाकार आकृति द्वारा समझा जा सकता है–

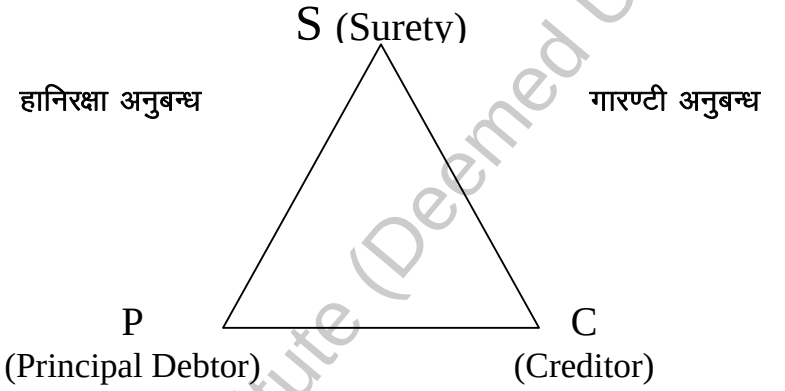


**सामान्य अनुबंन्ध**

उक्त रेखाचित्र से स्पष्ट है कि

1. पी एवं सी के मध्य सामान्य अनुबन्ध है जिसके द्वारा ऋण या दायित्व की उत्पत्ति होती है ।
2. पी एवं एस के मध्य हानिरक्षा का अनुबन्ध है जिसके द्वारा ऋणी (पी) प्रतिभू (एस) को सम्भावित हानि (जो मूल ऋणी द्वारा वचन का निष्पादन न करने के कारण उत्पन्न हुई हो ) से बचाने का वचन देता है।
3. एस एवं सी के मध्य गारण्टी का अनुबन्ध है जिसमें प्रतिभू ऋणदाता को वचन देता है कि मूल ऋणी द्वारा वचन का निष्पादन न करने पर, उसके वचन का निष्पादन करेगा ।

**उदाहरण :–**

(ए) पी, एक बैंक सी से ऋण लेता है। एस, सी को वचन देता है कि पी द्वारा त्रुटि करने पर उसके वचन का निष्पादन वह स्वयं करेगा । यहां एस एवं सी के मध्य गारण्टी का अनुबन्ध है ।

(बी) पी, रोकड़िये के रूप में सी के यहा सेवाएं देने के लिए सहमत होता है। परन्तु पी की विश्वसनियता संदिग्ध है, अतः एस, सी को वचन देता है कि पी द्वारा त्रुटि करने पर वह स्वयं उस क्षति की पूर्ति करेगा। यह गारण्टी का अनुबन्ध है।

## (B) गारण्टी अनुबन्ध के आवष्यक लक्षण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. **लिखित या मौखिक** – धारा 126 के अनुसार गारण्टी का अनुबन्ध लिखित भी हो सकता है और मौखिक भी। अंग्रजी राजनियम में केवल लिखित गारण्टी को ही मान्यता है ।

2. **स्पष्ट या गर्भित** –गारण्टी का अनुबन्ध स्पष्ट भी हो सकता है और पक्षकारों के मध्य पारस्परिक संबंधों के आधार पर भी सुनिश्चित किया जा सकता है, अर्थात् गर्भित भी हो सकता है।

3. **तीन पक्षकार** – यथा :– मूल ऋणी, ऋणदाता एवं प्रतिभू।

4. **तीन अनुबन्ध** – यथा :–समान्य अनुबन्ध, हानिरक्षा अनुबन्ध एवं गारण्टी अनुबन्ध।

5. **प्रतिफल** – धारा 127 के अनुसार गारण्टी अनुबन्ध में प्रतिफल की अनिवार्यता नहीं है। मूल ऋणी को ऋणदाता से जो सेवाएं प्राप्त होती है, वही प्रतिभू के लिए पर्याप्त प्रतिफल मानी जाती है।

6. **अनुबन्ध करने की क्षमता** – गारण्टी अनुबन्ध के लिए प्रतिभू एवं ऋणदाता में अनुबन्ध करने की क्षमता का होना अनिवार्य है। यदि मूल ऋणी में अनुबन्ध करने की क्षमता न भी हो तो भी गारण्टी की वैधता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, परन्तु ऐसी स्थिति में मूलऋणी का प्रतिभू के प्रति कोई दायित्व नहीं होगा ।

7. **प्रतिभू का दायित्व गौण एवं द्वितीयक होता है** – गारण्टी अनुबन्ध में मूल ऋणी का दायित्व प्राथमिक एवं प्रतिभू का दायित्व गौण एवं सम्भाव्य होता है। मूल ऋणी द्वारा दायित्व–निर्वाह न करने पर प्रतिभू का दायित्व उत्पन्न होता है।

8. **ऋण या दायित्व की विद्यमानता** – बिना ऋण या दायित्व के गारण्टी अनुबन्ध की उत्पति नहीं हो सकती। गारण्टी अनुबन्ध का सार यह है कि किसी पक्षकार पर कोई ऋण या दायित्व हो और उसके द्वारा त्रुटि करने पर कोई अन्य पक्षकार उत्तरदायी हो।

9. **स्वतंत्र रूप से दायित्व स्वीकार करना, गारण्टी नहीं** – यदि कोई पक्षकार मूल ऋणी की जिम्मेदारी को दरकिनार करते हुए स्वतंत्र दायित्व स्वीकार करता है तो इसे गारण्टी नहीं माना जायेगा।

**उदाहरण :–**

एक्स एवं वाई, दो मित्र सामान खरीदने हेतु बाजार जाते हैं। एक्स, जेड (विक्रेता) को कहता है, ''आप इसे (वाई) वांछित माल दे दीजिये। मैं भुगतान कर दूंगा''। यह गारण्टी नहीं है।

10. **ऋणदाता द्वारा तथ्यों को प्रकट करना** – यह ध्यान रखने योग्य है कि गारण्टी का अनुबन्ध पूर्णतः सद्विश्वास पर आधारित नहीं है। अतः ऋणदाता, प्रतिभू के सन्मुख प्रत्येक पहलू को प्रकट करने के लिए बाध्य नहीं है। इसी आधार पर बैंकर ऋण उपलब्ध कराते समय प्रतिभू को ऐसी जानकारी प्रदान नहीं कर सकता जो ऋणी की साख को गम्भीर रूप से प्रभावित करती हो। परन्तु धारा 142 एवं 143 में स्पष्ट प्रावधान है कि यदि ऋणदाता ने गारण्टी क्रमशः मिथ्यावर्णन एवं छिपाव द्वारा प्राप्त की है तो ऐसी गारण्टी पीड़ित पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय मानी जायेगी'; जिसके परिणमास्वरूप प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो सकता है।

11. **वैध अनुबन्ध के समस्त आवश्यक लक्षणों का होना** – गारण्टी अनुबन्ध की प्रवर्तनियता के लिए वैध अनुबन्ध के समस्त आवश्यक लक्षणों का होना भी अनिवार्य है ।

## (C) हानिरक्षा एवं गारण्टी अनुबन्ध में अन्तर (Difference between contract of Indemnity and Guarantee)

समान्यतः दोनों अनुबन्धों की प्रकृति में समानता प्रतीत हो रही है, क्योंकि हानिरक्षा अनुबन्ध में हानिरक्षक, हानिरक्षाधारी को हानि से बचाने का वचन देता है जबकि गारण्टी अनुबन्ध में प्रतिभू, ऋणदाता को मूल ऋणी की त्रुटि की की दशा में उसके दायित्व को पूरा करने का वचन देता है। फिर भी दोनों में काफी भिन्नता है, जिन्हें निम्न तालिका के द्वारा दर्शाया गया है –

| क्र. सं. | अन्तर का आधार | हारिरक्षा अनुबन्ध | गारण्टी का अनुबन्ध |
|---|---|---|---|
| 1 | पक्षकार | दो, हानिरक्षक एवं हानि रक्षाधारी | तीन, ऋणी, ऋणदाता एवं प्रतिभू |

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

| | | | |
|---|---|---|---|
| 2 | अनुबन्धों की संख्या | एक, हानिरक्षक एवं हानि रक्षाधारी के बीच । | तीन, सामान्य अनुबन्ध, हानिरक्षा अनुबन्ध एवं गारण्टी अनुबन्ध। |
| 3 | दायित्व की प्रकृति | हानिरक्षक का दायित्व प्राथमिक एवं स्वतंत्र होता है । | प्रतिभू का दायितव गौण एवं सम्भाव्य होता है। |
| 4 | ईच्छा | हानिरक्षक अपनी इच्छा से वचन देता है | प्रतिभू, मूल ऋणी की इच्छा से वचन देता है। |
| 5 | प्रतिफल | इस अनुबन्ध के लिए प्रतिफल अनिवार्य है । | प्रतिभू के लिए पृथकसः प्रतिफल की आवश्यकता नहीं। |
| 6 | अनुबन्ध करने की क्षमता | दोनों पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिए । | मूल ऋणी में अनुबन्ध करने की क्षमता का होना अनिवार्य नहीं है। |
| 7 | विषय वस्तु | इस अनुबन्ध की विषय वस्तु 'हानि' है । | इसकी विषय वस्तु ऋण या दायित्व है । |
| 8 | वाद प्रस्तुत करने का अधिकार | हानिरक्षक, तृतीय पक्षकार के विरूद्ध स्वयं के नाम से वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता क्योंकि वह अनुबन्ध के लिए 'अजनबी' होता है। | प्रतिभू, अपने वचन का निष्पादन करने के पश्चात् स्वयं के नाम से अन्य पक्षकारों के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है । |
| 9 | चुकाई गई राशि प्राप्त करने का अधिकार | हानिरक्षक द्वारा चुकाई गई राशि पुनः प्राप्त नहीं की जा सकती । | प्रतिभू द्वारा चुकाई गई राशि मूल ऋणी से पुनः प्राप्त की जा सकती है । |
| 10 | दायित्व की उत्पत्ति | सम्भावित घटन के घटित होते ही हानिरक्षक का दायित्व उत्पन्न हो जाता है । | दायित्व या ऋण पहले से ही विद्यमान होता है । |
| 11 | क्षेत्र | संकुचित, क्योंकि गारण्टी का समावेश इस अनुबन्ध में नहीं होता है। | विस्तृत, क्योंकि हानिरक्षा अनुबन्ध इसमें निहित होता है । |
| 12 | दायित्व से मुक्ति | जैसे ही हानिरक्षा का अनुबन्ध समाप्त हो जाता है, हानिरक्षक अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। | जैसे ही मूल ऋणी अपने वचन के निष्पादन के दायित्व से मुक्त हो जाता है, प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है । |

## (D) गारण्टी के प्रकार

## (Kinds of Guarantee)

गारण्टी विद्यमान या भावी ऋण या दायित्व के लिए दी जा सकती है। यदि विद्यमान ऋण के लिए गारण्टी दी जाती है तो इसे भूतलक्षी (Restrospective) गारण्टी कहा जाता है जबकि भावी ऋणों के लिए गारण्टी दी जाती है तो प्रत्याशित (Prospective) गारण्टी कहा जाता है। प्रकृति के अनुसार गारण्टी को निम्नांकित दो भागों में बांटा जा सकता है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(a) **विशिष्ट गारण्टी** (Specific or single Guarantee) :–

ऐसी गारण्टी जो विशिष्ट व्यवहार या दायित्व तक ही सीमित हो, विशिष्ट गारण्टी कहलाती है। इस गारण्टी के अन्तर्गत उत्पन्न दायित्व को पूरा करते ही गारण्टी समाप्त मानी जायेगी। यदि कोई विपरीत शर्त न हो तो विशिष्ट गारण्टी का खण्डन नहीं किया जा सकता।

(b)**चालू गारण्टी** (Continuing Guarantee) :–

''ऐसी गारण्टी जो व्यवहारों की श्रृंखला तक विस्तृत हो'' चालू गारण्टी कहलाती है । (Sec. 129) ऐसी गारण्टी में प्रतिभू एक निर्दिष्ट समयावधि में उत्पन्न सभी दायित्वों या व्यवहारों के लिए उत्तरदायी होता है जब तक कि चालू गारण्टी का खण्डन न हो। खण्डन के पश्चात् उत्पन्न दायित्वों के लिए प्रतिभू उत्तरदायी नहीं होता है

कोई भी गारण्टी चालू है या विशिष्ट, यह अनुबन्ध की प्रकृति, विषय–वस्तु एवं उपलब्ध परिस्थितियों पर निर्भर करती है।

**उदाहरण :–**

एस, एक प्रतिफल के बदले कि सी, पी को 5 आटे की बोरियां उधार देगा, जिनका मूल्य पी द्वारा एक माह में चुकाया जायेगा, सी को भुगतान अदायगी की गारण्टी देता है । सी, 5 बोरे, पी को सुपुर्द कर देता है तथा पी उनका भुगतान कर देता है। उसके बाद सी, इस विश्वास पर पी को 4 बोरे और उधार देता है जिनका मूल्य पी नहीं चुकाता है। यहां एस, 4 बोरों के मूल्य के लिए दायी नहीं होगा, क्योंकि एस द्वारा दी गई गारण्टी चालू गारण्टी नहीं है।

यदि अनुबन्ध में कोई विपरीत शर्त न हो तो खण्डन के पश्चात् उत्पन्न दायित्वों के लिए प्रतिभू उत्तरदायी नहीं होगा । निम्नांकित उदाहरणों से चालू गारण्टी को समझा जा सकता है –

**उदाहरण :–**

(a) एस, सी को पी के पक्ष में यह कहते हुए गारण्टी देता है, '' अगले 12 माह तक 10000/–रूपये की सीमा तक पी को चाय की सुपुर्दगी देते रहे, त्रुटि की दशा में भुगतान के लिए मैं उत्तरदायी हूं'', यह चालू गारण्टी है ।

(b) एस, पी के पक्ष में गारण्टी देते हुए सी को वचन देता है कि पी को आपके यहां रोकड़पाल के रूप में नियुक्त कर सकते हैं । यदि पी की ईमानदारी या विश्वसनियता में कमी के कारण सी को किसी प्रकार का नुकसान होता है तो उसकी भरपाई एस करेगा जब तक कि गारण्टी का खण्डन न हो। यह विश्वसनीयता गारण्टी है, जो व्यवहारों की श्रृंखला तक विस्तृत है।

**विशिष्ट एवं चालू गारण्टी में अन्तर (Distinction between specific and continuing Guarantee)**

| क्र.सं. | विशिष्ट गारण्टी | चालू गारण्टी |
|---|---|---|
| 1 | यह विशिष्ट व्यवहार तक ही सीमित होती है । | यह व्यवहारों की श्रृंखला तक विस्तृत होती है। |
| 2 | जब तक कोई विपरीत शर्त न हो इसका खण्डन नहीं किया जा सकता। | चालू गारण्टी का खण्डन किया जा सकता है। |
| 3 | प्रतिभू का दायित्व केवल विशिष्ट व्यवहार के प्रति ही होता है। | प्रतिभू, सभी व्यवहारों के लिए उत्तरदायी होता है। |
| 4 | विशिष्ट व्यवहार के पूरा होते ही चालू गारण्टी समाप्त हो जाती है। | इस गारण्टी को खण्डन द्वारा भी समाप्त किया जा सकता है। |

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

## (E) प्रतिभू का दायित्व
## (Liability of Surety)

प्रतिभू के दायित्व की सीमा को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :–

1. **प्रतिभू का दायित्व सह–विस्तृत (Co-extensive) –** धारा 128 के अनुसार, '' यदि कोई विपरीत शर्त न हो तो प्रतिभू का दायित्व उतना ही विस्तृत होता है जितना की मूल ऋणी का''। यदि ऋणी का दायित्व मूल ऋण एवं ब्याज का है तो प्रतिभू का दायित्व भी मूल ऋण एवं ब्याज का ही होगा जब तक कि कोई विपरीत शर्त न हो।

**उदाहरण :–**

एस, सी को जो कि बिल का धारक है, वचन देता है कि यदि पी जो बिल का स्वीकारकर्ता है, परिपक्वता तिथि पर बिल का अनादरण करता है तो वह स्वयं भुगतान करेगा। इस मामले में एस केवल बिल की राशि के लिए ही नहीं बल्कि देय ब्याज एवं अन्य आवश्यक व्ययों के लिए भी उत्तरदायी होगा।

यहां यह उल्लेखनीय है कि विशेष प्रावधान द्वारा दायित्व को कम तो किया जा सकता है, परन्तु मूल ऋणी के दायित्व से अधिक नहीं किया जा सकता।

2. **प्रतिभू का दायित्व गौण एवं सम्भाव्य –** प्राथमिक दायित्व मूल ऋणी का ही होता है। मूल ऋणी द्वारा अनुबन्ध की शर्तानुसार वचन का निष्पादन न करने पर प्रतिभू का दायित्व उत्पन्न होता है। परन्तु, यहां यह उल्लेखनीय है कि ऋणदाता के लिए यह आवश्यक नही है कि पहले मूल ऋणी के विरूद्ध वाद प्रस्तुत करें। यदि ऋणदाता चाहे तो मूल ऋणी के विरूद्ध कार्यवाही करने से पूर्व भी प्रतिभू के विरूद्ध कार्यवाही कर सकता है, यदि कोई विपरीत शर्त न हो।

3. **मूल ऋणी के दायित्व के बिना प्रतिभू का दायित्व –** यदि मूल ऋणी में अनुबन्ध करने की क्षमता का अभाव है और ऐसे व्यक्ति के लिए प्रतिभू ने गारण्टी दी है तो प्रतिभू, ऋणदाता के प्रति उत्तरदायी होगा, परन्तु मूल ऋणी का किसी भी पक्षकार के प्रति कोई दायित्व नहीं होगा। वस्तुतः गारण्टी का अनुबन्ध एक स्वतंत्र अनुबन्ध होता है।

4. **सह प्रतिभू** (ब्वैनतमजल) **द्वारा गारण्टी न देने पर दायित्व –** यदि किसी पक्षकार ने इस शर्त के साथ गारण्टी दी हो कि उसकी गारण्टी तभी प्रभावी मानी जायेगी जब सम्बन्धित व्यक्ति भी गारण्टी देगा । ऐसी स्थिति में सम्बन्धित व्यक्ति के द्वारा गारण्टी न देने पर पहला पक्षकार भी अपने दायित्व से मुक्त माना जायेगा, क्योंकि गारण्टी निष्प्रभावी मानी जायेगी ।

5. **प्रतिभू के पास धन का अभाव –** कोई भी प्रतिभू इस आधार पर दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता कि उसके पास धन का अभाव है। यह तर्क राजनियम की दृष्टि से मान्य नहीं है ।

## (F) प्रतिभू का दायित्व से मुक्त होना (Discharge of Surety from Liability)

प्रतिभू मुक्त तब माना जाता है जब वह अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है । प्रतिभू निम्नांकित तरीके से मुक्त हो सकता है :–

1. **खण्डन द्वारा (By revocation) धारा 130 –** सामान्यतः विशिष्ट गारण्टी को समाप्त नहीं किया जा सकता , परन्तु चालू गारण्टी की दशा में प्रतिभू, ऋणदाता को सूचना देकर भावी व्यवहारों के लिए दायित्वों से मुक्त हो सकता है। खण्डन की सूचना देने से पूर्व उत्पन्न दायित्वों के लिए प्रतिभू उत्तरदायी बना रहेगा।

2. **प्रतिभू की मृत्यु (By death of surety) धारा 131 –** यदि कोई विपरीत शर्त न हो तो प्रतिभू की मृत्यु स्वतः ही भावी व्यवहारों के लिए गारण्टी समाप्ति मानी जाती है। पहले से ही उत्पन्न दायित्वों के लिए प्रतिभू का वैधानिक उत्तराधिकारी उत्तरदायी होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. **नवीनीकरण द्वारा (By novation) धारा 62 –** नवीकरण का शाब्दिक अर्थ है, 'पुराने के स्थान पर नया'। इस प्रकार गारण्टी अनुबन्ध से सम्बन्धित पक्षकार पारस्परिक सहमति के आधार पर पुराने अनुबन्ध के स्थान पर नये अनुबन्ध का निर्माण कर लेते हैं तो ऐसा करते ही पुराना अनुबन्ध समाप्त माना जायेगा।

4. **अनुबन्ध की शर्तों में परिवर्तन** (ठल अंतपंजपवद पद जमतउे व िबवदजतंबज) **धारा 133 –** प्रतिभू उस दायित्व के प्रति उत्तरदायी होता है जो अनुबन्ध के आधार पर निर्धारित हुआ है। अतः यदि प्रतिभू की सहमति के बिना ऋणी एवं ऋणदाता ने अनुबन्ध की शर्तों में परिवर्तन कर दिया है तो ऐसा करते ही भावी व्यवहारों के लिए प्रतिभू मुक्त माना जायेगा । यदि किया गया परिवर्तन प्रतिभू के हित में हो तो प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त नहीं होगा। ***(अनिरूपन बनाम टॉमको बैंक लि0, 1963)***

5. **मूल ऋणी को दायित्व से मुक्त करना** (ठल तमसमेंम वत कपेबींतहम व िच्तपदबपचंस कमइजवत) **धारा 134** – धारा 128 के अनुसार प्रतिभू का दायित्व मूल ऋणी के साथ सह–विस्तृत होता है, अतः प्रतिभू की सहमति के बिना ऋणदाता ने मूल ऋणी को दायित्व से मुक्त कर दिया है तो प्रतिभू भी अपने दायित्व से मुक्त माना जायेगा।यहाँ तक कि यदि ऋणदाता ने कोई ऐसी भूल या कार्य किया हो जिससे मूल ऋणी का दायित्व समाप्त हो गया हो तो प्रतिभू भी अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा।

**उदाहरण :**

पी, सी के लिए एक निर्धारित समायावधि में फर्नीचर बनाने के लिए इस शर्त के साथ सहमत हुआ कि सी, फर्नीचर के लिए लकड़ी उपलब्ध करायेगा । एस ने उचित तरीके से निष्पादन की गारण्टी दी । सी लकड़ी उपलब्ध न कराता है या न कराने की भूल करता है तो पी के साथ–साथ एस भी अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा ।

6. **मूल ऋणी के साथ समझौता** (By arrangement with Principal debtor) (**धारा 135**) – धारा 135 के अनुसार निम्नांकित तीन तरीके से प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो सकता है :–

   1. **मूल ऋणी के साथ समझौता** (Composition or Compromise)–

      प्रतिभू की सहमति के बिना मूल ऋणी एवं ऋणदाता के साथ किसी भी प्रकार का समझौता होते ही प्रतिभू अनिवार्यतः अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा ।

   2. **अवधि बढ़ाना** (Promise to give time) – यदि प्रतिभू की सहमति के बिना ऋणदाता तथा मूल ऋणी द्वारा भुगतान की अवधि बढ़ा देता है तो प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है ।

   3. **वाद प्रस्तुत न करने का वचन देना** (Promise not to sue) – यदि प्रतिभू की सहमति के बिना ऋणदाता, मूल ऋणी पर वाद प्रस्तुत न करने का वचन देता है तो प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है ।

   **परन्तु निम्नांकित दशाओं में प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त नहीं होगा –**

   1. यदि समय बढ़ाने का समझौता मूल ऋणी के साथ न करके किसी अन्य पक्षकार के साथ किया हो **(धारा 136)**
   2. मूल ऋणी के प्रति कार्यवाही करने से रूके रहना । **(धारा 137)**
   3. किसी सह प्रतिभू को दायित्व से मुक्त करना । **(धारा 138)**

      ऐसा मुक्त सह–प्रतिभू अन्य प्रतिभुओं के प्रति यथावत उत्तरदायी बना रहेगा।

7. **कोई ऐसा कार्य या भूल जिसके परिणामस्वरूप प्रतिभू के अधिकार में कमी आ गई हो** (By act or omission impairing surety's eventual remedy) (**धारा 139**) – यदि ऋणदाता ने कोई ऐसा कार्य या भूल की हो जिसके परिणामस्वरूप प्रतिभू के उपचार में कमी आ गई हो तो भी प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा।

**उदाहरण :–**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

एस ने पी की विश्वसनीयता गारण्टी ली जिसे सी के यहां रोकड़पाल के रूप में कार्य करना है । शर्त यह थी कि सी, पी के कार्यों की मासिक जाँच करता रहेगा । कुछ समय तक जाँच का कार्य किया और उसके पश्चात् यह प्रक्रिया बन्द कर दी गई । पी ने अवसर का फायदा उठाकर गबन कर दिया । सी की लापरवाही या भूल के कारण एस अपने दायित्व से मुक्त हो गया ।

8. **जमानत के गुम हो जाने पर** (By loss of security) **(धारा 141)** – यदि ऋणदाता, ऋणी द्वारा जमानत के रूप में रखी हुई वस्तु खो देता है या उसे जुदा कर देता है तो जमानत के रूप में रखी हुई वस्तु के मूल्य की सीमा तक प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त माना जायेगा ।

9. **मिथ्यावर्णन के द्वारा गारण्टी प्राप्त करने** (Guaratee obtained by misrepresentation) **(धारा 142)** – यदि ऋणदाता ने मिथ्यावर्णन द्वारा गारण्टी प्राप्त की है तो ऐसी गारण्टी निष्प्रभावी मानी जायेगी, अर्थात् प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो जायेगा ।

10. **छिपाव द्वारा गारण्टी प्राप्त करने पर** (Guaratee obtained by concealment) **(धारा 143)** – यदि ऋणदाता ने जान बूझकर, तथ्यों का सक्रिय छिपाव करते हुए गारण्टी प्राप्त की है तो ऐसी गारण्टी भी प्रतिभू की इच्छा पर व्यर्थनीय मानी जायेगी, अर्थात् प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो सकता है ।

11. **सह प्रतिभू द्वारा मना करने पर** (By refusal of co-surety) **(धारा 144)** – यदि गारण्टी इस शर्त के साथ कि प्रतिभू तभी उत्तरदायी माना जायेगा जब अन्य प्रतिभू उसके साथ गारण्टी दे, दी गई है तो ऐसी गारण्टी उस समय व्यर्थ हो जायेगी जब अन्य प्रतिभू गारण्टी न दे ।

12. **जब गारण्टी जन–नीति के विरूद्ध हो** (When guarantee is against public policy) – कोई भी ऐसा कार्य या ठहराव जो जननीति या लोकनीति के विरूद्ध हो, व्यर्थ माना जाता है । इसी नियम के तहत जन–नीति के विरूद्ध कार्यों के प्रति दी गई गारण्टी भी व्यर्थ मानी जायेगी ।

13. **प्रतिभू के पागल होने पर** (By lunacy of the surety) – यदि प्रतिभू के सोचने समझने की शक्ति समाप्त हो जाती है तो ऐसा प्रतिभू भी भावी व्यवहारों के लिए अपने दायित्व से मुक्त माना जायेगा ।

## (G) प्रतिभू के अधिकार (Right of Surety)

प्रतिभू को निम्नांकित पक्षकारों के विरूद्ध अधिकार प्राप्त होंगे :– (Rights of Surety )

### (a) ऋणदाता के प्रति (Rights against creditor ) अधिकार

1. **प्रतिभूति प्राप्त करने का अधिकार (धारा 141) –** प्रतिभू द्वारा अपने वचन का निष्पादन करते ही प्रतिभू ऋणदाता का स्थान ग्रहण कर लेता है, अर्थात ऋणदाता के पास विद्यमान प्रतिभूति पर प्रतिभू का अधिकार हो जाता है।

2. **धटोतरी का अधिकार** (Right to set off ) – यदि ऋणी ने अपने दायित्व को सीमित कर दिया है तो प्रतिभू का दायित्व भी घटा हुआ ही होगा, अर्थात यदि मूल ऋणी ने कुछ राशि का भुगतान किया है तो उस राशि का समायोजन ऋणदाता द्वारा प्रदत राशि में से किया जा सकता है।

3. **सेवा से हटाने का अधिकार –** यदि प्रतिभू ने विश्वसनीयता गारण्टी ली है और कर्मचारी ने अनुबन्ध की शर्तो के विपरीत कार्य किया है अर्थात उसकी अविश्वसनियता सिद्व हो जाती है तो प्रतिभू नियोक्ता से कर्मचारी को हटाने का अधिकार रखता है ।

4. **समतुल्य का अधिकार** (Right of equities) – प्रतिभू द्वारा वचन का निष्पादन करने पर उसके ऋणदाता के समतुल्य अधिकार प्राप्त हो जायेंगे जो न केवल मूल ऋणी के प्रति लागू होंगे बल्कि अन्य पक्षकारों के विरूद्ध भी लागू होंगे।

### (b) मूल ऋणी के विरूद्ध अधिकार (Rights against principal debtor)

1. **स्थानग्रहण का अधिकार (धारा 140)** – प्रतिभू द्वारा दायित्व का निर्वाह करते ही प्रतिभू ऋणदाता का स्थानग्रहण कर लेता है । दूसरे शब्दों में प्रतिभू को वे समस्त अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जो मूलऋणी के प्रति ऋणदाता को प्राप्त होते हैं। अब प्रतिभू ऋणदाता के रूप में जाना जाता है ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. **हानिरक्षा का अधिकार (धारा 145) –** प्रतिभू ने व्यय, ब्याज या अन्य रूप में जो धनराशि ऋणदाता को चुकाई है, वे समस्त धन राशि मूल ऋणी से प्राप्त कर सकता है क्योंकि मूलऋणी एवं प्रतिभू के बीच हानिरक्षा का अनुबन्ध होता है ।

3. **दायित्व से मुक्त होने का अधिकार** (Right to exonerate from liability) – ऋणी द्वारा प्राप्त ऋण बकाया हो जाता है तो प्रतिभू को यह अधिकार है कि मूल ऋणी को भुगतान के लिए बाध्य करें ताकि प्रतिभू अपने दायित्व से मुक्त हो सके ।

(c) **सह–प्रतिभुओं के विरूद्ध अधिकार** (Rights against co-sureties) –

1. **समान दायित्व वाले सह–प्रतिभुओं की दशा में (धारा 146)–** यदि कोई विपरीत शर्त न हो तो मूल ऋणी द्वारा त्रुटि करने पर सभी सह–प्रतिभू, बराबर–बराबर राशि के लिए उत्तरदायी होंगे ।

**उदाहरण :–**

एस 1, एस 2 एवं एस3 समान दायित्व के लिए सहमत होते हैं यदि मूल ऋणी 6000/– रूपये के ऋण की अदायगी में त्रूटि करता है तो प्रत्येक सह–प्रतिभू 2000/– रूपये की राशि के लिए उत्तरदायी होंगे।

2. **भिन्न–भिन्न दायित्व वाल सह–प्रतिभुओं की दशा में (धारा 147)** – ऐसी स्थिति में प्रत्येक सह–प्रतिभू, दायित्व की सीमा तक बराबर–बराबर राशि के लिए उत्तरदायी होंगे ।

**उदाहरण :–**

यदि एस1, एस2 एवं एस3 क्रमशः 1000, 2000 एवं 3000 की राशि के लिए गारण्टी देते हैं । यदि मूल ऋणी ने 3000/– रूपये की राशि का भुगतान नहीं किया है तो प्रत्येक सह–प्रतिभू 1000/– रूपये की राशि के लिए उत्तरदायी होंगे । वहीं दूसरी ओर मूल ऋणी ने 4000/– रूपये की राशि का भुगतान नहीं किया है तो एस1, एस2 एवं एस3 क्रमशः 1000 (दायित्व की सीमा), 1500 एवं 1500/– रूपये के लिए उत्तरदायी होंगे ।

3. **किसी सह–प्रतिभू को मुक्त करना –** यदि ऋण दाता ने किसी सहप्रतिभू को दायित्व से मुक्त कर दिया है तो ऐसा मुक्त सह–प्रतिभू, अन्य प्रतिभुओं के प्रति यथावत् उत्तरदायी रहेगा अर्थात् अन्य सह–प्रतिभुओं को यह अधिकार है कि मुक्त सह–प्रतिभू को भुगतान करने के लिए बाध्य करें ।

**बौध प्रश्न (ज्मेज फनमेजपवदे)**

1. गारण्टी से आपका क्या अभिप्राय है ? उदाहरण सहित स्पष्ट करें । (5 अंक)
2. 'प्रतिभू का दायित्व मूल ऋणी के साथ सह–विस्तृत होता है', विवेचना कीजिए । ( 4 अंक )
3. चालू गारण्टी क्या है ? यह विशिष्ट गारण्टी से किसी प्रकार भिन्न है ? (5 अंक)
4. 'मूल ऋणी के प्रति स्थानग्रहण का अधिकार एक महत्वपूर्ण अधिकार है'। समीक्षा कीजिए। (5 अंक)
5. 'सह–प्रतिभुओं के मध्य भार का समान वितरण होता है', व्याख्या कीजिए। (5 अंक)
6. गारण्टी अनुबन्ध क्या है? हानिरक्षा अनुबन्ध एवं गारण्टी अनुबन्ध में अन्तर स्पष्ट कीजिये। (15 अंक)
7. प्रतिभू किस प्रकार अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है ? (15 अंक)
8. प्रतिभू के विभिन्न अधिकारों की विवेचना कीजिये । (15 अंक)
9. गारण्टी अनुबन्ध क्या है? प्रतिभू के दायित्व की प्रकृति एवं सीमा का विवेचन कीजिये। (15 अंक)

*******

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

# खण्ड–ब–3 निक्षेप (Bailment)

## (A) प्रस्तावना (Introduction)

Bailment शब्द फ्रेंच भाषा के शब्द ठंपसपम से लिया गया है जिसका शाब्दिक अर्थ है –सुपुर्द करना। समान्य अर्थ में, निक्षेप किसी विशेष प्रयोजन के लिए एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को वस्तु सुपुर्द करना है ।

धारा 148 के अनुसार, ''जब कोई पक्षकार किसी दूसरे पक्षकार को विशेष उद्देश्य से इस अनुबन्ध पर माल सुपुर्द करता है कि वह उद्देश्य पूरा होने पर माल पुनः लौटा दिया जायेगा अथवा उसके आदेशानुसार माल की व्यवस्था कर दी जायेगी तो माल की ऐसी सुपुर्दगी को 'निक्षेप' कहते हैं ।

जो व्यक्ति माल सुपुर्द करता है, उसे 'निक्षेपी' (Bailor) एवं जिस व्यक्ति को माल सुपुर्द किया जाता है उसे निक्षेपगृहीता (Bailee) कहा जाता है ।

व्यावहारिक जीवन में अनेकानेक कारणों से माल की सुपुर्दगी दी जाती है, जैसे– घड़ी या साईकिल सुपुर्द करना, वाहन मरम्मत के लिए, कपड़े सिलाई के लिए या धुलाई के लिए सुपुर्द करना, गाय सुरक्षा के लिए, सामान सुरक्षा कक्ष में, सोना स्वर्णकार को सुपुर्द करना इत्यादि। उक्त सभी दशाओं में निक्षेपी एवं निक्षेपगृहीता के बीच में जो सम्बन्ध स्थापित होता है, उसे निक्षेप कहते हैं। माल की सुपुर्दगी भौतिक रूप में भी हो सकती है। यदि माल पहले से ही किसी व्यक्ति के अधिकार में हो और तदुपरान्त उस माल निक्षेपगृहीता के रूप में स्वीकार कर ले तो इस रचनात्मक सुपुर्दगी (Constructive delivery) कहा जाता है। सांकेतिक (Symbolic) रूप में भी माल की सुपुर्दगी हो सकती है, जैसे गोदाम की चाबी सुपुर्द करना ।

### निक्षेप के आवश्यक तत्व (Essential elements of Bailment)

1. **अधिकार का हस्तान्तरण** (Transfer of possession) – निक्षेप की सर्वप्रथम विशेषता है कि माल के अधिकार का हस्तान्तरण किया जाता है । इसके बिना निक्षेप सम्भव ही नहीं है ।यहा यह भी उल्लेखनीय है कि माल का अधिकार होना और अपने कब्जे में रखना, दोनों भिन्न–भिन्न है । यदि नौकर या मेहमान क्रमशः मालिक या मेजबान की वस्तुओं का उपयोग करते हैं तो वे निक्षेपगृहीता नहीं माने जाते हैं । अधिकार का हस्तान्तरण वास्तविक या गर्भित हो सकता है ।

   **उदाहरण :–**

   एक व्यक्ति खाना खाने के लिए होटल में प्रविष्ट होता है । व्यक्ति, जैसे की आसन्न ग्रहण करता है, होटल का बैरा ॅपजमत) सम्बन्धित व्यक्ति का कोट उतारकर पीछे कुर्सी पर लगा देता है । खाना खाने के पश्चात् ग्राहक जैसे ही उठता है कोट गायब मिलता है। ग्राहक, होटल मालिक के विरूद्ध वाद प्रस्तुत करता है। न्यायालय होटल मालिक को दोषी मानते हुए ग्राहक की क्षतिपूर्ति का आदेश करता है ।

2. **माल की सुपुर्दगी** (A delivery of goods) – निक्षेप अनुबन्ध के लिए माल की सुपुर्दगी एक अनिवार्य शर्त है। माल की सुपुर्दगी निम्नांकित तरीके से दी जा सकती है :–

   1. **वास्तविक सुपुर्दगी –** जब भौतिक रूप से माल की सुपुर्दगी दी जाती है ।
   2. **रचनात्मक सुपुर्दगी –** जब माल पहले से ही निक्षेपगृहीता के पास हो । जैसे – विक्रय के पश्चात् माल विक्रेता के पास पड़ा रहना ।
   3. **सांकेतिक सुपुर्दगी –** ऐसी सुपुर्दगी जिसमें निक्षेपगृहीता माल को अपने अधिकार में करने की योग्यता या क्षमता हो जाए । जैसे – गोदाम की चाबी सुपुर्द करना, मोटर साईकिल की चाबी देना।

3. **सुपुर्दगी किसी अनुबंध पर आधारित होनी चाहिए –** निक्षेप का अनुबन्ध, वस्तुतः निक्षेपी एवं निक्षेपगृहीता के मध्य ठहराव का परिणाम है । यदि अनुबन्ध से भिन्न रूप में सुपुर्दगी हुई हो तो निक्षेप का निर्माण नहीं हो सकता ।

   **उदाहरण :–**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वादी के आभूषण गुम हो गये, जिन्हें बाद में पुलिस द्वारा बरामद कर लिये गये । तत्पश्चात् पुलिस अभिरक्षा में पुनः आभूषण चोरी हो गये । वादी ने पुलिस विभाग पर वाद प्रस्तुत किया । न्यायालय ने निर्णय दिया कि पुलिस क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं है क्योंकि वादी एवं पुलिस विभाग के बीच कोई अनुबन्ध नहीं था । यद्यपि बहुत से विचारक इस तर्क से सहमत नहीं है ।

4. **माल पुनः लौटाना** – निर्दिष्ट समयावधि पूरी होने अथवा निर्दिष्ट उद्देश्य पूरा होने के पश्चात् माल पुनः सुपुर्द करने वाले को लौटा दिया जाता है अथवा निर्देशानुसार व्यवस्था कर दी जाती है । माल उसी रूप में या भिन्न रूप में भी लौटाया जा सकता है । दर्जी को सिलाई के लिए दिये गये कपड़े स्वाभाविक रूप से भिन्न रूप में ही लौटाये जायेंगे ।

5. **स्वामित्व का हस्तान्तरण नहीं** – निक्षेप में स्वामित्व निक्षेपी के पास ही रहता है, केवल अधिकार का हस्तान्तरण होता है इसी कारण निक्षपी माल को पुन' प्राप्त कर सकता है ।

6. **केवल चल वस्तुओं का निक्षेप** – वाद योग्य दावे एवं मुद्रा को छोड़कर समस्त प्रकार की चल वस्तुएँ, निक्षेप की विषयवस्तु मानी जाती है । बैंक में जमा धन निक्षेप नहीं माना जाता है, परन्तु लॉकर में सुरक्षार्थ सुपुर्द किये गये आभूषण निक्षेप की परिधि में आते हैं ।

7. **केवल विद्यमान माल का निक्षेप** – निक्षेप केवल उसी माल का हो सकता है जो भौतिक रूप में विद्यमान हो। भावी या सम्भावित माल का निक्षेप नहीं हो सकता ।

8. **स्पष्ट या गर्भित** – जब माल की सुपुर्दगी एवं उसका उद्देश्य स्पष्ट हो तो इसे स्पष्ट निक्षेप कहा जाता है। जब निक्षेप की उत्पत्ति पक्षकारों के मध्य आचरण द्वारा हो तो इस गर्भित निक्षेप कहा जाता हे । यदाकदा निक्षेप की उत्पत्ति राजनियम की क्रियाशीलता के द्वारा भी हो सकती है, जैसे खोई हुई वस्तु प्राप्त करने वाला।

9. **निक्षेप, मूलतः हानिरक्षा का अनुबन्ध नहीं** – यदि निक्षेपगृहीता ने उचित योग्यता चातुर्य एवं देखभाल के साथ कार्य किया है, जैसा कि समान परिस्थितियों में एक विवेकशील व्यक्ति स्वयं के हितों की रक्षा के लिए करता है तो हुई क्षति के लिए वह उत्तरदायी नहीं होगा ।

**उदाहरण :–**

एक्स ने अपने कपड़े सिलाई के लिए वाई दर्जी को दिये । वाई दुकान को खुला छोड़कर अन्यत्र चला गया जिसके परिणामस्वरूप कपड़े चोरी चले गये । वाई को लापरवाही के लिए उत्तरदायी माना क्योंकि इस प्रकरण में उचित देखभाल का अभाव था ।

## (B) निक्षेप के प्रकार
## (Classification of Bailments)

निक्षेप का वर्गीकरण या विभाजन निम्नांकित आधारों पर किया जा सकता है –

(a) **हितों के आधार पर** (वद जीम इंपे वि पदजमतमेज) –

1. **केवल निक्षेपी के हितों के लिए निक्षेप** – इसमें माल की सुपुर्दगी, बिना प्रतिफल के, सुरक्षार्थ की जाती है ।
2. **केवल निक्षेपगृहीता के हितों के लिए निक्षेप** – इसमें माल की सुपुर्दगी बिना प्रतिफल के, केवल निक्षेपगृहीता के प्रयोजनार्थ की जाती है ।
3. **पारस्परिक हितों के लिए निक्षेप** – इसमें प्रतिफल के बदले एवं निक्षेपगृहीता के प्रयोजनार्थ माल की सुपुर्दगी दी जाती है ।

(b) **प्रतिफल के आधार पर** (on the basis of consideration) –

1. **निःशुल्क निक्षेप** (Gratuitous Bailment ) – जब माल की सुपुर्दगी बिना प्रतिफल के की जाती है तो इसे निःशुल्क निक्षेप कहते हैं जैसे – मित्र को पुस्तक पढ़ने के लिए देना ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. **सःशुल्क निक्षेप** (Non-gratuitous Bailment ) – जब माल की सुपुर्दगी, प्रतिफल या शुल्क के बदले की जाती है तो इसे सःशुल्क निक्षेप कहते हैं जैसे – साईकिल की दुकान में दुकानदार द्वारा साईकिल किराये पर देना ।

(ब) **उद्देश्यों के आधार पर** (on the basis of objectives) –

निक्षेप, अनेकों उद्देश्यों पर किया जा सकता है जिसमें मुख्य उद्देश्य इस प्रकार है –

(i) मरम्मत के लिए निक्षेप

(ii) सुरक्षा हेतु निक्षेप

(iii) माल प्रेषित करने हेतु निक्षेप

(iv) किराये हेतु निक्षेप

(v) गिरवी हेतु निक्षेप

## (C) निक्षेपी एवं निक्षेपगृहीता के अधिकार एवं कर्तव्य (Duties and Rights of Bailor and Bailee)

### (a) निक्षेपी के कर्त्तव्य (Duties of Bailor)

माल की सुपुर्दगी देते समय निक्षेपी को निम्नांकित कर्त्तव्यों की अनुपालना करनी होगी ।

1. **माल सुपुर्द करना** (To deliver goods) **(धारा 149)** –

निक्षेप की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है माल का सुपुर्द करना । सुपुर्दगी वास्तविक, रचनात्मक एवं सांकेतिक हो सकती है ।

**उदाहरण :–**

एक बुढ़िया पुराने गहने लेकर स्वर्णकार के पास जाती और प्रतिदिन अर्द्ध–निर्मित आभूषण स्वयं की संदूक में डालकर ताला लगा देती । सन्दूक स्वर्णकार के पास ही रहता, परन्तु चॉबी बुढ़िया स्वयं अपने पास रखती । दुर्भाग्य से एक रात स्वर्णकार के यहां चोरी हो गई जिसमें बुढ़िया के आभूषण भी चले गये । मामला जब न्यायालय में गया तो निर्णय हुआ कि राजनियम की दृष्टि से माल की सुपुर्दगी हुई नहीं। ***(कालिया पेरूमल पिल्लई बनाम विशाल लक्ष्मी, एआईआर 1938, मद्रास 32)***

2. **माल के दोषों को प्रकट करना** (To disclose faults in goods bailed) **(धारा 150)** –

इस दृष्टि से निक्षेपो को निम्नांकित दो भागों में बांटा जा सकता है –

(a) निःशुल्क निक्षेपी (Gratuitous bailor), और

(b) सःशुल्क निक्षेपी (Non-gratuitous bailor) –

प्रथम स्थिति में निक्षेपी का कर्त्तव्य उन दोषों को प्रकट करना है जिनके संबंध में निक्षेपी को जानकारी है और वे जानकारी असाधारण जोखिम वाली हो। ऐसी जानकारी न देने पर निक्षेपी, निक्षेपगृहीता को हुई हानि की क्षतिपूर्ति करनी होगी ।

द्वितीय स्थिति में निक्षेपी, निक्षेपित माल के समस्त दोषों को प्रकट करने के लिए उत्तरदायी है । ऐसा न होने पर हुई क्षति के लिए निक्षेपी उत्तरदायी माना जायेगा ।

3. **साधारण व्ययों का भुगतान करना** (To bear ordinary expenses) **(धारा 158)** – निक्षेप की अवधि में निक्षेपित माल पर साधारण तरीके से जो भी व्यय किया जायेगा, उस व्यय की भरपाई निक्षेपी को करनी होगी ।

**उदाहरण :–**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ए ने अपनी गाय बी के यहां सुरक्षार्थ छोड़ दी जब वह घूमने के लिए गया था । बी द्वारा गाय को चराने–पिलाने के लिए 1000/– रूप्ये व्यय किये । यह राशि ए द्वारा वहन करनी होगी ।

4. **असाधारण व्ययों का भुगतान करना** (To bear extra-ordinary expenses) **(धारा 158)** – निक्षेपी केवल साधारण व्ययों के लिए ही नहीं बल्कि असाधारण व्ययों के लिए भी उत्तरदायी होगा ।

**उदाहरण :–**

यदि निक्षेपित गाय दुर्घटना में घायल हो गई जिसके बचाव के लिए निक्षेपगृहीता ने 2000/– रूपये दवाईयों पर व्यय किये । इस राशि का भुगतान भी निक्षेपी को करना होगा ।

**5. निर्धारित अवधि से पूर्व निःशुल्क निक्षेप को समाप्त करने पर क्षतिपूर्ति** (To indemnify bailee for loss incase of pre-mature termination of gratuitous bailment) **(धारा 159)** – निक्षेपी का कर्त्तव्य है कि वह निःशुल्क निक्षेप को अपनी इच्छानुसार कभी भी समाप्त कर सकता है, परन्तु ऐसी समाप्ति से निक्षेपगृहीता को हुई हानि, उसके द्वारा प्राप्त लाभ से अधिक हो तो अधिक्य का भार निक्षेपी को वहन करना होगा ।

6. **माल वापिस प्राप्त करना** (To receive back the bailed goods) **(धारा 160)** – निक्षेपी का यह कर्त्तव्य है कि निर्दिष्ट अवधि पूरा होने या निर्धारित उद्देश्य पूरा होने के पश्चात् माल वापिस प्राप्त करें। ऐसा न करने पर निक्षेपगृहीता द्वारा अपनी अभिरक्षा में निक्षेपित माल पर जो भी व्यय करेगा, उसका भुगतान निक्षेपी को करना होगा ।

7. **दूषित स्वत्व की दशा मे क्षतिपूर्ति** (To indemnify in case of defective title) **(धारा 164)** – यदि निक्षेपी ने ऐसे माल का निक्षेप किया है जिस पर उसका दूषित स्वामित्व हो अथवा निक्षेप करना अनाधिकृत या उसके अधिकारों के बाहर हो जिसके परिणामस्वरूप निक्षेपगृहीता को कोई क्षति हुई है तो उसकी भरपाई निक्षेपी को करनी होगी ।

## (b) निक्षेपी के अधिकार (Rights of Bailor)

निक्षेपी केवल निक्षेपगृहीता के प्रति उत्तरदायी ही नहीं होता है बल्कि निक्षेप के परिणामस्वरूप अनेकों अधिकारों की उत्पत्ति भी होती है जिनका उल्लेख इस प्रकार है –

1. **निक्षेपगृहीता की उपेक्षा से हुई हानि की क्षतिपूर्ति करवाना** (To be indemnified incase of bailee's negligency) **(धारा 152)** – निक्षेपगृहीता का यह कर्त्तव्य है कि निक्षेपित माल की उचित देखभाल करें। उचित देखभाल से अभिप्राय ऐसे रख–रखाव से है जैसा कि एक विवेकशील व्यक्ति, समान परिस्थितियों में, स्वयं के हितों की रक्षा के लिए करता है। ऐसा न करने पर हुई हानि के लिए निक्षेपगृहीता उत्तरदायी होगा ।
2. **निक्षेप अनुबन्ध को समाप्त करना** (Avoidance of contract) **(धारा 153) –** यदि निक्षेपगृहीता ने कोई ऐसा कार्य किया हो जो अनुबन्ध की शर्तों के असंगत हो तो निक्षेपी निक्षेप अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है ।
3. **अनुबन्ध के विपरीत कार्य करने पर हुई हानि की पूर्ति करवाना** (To be indeminified incase of act against contract) **(धारा 154)** – निक्षेपगृहीता का यह कर्त्तव्य है कि अनुबन्ध की शर्तानुसार निक्षेपित माल का उपयोग करें। अनुबन्ध की शर्तों को उल्लंघन करते हुए उपयोग करने पर निक्षेपी, हुई हानि के लिए निक्षेपगृहीता को बाध्य कर सकता है।

**उदाहरण :–**

ए, घुड़सवारी हेतु बी से घोड़ा लेता है । तदुपरांत बी ने सवारी हेतु घोड़े का उपयोग किया और घोड़ा क्षतिग्रस्त (Injured) हो गया। बी क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होगा ।

4. **निक्षेपित माल का पृथक करवाना** (To separate the bailed goods) **(धारा 155, 156 एवं 157)** – निक्षेपगृहीता का यह कर्त्तव्य है कि निक्षेपित माल को अपने माल में न मिलाएं । यदि निक्षेपी की सहमति से निक्षेपित माल को अपने माल में मिलाया है तो कोई समस्या नहीं । यदि निक्षेपी की बिना सहमति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के मिलाया है परन्तु निक्षेपित माल पृथक करने योग्य है तो माल का पृथक करना होगा और पृथक करने का सम्पूर्ण व्यय निक्षेपगृहीता को वहन करना होगा । यदि मिलाया गया माल पृथक करने योग्य नहीं है तो निक्षेपी निक्षेपगृहीता को सम्पूर्ण क्षति के लिए उत्तरदायी ठहरा सकता है ।

5. **निःशुल्क निक्षेप को समाप्त करना** (To terminate the gratuitous bailment) **(धारा 159)** – यदि निःशुल्क निक्षेप है तो निक्षेपी निक्षेप अनुबन्ध को कभी भी समाप्त कर सकता है, चाहे निक्षेप किसी निश्चित समायावधि या निश्चित उद्देश्य के लिए किया गया हो ।

6. **माल वापिस प्राप्त करने का अधिकार** (Right to return the goods) **(धारा 160)** – निर्दिष्ट समयावधि :पूरी होने या निर्धारित उद्देश्य पूरा होने के पश्चात् निक्षेपी निक्षेपित माल को वापिस प्राप्त कर सकता है।

7. **माल न लौटाने पर हुई हानि की पूर्ति करवाना** (To be indemnified when goods are not returned ) **(धारा 161)** – निर्दिष्ट उद्देश्य या निर्धारित अवधि पूरी होने के पश्चात् भी निक्षेपगृहीता अनावश्यक, माल को रोके रखता है तो हुई हानि की पूर्ति करनी होगी ।

8. **वृद्धि या लाभ को प्राप्त करना** (To recover any increase or profit) **(धारा 163)** – निक्षेप के दौरान यदि निक्षेपित माल में कोई वृद्धि या लाभ हुआ है तो निक्षेपी उस वृद्धि एवं लाभ को प्राप्त करने का अधिकार रखता है।

## (c) निक्षेपगृहीता के कर्त्तव्य (Duties of Bailee)

जब निक्षेपी निक्षेप के दौरान माल की सुपुर्दगी निक्षेपगृहीता को देता है तो निक्षेपगृहीता को निम्नांकित कर्त्तव्यों की अनुपालना करनी पड़ती है :–

1. **माल की उचित देखभाल करना** (To look after the bailed goods) **(धारा 151)** चाहे निःशुल्क निक्षेप हो या सःशुल्क, निक्षेपगृहीता का यह कर्त्तव्य बनता है कि माल की उचित देखभाल करें, जैसा कि एक विवेकशील व्यक्ति, समान परिस्थितियो में, अपने स्वयं के हितों की रक्षा के लिये करता है।

2. **देखभाल की उपेक्षा में हुई हानि की पूर्ति करना** (To indemnify if voilation of care) **(धारा 152)** – उचित देखभाल के अभाव में हुई हानि की पूर्ति निक्षेपी को करनी होगी।

3. **अनुबन्ध के विपरीत कार्य न करना** (Not to work against the contract) **(धारा 153)** – यह निक्षेपगृहीता का कर्त्तव्य है कि अनुबन्ध की शर्तानुसार कार्य करें। शर्तों के विपरीत कार्य करने पर अनुबन्ध समाप्ति का तुरन्त अधिकार प्राप्त हो जाता है।

4. **माल का अनाधिकृत उपयोग न करना** (Avoid unauthorised use of bailed goods) **(धारा 154)** यदि कोई विपरित शर्त न हो तो निक्षेपगृहीता उन्हीं उद्देश्यों के लिये माल का उपयोग कर सकता है जिनका उल्लेख अनुबन्ध में किया गया हैं। अनाधिकृत उपयोग करने पर न केवल क्षतिपूर्ति के लिये उत्तरदायी होगा बल्कि निक्षेपी को अनुबन्ध समाप्त करने का अधिकार भी प्राप्त हो जायेगा।

5. **निक्षेपित माल को अपने माल में न मिलाना** (Not to mix the bailed goods) इसके निम्नांकित तीन प्रभाव है :–

   **(अ) निक्षेपी की सहमति से मिलाना** (Mixing with the consent of baior) **(धारा 155)** – कार्य दोनों पक्षकारों की सहमति से हुआ है, अतः कोई दायित्व उत्पन्न नहीं होगा।

   **(ब) बिना सहमति के मिलाना, परन्तु माल पृथक करने योग्य** (Mixing without consent but goods can be separated) **(धारा 156)** – निक्षेपी द्वारा निक्षेपित माल को अपने माल से पृथक करना होगा और पृथक करने का सम्पूर्ण व्यय निक्षेपगृहीता को वहन करना होगा।

   **(स) मिलाया गया माल पृथक करने योग्य न हो** (Mixing goods cannot be separated) **(धारा 157)** – निक्षेपी की बिना सहमति के मिलाया गया माल पृथक करने योग्य नहीं है तो सम्पूर्ण क्षति के लिए निक्षेपगृहीता उत्तरदायी होगा।

6. **माल वापिस लौटाना** (To return goods) **(धारा 160)** निर्दिष्ट उद्देश्य पूरा होने या निर्धारित अवधि पूरी होने के पश्चात निक्षेपगृहीता का यह कर्त्तव्य है कि माल वापिस निक्षेपी को लौटाएँ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. **माल न लौटाने पर क्षतिपूर्ति करना** (Indemnify, when not return) **(धारा 161)** – अनावश्यक या अनाधिकृत माल को रोके रखने पर हुई हानि की पूर्ति निक्षेपी को करनी होगी।

8. **निःशुल्क निक्षेप की दशा में माल लौटाना** (To return the goods lent gratuitously) **(धारा – 159)** – निक्षेपी निःशुल्क निक्षेप को कभी भी समाप्त कर सकता है। ऐसी स्थिति में निक्षेपी द्वारा मांग करते ही माल वापिस लौटाना होगा।

9. **वृद्धि या लाभ को लौटाना** (Duty to return Increase or Profit) **(धारा – 163)** – निक्षेप अवधि में निक्षेपित माल के सम्बन्ध में जो भी वृद्धि या लाभ हुआ है, उसे निक्षेपी को लौटाना होगा।

**उदाहरण –**

अ ने अपनी गाय सुरक्षार्थ ब के पास छोड़ी। इस अवधि में गाय के बछड़ा हो गया। निक्षेपगृहीता का यह कर्तव्य है कि गाय के साथ–साथ बछड़े को भी लौटाएं।

10. **विपरित स्वामित्व न जमाना** (Duty not to set up Contrary ownership) - यदि तृतीय पक्षकार ने निक्षेपी की तुलना में श्रेष्ठ स्वामित्व सिद्ध करने का प्रयास किया है तो भी निक्षेपगृहीता तृतीय पक्षकार की मांग को ठुकराते हुए, माल निक्षेपी को सुपुर्द कर सकता है।

## (d) - निक्षेपगृहीता के अधिकार (Right of Bailee)

निक्षेपी के कर्त्तव्य ही अप्रत्यक्ष रूप से निक्षेपगृहीता के अधिकार है जिनका उल्लेख इस प्रकार है –

1. **दोषों को प्रकट न करने पर हुई हानि की पूर्ति कराना** (Right to compensation against the loss arising due to undisclosed faults) **(धारा 150)** – निक्षेपी का यह यह कर्त्तव्य है कि निःशुल्क निक्षेप की दशा में ज्ञात दोषों एवं सःशुल्क निक्षेप की दशा में प्रत्येक दोष के सम्बन्ध में निक्षेपगृहीता को अवगत कराना होगा। ऐसा न करने पर निक्षेपगृहीता हुई हानि की राशि निक्षेपी से प्राप्त कर सकता है।

2. **साधारण व्यय की राशि प्राप्त करना** (Right to receive ordinary expenses) **(धारा 158)** – निक्षेपी अनुबन्ध के साधारण व्यवहार में यदि निक्षेपित वस्तु पर कोई व्यय किया है तो व्यय की राशि निक्षेपी से प्राप्त कर सकता है।

3. **असाधारण व्यय की राशि प्राप्त करना** (Right to receive extra-ordinary expenses) **(धारा 158)** – निक्षेपगृहीता केवल साधारण व्यय ही नहीं बल्कि यदि निक्षेपित वस्तु पर असाधारण व्यय किया है तो वह राशि भी निक्षेपी से प्राप्त कर सकता है।

4. **निःशुल्क निक्षेप की समाप्ति पर हुई हानि की पूर्ति करवाना** (Right to indemnified incase of the termination of gratituitous bailment) **(धारा 159)** – यद्यपि निक्षेपी निःशुल्क निक्षेप को कभी भी समाप्त कर सकता है परन्तु समाप्ति के कारण निक्षेपगृहीता को कोई क्षति हुई है तो निक्षेपी से पूर्ति करवा सकता है।

5. **अनाधिकृत निक्षेप की दशा में हुई हानि की पूर्ति करवाना** (Right to indemnified for un-authorised bailed **(धारा 164)** – यदि निक्षेपी को निक्षेपित माल पर दुषित स्वामित्व है या अनाधिकृत निक्षेप किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप निक्षेपगृहीता को कोई क्षति हुई है, तो क्षतिपूर्ति की राशि प्राप्त कर सकता है।

6. **किसी भी सह–स्वामी को माल लौटाने का अधिकार** (Right to deliver goods to any of co-owners ;धारा 165) यदि कोई विपरीत शर्त न हो तो निक्षेपग्रहीता किसी भी सह–स्वामी को माल सुपुर्द कर सकता है। किसी एक का सौंपा गया माल सभी को सौंपा हुआ माना जायेगा, क्योकि उनकी जिम्मेदारी संयुक्त एवं पृथक–पृथक होती है।

7. **दुषित स्वामित्व की दशा में माल सुपुर्द करना** (Right to deliver goods to bailor without title) **(धारा 166)** यद्धपि निक्षेपी का माल के प्रति श्रेष्ठ अधिकार नहीं था फिर भी उसने निक्षेप कर दिया और निक्षेपगृहीता ने सदविश्वास के साथ माल निक्षेपी को लौटा दिया तो निक्षेपगृहीता का माल के वास्तविक स्वामी के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. **वास्तविक स्वामी के निर्धारण हेतु माल को रोके रखना** (Right to retain good decide real owner) **(धारा 167)** यदि माल निक्षेपगृहीता के अधिकार में हो तो और किसी अन्य पक्षकार ने स्वामी की हैशियत से माल की मांग की हो तो निक्षेपगृहीता माल को तब–तक रोके रख सकता है जब तक कि वास्तविक स्वामी का निर्धारण नहीं हो जाता। यहि नहीं बल्कि यदि निक्षेपगृहिता ने सद्विश्वास के साथ माल वास्तविक स्वामी को सुपुर्द कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप निक्षेपी ने निक्षेपगृहीता के विरूद्ध वाद प्रस्तुत किया हो तो निक्षेपगृहीता यह कहकर अपना बचाव कर सकता है कि तृतीय पत्रकार का निक्षेपी की तुलना में श्रेष्ठ अधिकार था।

9. **ग्रहणाधिकार** [Right to lien ] **(धारा 170–171)** निक्षेपगृहीता निक्षेपित माल को तब तक रोके रख सकता है जब तक कि उसकी बकाया मांग पूरी नहीं हो जाती। यहां यह उल्लेखनीय है कि निक्षेपगृहीता का यह अधिकार विशिष्ट है, सामान्य नहीं, अर्थात निक्षेपगृहीता केवल उसी माल को रोके रख सकता है जिस पर सेवा, श्रम या चातुर्य का उपयोग किया हों।

10. अनावश्यक हस्तक्षेप करने वाले के विरूद्ध अधिकार (Right to sue against wrong doer) **(धारा – 180)** यदि कोई तृतीय पक्षकार निक्षेपी को निक्षेपित माल के उपयोग पर बाधा खड़ी करता है, या उपयोग से रोकता है, तो निक्षेपगृहीता मालिक की तरह अपने बचाव के लिए तृतीय पक्षकार के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है। वाद प्रस्तुत करने का अधिकार निक्षेपी एवं निक्षेपगृहीता दोनों को उपलब्ध है।

11. **अपना हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार** ( Right to get due share) **(धारा 181)** यदि तृतीय पक्षकार के विरूद्ध वाद के बदले में कोई धनराशि प्राप्त हुई हो तो निक्षेपी एवं निक्षेपगृहीता अपने हितों की सीमा तक राशि प्राप्त करने का अधिकार रखते है।

## (D) निक्षेप की समाप्ति (Termination of bailment)

**निम्नांकित दशाओं में निक्षेप का अनुबन्ध समाप्त माना जायेगा :–**

1. निश्चित समयावधि के लिए किया गया निक्षेप, अवधि समाप्त होते ही समाप्त माना जायेगा।
2. निश्चित उद्धेश्य के लिए किया गया निक्षेप, उद्धेश्य पूरा होते ही समाप्त माना जायेगा।
3. यदि निक्षेपग्रहीता ने अनुबन्ध की शर्तो के विरूद्ध कार्य किया है तो निक्षेपी सूचना देकर निक्षेप अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है।
4. यदि निःशुल्क निक्षेप है तो निक्षेपी अपनी इच्छानुसार निक्षेप को कभी भी समाप्त कर सकता है।
5. यदि निःशुल्क निक्षेप है तो किसी भी पक्षकार की मृत्यु के साथ ही निक्षेप को समाप्त माना जायेगा।
6. यदि निक्षेपित माल नष्ट हो गया तो भी निक्षेप का अनुबन्ध समाप्त माना जायेगा।

## E. खोई हुई वस्तु प्राप्त करने के सम्बन्ध में प्रावधान (Provision Regarding Finder of Goods Lost)

खोई हुई वस्तु प्राप्त करने वाले व्यक्ति की वैद्यानिक स्थिति का विवेचन धारा 168 एवं 169 में किया गया है। जैसे ही कोई व्यक्ति खोई हुई वस्तु को प्राप्त करता है, उसकी स्थिति निक्षेपगृहीता के रूप में मानी जाती है, अर्थात अधिकार एवं कर्तव्य निक्षेपगृहीता के रूप में ही होते है। परन्तु धारा 168 एवं 169 में ऐसे व्यक्ति को कुछ पृथक अधिकार दिये है जो इस प्रकार है –

1. धारा 168 के अनुसार यदि वास्तविक मालिक ने कोई ईनाम की राशि घोषित कर रखी है तो वह प्राप्त कर सकता है। साथ ही वस्तु के रख रखाव एवं वास्तविक स्वामी को ढूंढनें मे जो भी व्यय हुआ है, उस व्यय की राशि को भी प्राप्त कर सकता है। वस्तु का प्राप्तकर्ता माल तब तक रोके भी रख सकता है जब तक कि उसकी वास्तविक मांग पूरी नहीं हो जाती।

2. धारा 169 के अनुसार निम्नांकित दो दशाओं में माल का विक्रय कर सकता है :–

1. जब माल नाशवान प्रकृति का हो और उसके बड़े भाग के नष्ट होने की सम्भावना हो। और
2. वास्तविक स्वामी को ढूंढने एवं अन्य आवश्यक व्यय, वस्तु की वास्तविक लागत का 2/3 भाग हो गया हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

## F . ग्रहणाधिकार [lien]

(धारा 170 – 171)

ग्रहणाधिकार का शाब्दिक अर्थ है, किसी वस्तु को रोके रखना। वस्तुतः ग्रहणाधिकार एक ऐसा अधिकार है, जिसमें एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के माल को तब – तक रोके रख सकता है, जब तक कि उसे भुगतान नहीं कर दिया जाता अथवा उसकी मांग पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं हो जाती।

श्री देशाई के अनुसार, ''ग्रहणाधिकार एक व्यक्ति का ऐसा अधिकार है जिसमें अपने अधिकार में निहित वस्तु को तब तक रोके रख सकता है, जब तक कि व्यक्ति की निश्चित मांग पूरी नही हो जाती''।

ग्रहणाधिकार के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए निम्नांकित विशेषताओं की ओर ध्यान देना होगाः–

1. माल या वस्तु, सम्बन्धित व्यक्ति के अधिकार में होना चाहिए।
2. ग्रहणाधिकार की उत्पति राजनियम की क्रियाशीलता द्वारा भी हो सकती है।
3. ग्रहणाधिकार के लिए माल पर निरन्तर अधिकार होना चाहिए। अधिकार ;च्वेमेपवदद्ध के बाहर माल जाते ही ग्रहणाधिकार भी समाप्त हो जाता है।
4. ग्रहणाधिकार की उत्पति स्पष्ट या गर्भित हो सकती है।
5. माल पर वैध अधिकार होना चाहिए। अनाधिकृत अधिकार पर ग्रहणाधिकार नहीं हो सकता। जैसे – चोरी के द्वारा माल पर अधिकार करने पर ग्रहणाधिकार की उत्पति नहीं हो सकती ।
6. ग्रहणाधिकार एक व्यक्तिगत अधिकार होता है। इसे किसी अन्य व्यक्ति को हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता।
7. ग्रहणाधिकार केवल वस्तु को रोके रखने का अधिकार है। बेचने या अन्य कोई अधिकार नहीं हे।
8. ग्रहणाधिकार का मुख्य प्रयोजन सम्बन्धित व्यक्ति के हितो की रक्षा करना है।
9. जब मांग पूरी हो जाती है या व्यय का भुगतान कर दिया जाता है तो ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है।

### ग्रहणाधिकर के प्रकार

ग्रहणाधिकार के निम्नांकित दो अधिकार है, जिनका विवेचन इस प्रकार है

#### (a) विशिष्ट ग्रहणाधिकार (Particular Lien )

विशिष्ट ग्रहणाधिकार ऐसी वस्तुओं पर प्राप्त होता है, जिन पर सेवा, श्रम या योग्यता का उपयोग किया हो। धारा 170 में ग्रहणाधिकार को निक्षेप के सम्बन्ध में व्यक्त करते हुए लिखा है कि, यदि निक्षेप के उद्धेश्यों के अनुसार निक्षेपित वस्तु के सम्बन्ध में निक्षेपगृहीता द्वारा कोई सेवा प्रदान की गई है, तथा जिसमें उसके श्रम एवं चातुर्य का प्रयोग हुआ है, तों उसे विपरीत अनुबन्ध के अभाव में वस्तु को उस समय तक रोक रखने का अधिकार है, जब तक कि उसे उसकी सेवाओं का उचित प्रतिफल प्राप्त नहीं हो जाता है।

**उदाहरण :–**

X ने कोट बनाने के लिए Y दर्जी को कोट का कपड़ा सुपुर्द किया। Y ने शर्तानुसार अपना कार्य पूर्ण कर लिया। Y कोट को तब तक रोक सकता है जब तक कि पारिश्रमिक का भुगतान नहीं हो जाता है।

ग्रहणाधिकार का अधिकार तब प्राप्त होता है जब निर्दिष्ट शर्तो के अनुसार कार्य पूर्ण कर लिया हो। माल सम्बन्धित व्यक्ति के अधिकार में हो और मांग बकाया हो गई हो। उधार की शर्त होने पर ग्रहणाधिकार तब तक प्राप्त नहीं होगा जब तक कि कि उधार की अवधि समाप्त न हो गई हो। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि यदि सम्बन्धित व्यक्ति की त्रुटि के बिना माल चोरी चला जाता है या नष्ट हो जाता है, तो ग्रहणाधिकार समाप्त नहीं होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(b) **सामान्य ग्रहणाधिकार (General Lien)** - किसी व्यक्ति को प्राप्त ऐसा अधिकार जिसमें अपने अधीन किसी भी वस्तु को सामान्य शेष के लिए या किसी भी बकाया मांग के लिए रोके रख सकता है।

धारा 171 के अनुसार सामान्य ग्रहणाधिकार बैंकर, आढ़तिया, घाटपाल, हाईकोर्ट के एटोर्नी जनरल एवं पॉलिसी ब्रोकर को प्राप्त होता है। यदि कोई विपरित शर्त न हो तो यह पक्षकार किसी माल को तब तक रोके रख सकते है, जब तक कि सम्पूर्ण बकाया मांग पूरी नही हो जाती है।

**<u>विशिष्ट ग्रहणाधिकार एवं सामान्य ग्रहणाधिकार में अन्तर</u>**

| क्र. सं. | अन्तर का आधार | विशिष्ट ग्रहणाधिकार | सामान्य ग्रहणाधिकार |
|---|---|---|---|
| 1 | माल | विशिष्ट माल, जिस पर सेवा श्रम एवं योग्यता का उपयोग किया हो। | किसी भी माल जो सम्बन्धित व्यक्ति के अधिकार में हो। |
| 2 | राशि | यह विशिष्ट व्यय या शुल्क के बदले प्रयुक्त किया जाता है। | यह सामान्य शेष के लिए प्रयुक्त किया जाता है। |
| 3 | धारक का अधिकार | धारक जिसे विशिष्ट ग्रहणाधिकार प्राप्त है, उसे सामान्य ग्रहणाधिकार प्राप्त नहीं होता है। | धारक जिसे सामान्य ग्रहणाधिकार प्राप्त है, उसे स्वतः ही विशिष्ट ग्रहणाधिकार प्राप्त होता है। |
| 4 | पक्षकार | (i) अदत विक्रेता<br>(ii) खोई हुई वस्तु प्राप्तकर्ता<br>(iii) गिरवीग्राही<br>(iv) एजेन्ट<br>(v) निक्षेपगृहीता | (i) बैंकर<br>(ii) आढ़तिया<br>(iii) घाटपाल<br>(iv) हाईकॉर्ट की एटॉर्नी जर्नल<br>(v) पॉलिसी ब्रोकर<br>(vi) विशेष अनुबन्ध के द्वारा अन्य पक्षकार |

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि धारा – 171 के अनुसार सामान्य ग्रहणाधिकार निम्नांकित पक्षकारों को प्राप्त है, जिनका विवेचन इस प्रकार है :–

(i) **बैंकर** – बैंके अपने सामान्य शेष के लिए किसी भी प्रतिभूति या वस्तु जो उसके कब्जे में है, यदि कोई विपरीत शर्त न हो तथा माल निक्षेपगृहीता के रूप में अधिकार में आया हो को रोके रख सकती है।

(ii) **आढ़तिया (Factors)** – ऐसा व्यक्ति जो अपने प्रधान या मुखिया की ओर से माल विक्रय हेतु अधिकृत किया जाता है। आढ़तिया भी सामान्य कारोबार के अन्तर्गत प्राप्त माल को तब तक रोके रख सकता है जब तक कि उसकी बकाया मांग पूरी नहीं हो जाती है।

(iii) **घाटपाल (Wharfingers)** :–घाट का अभिप्राय समुद्र से लगी हुई ऐसी जगह है जिसका उपयोग माल चढ़ाने एवं उतारने के लिए किया जाता है। घाट पर माल का संग्रहण नहीं होता है बल्कि माल उतारने एवं चढ़ाने की प्रक्रिया में होता है। घाटपाल वह व्यक्ति है, जिसका उस घाट पर अधिकार होता है। घाटपाल अपने अधिकार में निहित माल को तब तक रोके रख सकता है, जब तक कि सम्पूर्ण घाट के उपयोग के बदले राशि का भुगतान नहीं कर दिया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(iv) **उच्च न्यायालय का महान्यावादी** (Attorney of high Court) . महान्यायवादी को भी सामान्य ग्रहणाधिकार प्राप्त है। जिसके तहक अपने मुवक्किल (बसपमदज) से प्राप्त सामग्री को तब तक रोके रख सकाता है जब तक कि पैशेवर सेवाओं का भुगतान नहीं कर दिया जाता। आर.डी.सक्सैना टध् बलराम प्रसाद शर्मा के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि वकीलों को अपनी सेवाओं के लिए मुवक्किलों के प्रपत्रों को रोकने का अधिकार नहीं है।

(v) **पॉलिसी ब्रोकर** – यहा पॉलिसी ब्रोकर से अभिप्राय समुद्री बीमा में संलग्न व्यक्ति से है। यह व्यक्ति भी किसी भी शेष के बदले अपने अधिकार में रखी हुई वस्तु को रोक सकता है।

**बौद्ध प्रश्न (Test Questions)**

1. माल की सुपुर्दगी किस प्रकार दी जा सकती है। (5 अंक)
2. 'निक्षेप अनुबन्ध में केवल अधिकार का हस्तांतरण होता है, स्वामित्व का नहीं।' समीक्षा कीजिये। (5 अंक)
3. 'निक्षेप का अनुबंध मूलतः हानिरक्षा का अनुबंध नही', व्याख्या कीजिये। (5 अंक)
4. खोई हुई वस्तु प्राप्तकर्ता के अधिकारों एवं दायित्वों की विवेचना कीजिये। (5 अंक)
5. निक्षेप क्या है ? वैध निक्षेप के आवश्यक लक्ष्णों की विवेचना कीजिये। (15 अंक)
6. निक्षेप को परिभाषित करते हुए निक्षेपी के अधिकारों एवं कर्तव्यों की विवेचना कीजियें। (15 अंक)
7. निक्षेप को परिभाषित करते हुए निक्षेपगृहीता के अधिकारों एवं कर्तव्यों की विवेचना कीजियें।
8. ग्रहणाधिकार क्या है ? सामान्य ग्रहणाधिकार एवं विशिष्ट ग्रहणाधिकार में अन्तर स्पष्ट कीजियें।

✸✸✸✸✸✸

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

# बी. 4 गिरवी

## (Pledge)

## (a) प्रस्तावना (INTRODUCTION)

गिरवी, निक्षेप का ही एक प्रकार है। जब किसी वस्तु की सुपुर्दगी ऋण की सुरक्षा या वचन के निष्पादन हेतु की जाती है, तो उसे 'गिरवी' कहते है।

धारा 172 के अनुसार '' किसी ऋण के भुगतान अथवा वचन के निष्पादन की प्रतिभूति के रूप में माल का निक्षेप को गिरवी कहा जाता है। ''

जो व्यक्ति वस्तु सुपुर्द करता है उसे गिरवीकर्ता (Pawnor) जबकि जिसकी सुरक्षार्थ वस्तु सुपुर्द की जाती है, उसे गिरवी ग्राही (Pawnee) कहा जाता है।

उदाहरण – A ने ठ से 5000 रूपये का ऋण लिया जिसके बदले सुरक्षार्थ सोने की अंगुठी सुपुर्द की। A एवं ठ के बीच स्थापित सम्बन्ध गिरवी है। यहां A गिरवीकर्ता एवं B गिरवीग्राही है।

**गिरवी अनुबंध की विशेषताएँ**

गिरवी अनुबंध की निम्नांकित विशेषताए है :–

1. **अधिकार का हस्तान्तरण** (Delivery of Possession) रू. गिरवी के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है कि गिरवीग्राही को माल वैधानिक अधिकार का हस्तान्तरण किया जाना चाहिये। गिरवी के अनुबंध मैं भौतिक हस्तान्तरण आवश्यक नहीं है। परन्तु वैधानिक अधिकार का हस्तान्तरण आवश्यक है।

**उदाहरण –**

A एक सिनेमा का मालिक है। वह बैंक के पास प्रोजेक्टर गिरवी रखते हुए ऋण की सुविधा प्राप्त की। प्रोजेक्टर, A के यहा सिनेमा में ही लगा हुआ है। यह एक वैध अनुबंध है।

2. **माल का अस्तित्व में होना** (Existence of Goods) गिरवी का अनुबंध करते समय माल अस्तित्व में होना अनिवार्य है।

**उदाहरण –**

A फिल्म निर्माता ने इस शर्त के साथ B बैंक से ऋण लिया कि अन्तिम प्रिन्ट तैयार होने पर उसे सुपुर्द कर दिया जायेगा। निर्णय हुआ कि माल अस्तित्व में ही नहीं है, अतः सुपुर्दगी सम्भव नहीं। ***(रेवेन्यू एथोरिटी टर्ष सुदरसनम पिक्चर ए.आई.आर 1968 मद्रास 319)***

3. **माल की सुपुर्दगी** (Delivery of Goods) बिना सुपुर्दगी के गिरवी का अनुबन्ध नहीं हो सकता। सुपुर्दगी वास्तविक या रचनात्मक या सांकेतिक हो सकती है।

4. **चल सम्पति** (Movable Goods) गिरवी का विषय वस्तु चल सम्पति हो सकती है। अचल सम्पति को गिरवी के बाहर रखा गया है।

5. **पुनः सुपुर्दगी गिरवी का अन्त नहीं** (Re-delivery doesn't end the pledge) यदि किसी कारण वश या विशेष प्रयोजनार्थ माल की पुनः सुपुर्दगी गिरवीकर्ता को दी जाती है तो इसे गिरवी का अंत नहीं माना जायेगा।

**उदाहरण :–**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

A ने B से आभुषण की प्रतिभूति पर अग्रिम की सुविधा प्राप्त की। एक वैवाहिक कार्यक्रम में प्रयुक्त करने हेतु आभूषण गिरवीकर्ता अर्थात । को सुपुर्द किये गयें। यह निर्णय हुआ की पुनः सुपुर्दगी गिरवी का अंत नहीं।

6. **माल की सुपुर्दगी एवं ऋण की क्रियाएँ एक साथ होना अनिवार्य नहीं** (The Delivery of goods and the loan need not be contemporaneous) - यह आवश्यक नहीं है कि ऋण लेना एवं प्रतिभूति सुपुर्द करने की क्रियाएँ साथ–साथ हो। यह सम्भव है कि ऋण बहुत पहले लिया हुआ हो और प्रतिभूति बाद में प्रस्तुत की गई हो। यह भी सम्भव है कि माल पहले से ही ऋणदाता के पास विद्यमान हो और उसक माल की एवज में ऋण स्वीकृत किया गया हो।

B. **गिरवी एवं निक्षेप में अन्तर** (Distinction betwee pledge and bailment)

| **क्रं. सं.** | **अन्तर का आधार** | **गिरवी** | **निक्षेप** |
|---|---|---|---|
| 1 | उद्देश्य | ऋण एवं वचन की सुरक्षा हेतु गिरवी का अनुबन्ध किया जाता है। | सुरक्षा, मरम्मत, माल प्रेषित करना इत्यादि उद्देश्यों के लिये निक्षेप होता है। |
| 2 | धारक के अधिकार | गिरवीकर्ता द्वारा त्रुटि करने पर गिरवीग्राही उचित सूचना देकर माल को बेच सकता है। | निक्षेप का माल बेचने का अधिकार नहीं है। केवल ग्रहणाधिकार एवं वाद प्रस्तुत करने का अधिकार प्राप्त होता है। |
| 3 | माल का उपयोग | यदि कोई विपरीत शर्त न हो तो गिरवीग्राही गिरवी रखी हुई वस्तु का उपयोग नहीं कर सकता है। | अनुबन्ध की शर्तानुसार निक्षेप गृहीता वस्तु का उपयोग कर सकता है। |
| 4 | पुनः सुपुर्दगी का प्रभाव | पुनः सुपुर्दगी का गिरवी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। | पुनः सुपुर्दगी के साथ ही निक्षेप का अंत हो जायेगा। |
| 5 | सुपुर्दगी का समय | माल की सुपुर्दगी एवं ऋण की क्रियाएं एक साथ होना अनिवार्य नहीं है। | बिना सुपुर्दगी के निक्षेप अनुबन्ध का निर्माण ही नहीं हो सकता है। |
| 6 | प्रतिफल | गिरवी के लिये प्रतिफल अनिवार्य है। | निक्षेप के लिये प्रतिफल अनिवार्य नहीं है। निःशुल्क निक्षेप का भी प्रावधान है। |
| 7 | अनुबन्ध की समाप्ति | ऋण की अदायगी एवं वचन का निष्पादन करते ही गिरवी का अनुबन्ध समाप्त माना जाएगा। | निर्दिष्ट समयावधि पूरी होने या निर्दिष्ट उद्देश्य पूरा होते ही निक्षेप का अनुबन्ध भी समाप्त हो जाएगा। |

C. **गिरवी कर्ता एवं गिरवीग्राही के अधिकार एवं कर्त्तव्य** –(Rights and Duties of Pownor and Pawnee)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वस्तुतः गिरवीकर्ता एवं गिरवीग्राही के अधिकार एवं कर्तव्य क्रमषः निक्षेपी एवं निक्षेपगृहीता के अधिकार एवं कर्तव्यों के समान ही है क्योंकि गिरवी भी एक प्रकार का निक्षेप ही है। परन्तु गिरवीग्राही के अधिकारों पर पृथक से विचार करने की आवष्यकता है जो इस प्रकार है –

1. **ग्रहणाधिकार** (Right of Lien) **(धारा 173)** – गिरवीग्राही प्रतिभूति के रूप में रखी हुई वस्तु को तब तक रोके रख सकता है जब तक कि गिरवीकर्त्ता द्वारा न केवल ऋण एवं देय ब्याज का भुगतान बल्कि अन्य आवष्यक व्ययों का भी भुगतान नहीं करता। यद्यपि गिरवीग्राही को विषिष्ट ग्रहणाधिकार होता है।
2. **उत्तरवर्ती ऋणों के लिए माल को रोके रखना** (Right to retain goods for subsequent loans) **(धारा 174)** – यदि कोई विपरीत शर्त न हो तो गिरवीकर्ता द्वारा उसी गिरवीग्राही से उत्तरवर्ती ऋण लेने पर गिरवीग्राही आगामी ऋणों के लिए भी माल को रोके रख सकता है, बषर्ते कि उसी माल को आधार रखते हुए ऋण स्वीकृत किया हो।
3. **असाधारण व्ययों के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार** (Right to sue for extra ordinary expenses) **(धारा 175)** असाधारण व्ययों के लिए गिरवीग्राही माल को रोक नहीं सकता बल्कि गिरवीकर्त्ता के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है।
4. **गिरवीकर्ता की त्रुटि की दषा में अधिकार** (Right in case of bailor's default) **(धारा 176)** –
   अ. गिरवीकर्त्ता के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है और प्रतिभूति के रूप में रखी हुई वस्तु को सहायक सुरक्षा के रूप में रोक सकता है।
   ब. उचित सूचना देकर गिरवी के रूप में रखी हुई वस्तु को बेच सकता है। बेचने से यदि कम धनराषि मिले तो शेष के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है जबकि आधिक्य की स्थिति में राषि गिरवीकर्त्ता को सुपुर्द करनी होगी। यहां यह उल्लेखनीय है कि वाद प्रस्तुत करना एवं माल का विक्रय करना, गिरवीग्राही का समवर्ती अधिकार है अर्थात दोनों कार्यवाही साथ–साथ की जा सकती है।
5. **गिरवीकर्ता के दुषित अधिकारों की दषा में वास्तविक स्वामी के प्रति अधिकार** (Right against true owner when Pawnor's title is defective) **(धारा 178– A )** – यदि गिरवीग्राही ने सद्विश्वास के साथ, गिरवीकर्ता के दुषित अधिकारों की जानकारी न होने पर माल को गिरवी रखा है तो गिरवीकर्ता का माल पर दूषित अधिकार होने के बावजूद भी गिरवीग्राही को माल पर अच्छा अधिकार प्राप्त होगा।

## D. गैर स्वामियों द्वारा गिरवी **(Pledged by Non-owners)**

साधारणतया माल का वास्तविक स्वामी ही वैध गिरवी का निर्माण कर सकता है। यह नियम इस सामान्य सिद्धांत से लिया गया है कि, ''कोई भी व्यक्ति अपने से श्रेष्ठ स्वामित्व दूसरे को प्रदान नहीं कर सकता''। (***Nemo dat Quod non habet***).

यदि किसी व्यक्ति का सीमित, अनाधिकृत या दूषित अधिकार है तो वह वैध गिरवी का निर्माण नहीं कर सकता, अर्थात गिरवीग्राही को माल पर अच्छा अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता, परन्तु निम्नाकिंत दषाओं में गिरवीग्राही को गिरवीकर्ता से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त हो जायेगा बषर्ते कि गिरवीग्राही ने सद्विष्वास के साथ एवं गिरवीकर्त्ता के दूषित अधिकारों की जानकारी न होते हुए कार्य किया हो –

1. **व्यापारिक एजेन्ट द्वारा गिरवी** (Pledge by a mercantile agent) **(धारा 178)** – यदि व्यापारिक एजेन्ट नियोक्ता की सहमति से माल रखा हो और व्यापारिक एजेन्ट के रूप में कार्य करते हुए, व्यापार की साधारण प्रगति में माल को गिरवी रख देता है तो ऐसी गिरवी वैध होती है बषर्ते कि गिरवीग्राही ने सद्विष्वास के साथ एवं दूषित अधिकारों की जानकारी न होते हुए कार्य किया हो।
2. **व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा गिरवी** (Pledge by a person who possess goods under voidable contract) **(धारा 178–A)** – यदि गिरवीकर्ता ने ऐसे माल को गिरवी रखा हो जो व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत प्राप्त किया है तो भी गिरवीग्राही को श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त हो जायेगा बषर्ते कि गिरवीग्राही ने सद्विष्वास के साथ एवं मूल स्वामी द्वारा अनुबन्ध निरस्त करने से पूर्व प्रतिभूति प्राप्त की हो यद्यपि गिरवीकर्त्ता का अधिकार दूषित होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. **माल पर सीमित हित रखने वाले व्यक्ति द्वारा गिरवी** (Pledge by the person having limited Interest) **(धारा 179)** – यदि एक ऐसा व्यक्ति माल को गिरवी रख देता है जिसका उस माल में सीमित हित है तो गिरवी अनुबन्ध उसके हित की सीमा तक वैध होता है।

**उदाहरण :–**

खोई हुई वस्तु प्राप्त करने वाले व्यक्ति ने वास्तविक स्वामी को ढूंढने एवं माल के रख–रखाव हेतु 500/– रूपये व्यय किये। अब यदि ऐसे व्यक्ति ने इस प्रकार के माल को गिरवी रख दिया है तो 500/– रूपये की राषि की सीमा तक गिरवी वैध मानी जायेगी।

4. **विक्रय के पश्चात् विक्रेता द्वारा विक्रय** (Pledge by seller in possession even after sell) **(धारा 30, वस्तु विक्रय अनुबन्ध)** – यदि माल विक्रय करने के पष्चात भी विक्रेता के पास पड़ा है ओर विक्रेता ने उस माल को गिरवी रख दिया। गिरवीग्राही ने सद्विष्वास के साथ एवं बिना पूर्व विक्रय की जानकारी के माल प्राप्त कर लिया तो गिरवीकर्त्ता का माल पर कोई अधिकार न होने के बावजूद भी गिरवीग्राही को श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त हो जायेगा।

5. **क्रय से पूर्व क्रेता द्वारा विक्रय** (Pledge by buyer possessing goods before buying) **(धारा 30, वस्तु विक्रय अधिनियम)** कभी–कभी क्रेता पसन्दगी की शर्त पर माल क्रय करता है परन्तु स्वामित्व का हस्तांतरण होने से पूर्व ही माल को गिरवी रख देता है और गिरवीग्राही ने सद्विष्वास के साथ, विक्रेता की वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ होकर माल रख लेता है तो गिरवीग्राही को गिरवीकर्त्ता से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त हो जायेगा।

6. **सहस्वामी द्वारा गिरवी** (Pledge by Co-owners) – यदि एकाधिक व्यक्ति किसी माल के स्वामी है और सबकी सहमति से माल किसी एक व्यक्ति के पास रखा हुआ है। अब यदि उस व्यक्ति ने माल गिरवी रख दिया तो संबंधित व्यक्ति का अधिकार सीमित होने के बावजूद भी गिरवीग्राही को पूरा अधिकार प्राप्त हो जायेगा। बषर्ते कि गिरवीग्राही ने सद्विष्वास के साथ एवं आंषिक अधिकार की जानकारी न होते हुए माल स्वीकार किया हो।

**बौद्ध प्रश्न (Test Questions)**

1. 'गिरवी' से आपका क्या अभिप्राय है? गिरवी एवं निक्षेप के बीच अंतर स्पष्ट कीजिये। (15 अंक)
2. गिरवी क्या है? गिरवी के आवष्यक लक्षण क्या है? गिरवीग्राही को प्राप्त विषेषाधिकारो की विवेचना कीजिये। (15 अंक)
3. गिरवी को परिभाषित कीजिये। गैर–स्वामियों द्वारा किया गया गिरवी का अनुबन्ध कब वैध माना जाता है? (15 अंक)

**************

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

# खण्ड –ब– 5 एजेन्सी

## (Section - B-5 Agency)

## A- प्रस्तावना (Introduction)

औद्योगिक क्रांति के पष्चात् विष्व में व्यावसायिक गतिविधियों का बहुत अधिक विस्तार हुआ है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं रहा कि दैनिक जीवन की सभी चुनौतियों का मुकाबला कर सके। अतः राजनियम में यह व्यवस्था कर दी कि यदि आवष्यकता पड़े तो किसी अन्य व्यक्ति या संस्था की सेवाएं ली जा सकती है। जिस व्यक्ति की सेवाएं ली जाती है, उसे 'एजेन्ट' कहते है। जिस व्यक्ति द्वारा सेवाएं ली जाती है, या जो दूसरे व्यक्ति के माध्यम से कार्य करता है, उसे प्रधान (Principal) कहते है। इस प्रकार एजेन्ट एवं नियोक्ता के मध्य व्याप्त संबंध को ही एजेन्सी कहते है।

**उदाहरण :–**यदि कोई व्यक्ति दूसरे को अधिकृत करता है कि वह उसके लिए क्रिकेट मैच का टिकट खरीदे। यहां दूसरा व्यक्ति एजेन्ट के रूप में कार्य कर रहा है। जो व्यक्ति निर्देष दे रहा है, वह प्रधान या मुखिया की भूमिका में है। इसी प्रकार यदि पिता ने पुत्र को बैंक में राषि जमा कराने के लिए निर्देषित किया है तो पिता प्रधान के रूप में एवं पुत्र एजेंट के रूप में माना जायेगा।

धारा 182 के अनुसार, ''एजेन्ट वह व्यक्ति है जो दूसरे व्यक्ति की और से या अन्य व्यक्तियों के साथ व्यवहारों में दूसरे का प्रतिनिधित्व करने के लिए नियुक्त किया जाता है।''

एजेन्सी का सार यह है कि एजेन्ट नियोक्ता की और से अन्य पक्षकारों के साथ अनुबन्धात्मक संबंध स्थापित करता है, अर्थात एजेन्ट नियोक्ता को अन्य पक्षकारों के प्रति बाध्य करता है।

### एजेन्सी के आवष्यक तत्व (Essential Elements of Agency)

1. **ठहराव** (An Agreement) – एजेन्सी की प्रथम शर्त यह है कि नियोक्ता एवं एजेन्ट के मध्य ठहराव होना चाहिए। ठहराव स्पष्ट भी हो सकता है और गर्भित भी।

2. **दूसरे के माध्यम से कार्य करना** (Act through another) – एजेन्सी का सार यह है कि व्यक्ति अपना कार्य दूसरे व्यक्ति के माध्यम से करता है और स्वयं तृतीय पक्षकार के प्रति उत्तरदायी होता है। दूसरे व्यक्ति की उपस्थिति बिना एजेन्सी का निर्माण नहीं हो सकता।

3. **अनुबन्ध करने की क्षमता** (Capacity of Contract) – जो व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के माध्यम से कार्य करने की इच्छा रखता है, उसमें अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में अनुबन्ध के अयोग्य पक्षकार अपनी और से कार्य करने के लिए अन्य व्यक्ति को अधिकृत नहीं कर सकता। कारण यह है कि तृतीय पक्षकार के प्रति उत्तरदायी बने रहने के लिए नियोक्ता में अनुबन्ध करने की क्षमता का होना अनिवार्य है।

4. **सद्विष्वासाश्रित संबंध** (Fiduciary Relation) – एजेन्सी का अनुबंध नियोक्ता एवं एजेन्ट के मध्य पूर्णतः विष्वास और ईमानदारी पर टिका हुआ है।

5. **स्पष्ट या गर्भित** (By express or Implied) – स्पष्ट एजेन्सी तब मानी जायेगी जब इसका निर्माण स्पष्ट अभिव्यक्ति द्वारा या लिखित ठहराव द्वारा हो। 'पावर ऑफ एर्टोनी' द्वारा किसी व्यक्ति को अधिकृत करना, एजेन्सी का पक्का सबूत है। गर्भित एजेन्सी का निर्माण पक्षकारों के मध्य पारस्परिक संबंध, आचरण या परिस्थितियों द्वारा होता है।

6. **कार्य का अभिप्राय** (Intention of work) – एजेन्सी का निर्माण तभी होगा जब एजेन्ट के द्वारा कार्य करने का अभिप्रायः नियोक्ता को अन्य पक्षकारों के प्रति बाध्य करना हो।

7. **एजेन्ट द्वारा किया गया कार्य, नियोक्ता का कार्य** (An act of agent is the act of principal) – एजेन्सी का सिद्धांत लैटिन वाक्य "Qui facit per alium facit per se" पर आधारित है अर्थात् यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के माध्यम से कार्य करता है तो यह मानकर चला जाएगा कि वह कार्य स्वयं उसी व्यक्ति ने किया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है। अतः एजेन्ट द्वारा अपनी अधिकार सीमा के भीतर रहते हुए कार्य करने पर नियोक्ता ही तृतीय पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगा।

8. **एजेन्ट के कार्यक्षेत्र की सीमा** (Scope of agent) – यह एक सामान्य नियम है कि कोई भी व्यक्ति जो स्वयं कार्य कर सकता है, (कुछ अपवादों को छोड़कर जिसमें व्यक्तिगत योग्यता एवं चातुर्य की आवश्यकता हो) वे दूसरे व्यक्तियों के माध्यम से करवाया जा सकता हैं। दूसरे शब्दो में जो कार्य नियोक्ता स्वयं कर सकता है, वह एजेन्ट के माध्यम से भी किया जा सकता हैं।

9. **केवल सलाह देना या सहायता करना, एजेन्सी नहीं** (Mere consultancy doesn't make agency) – कभी कभी कोई व्यक्ति कार्य करने के लिए दूसरे व्यक्ति की सलाह या मदद लेता है, इससे एजेन्सी का निर्माण नहीं हो सकता । एजेन्सी के लिए सलाह या सहायता ऐसी होनी चाहिए जिससे नियोक्ता अन्य पक्षकारों के प्रति जवाबदेह हो।

10. **प्रतिफल** (Consideration) – धारा 185 के अनुसार एजेन्सी के लिए प्रतिफल अनिवार्य नहीं है। एजेन्सी सःशुल्क या निःषुल्क दोनों हो सकती है। यदि कोई एजेन्ट बिना प्रतिफल के भी कार्य कर रहा है तो भी नियोक्ता उसी प्रकार बाध्य होता है जिस प्रकार प्रतिफल के बदले कार्य करने पर होता है।

11. **एजेन्ट, नौकर एवं स्वतंत्र ठेकेदार में अन्तर होता है** (There is quite difference between agent, servent and independent contractor) – मूलतः नौकर कुछ सामान्य नियमों की अनुपालना करता है और कमीशन के स्थान पर वेतन प्राप्त करता है। नौकर में अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता नहीं होती है। वही दूसरी ओर स्वतंत्र ठेकेदार को अनुबन्ध की शर्तानुसार कार्य करना होता है। साथ ही वह पृथक सत्ता लिये हुए होता है। वह अपने कार्यों द्वारा प्रधान को बाध्य भी नहीं करता है।

12. **एजेन्ट की योग्यता** – (Ability of Agent) – धारा 184 में स्पष्ट प्रावधान है कि किसी व्यक्ति में अनुबन्ध करने की क्षमता हो अथवा न हो, एजेन्ट नियुक्त किया जा सकता है। नियोक्ता को जवाबदेह बनाने के लिए एजेन्ट में अनुबन्ध करने की क्षमता का होना आवश्यक नहीं है परन्तु क्षमता के अभाव में एजेन्ट का नियोक्ता के प्रति कोई दायित्व नहीं होगा।

13. **प्रधान की योग्यता** (Ability of principal) – धारा 183 के अनुसार 'एजेन्सी मूलतः अनुबन्ध पर आधारित है अतः प्रधान एवं अन्य पक्षकारों के मध्य अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करने के लिये नियोक्ता में अनुबन्ध करने की क्षमता का होना अनिवार्य है।''

## B- एजेन्सी का निर्माण (Creation of Agency)

नियोक्ता एवं एजेन्ट के मध्य व्याप्त सम्बन्ध ही एजेन्सी के निर्माण का आधार है। नियोक्ता एवं एजेन्ट के मध्य सम्बन्धों की स्थापना निम्नांकित तरीके से की जा सकती है :–

1. **स्पष्ट ठहराव द्वारा एजेन्सी** (Agency by express agreement) – जब एजेन्सी का निर्माण स्पष्ट उच्चारण, अभिव्यक्ति अथवा लिखित ठहराव द्वारा हो तो उसे स्पष्ट ठहराव द्वारा निर्मित एजेन्सी कहा जाता है। (धारा 187) यदि कोई व्यक्ति मुख्तारनामा ;च्वूमत वि जजवतदमलद्ध द्वारा कार्य किसी दूसरे को सुपुर्द करता है तो इसे इस श्रेणी में माना जाता है।

2. **गर्भित ठहराव द्वारा एजेन्सी** (Agency by implied agreement) – जब एजेन्सी का निर्माण पक्षकारों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों, आचरण या परिस्थितियों द्वारा हो तो इसे गर्भित ठहराव द्वारा निर्मित एजेन्सी कहा जाता है।

**उदाहरण :–**

अ एवं ब दोनों मित्र है। अ के कपड़े की दुकान है जिस पर ब प्रायः आता रहता है और सामान्य कारोबार में भाग लेता है, यद्यपि ब उस कार्य को करने के लिये अधिकृत नहीं है। इस प्रकार अ एवं ब के मध्य आचरण द्वारा एजेन्सी का निर्माण हो गया।

3. **पुष्टिकरण द्वारा एजेन्सी** (Agency by ratification) – धारा 196 के अनुसार, ''यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की बिना जानकारी या सहमति के, उसकी ओर से कोई कार्य करता है तो दूसरा व्यक्ति उस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कार्य को स्वीकार भी कर सकता है और इन्कार भी कर सकता है। यदि वह स्वीकार करता है तो यह मानकर चला जायेगा कि वह कार्य पूर्व स्वीकृति के आधार पर किया गया है।'' इस प्रकार पूर्व के कार्यों की पुष्टि द्वारा निर्मित एजेन्सी को ही पुष्टिकरण द्वारा एजेन्सी कहा जाता है।

**पुष्टिकरण, स्पष्ट भी हो सकती है और गर्भित भी (धारा 197) ।**

**उदाहरण :–**

अ ने ब के लिए, बिना पूर्व सहमति के कुछ सामान खरीदा। तत्पश्चात् ब ने क्रय किया गया सामान स को बेच दिया। यहां ब का आचरण गर्भित पुष्टि को दर्शाता है।

4. **गत्यावरोध या प्रदर्शन द्वारा एजेन्सी (**Agency by estoppel or holding out) – यदा–कदा कोई व्यक्ति नियोक्ता की उपस्थिति में, तृतीय पक्षकार के सन्मुख अपने आपको एजेन्ट के रूप में प्रदर्शित करता है और नियोक्ता उसे ऐसा करने से नहीं रोकता। तृतीय पक्षकार उसके प्रदर्शन को देखकर अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तो नियोक्ता यह कहकर अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता कि उसका प्रदर्शन मिथ्या था। इस प्रकार प्रदर्शन के आधार पर निर्मित एजेन्सी को ही गत्यावरोध या प्रदर्शन द्वारा निर्मित एजेन्सी कहा जाता है।

**उदाहरण :–**

अ एक घोड़े का मालिक है जो ब को बेचने में रूचि रखता है। स, वहाँ मौजूद है जो अ की बिना सहमति के भी सौदेबाजी में सक्रिय भाग लेता है और ब को ऐसा प्रतीत होता है कि स, अ का एजेन्ट है। इसी आचरण के आधार पर ब एवं स के बीच अनुबन्ध हो जाता है। ऐसी स्थिति में अ, स द्वारा किये गये कार्य से इन्कार नहीं कर सकता।

5. **आवश्यकता द्वारा एजेन्सी** (Agency by necessity) – यद्यपि एजेन्ट, नियोक्ता के निर्देशानुसार या अनुबन्ध की शर्तानुसार ही कार्य कर सकता है, परन्तु संकटकालीन परिस्थितियों में एक एजेन्ट नियोक्ता के हितों के लिए वे समस्त कार्य कर सकता है जैसा कि एक विवेकशील व्यक्ति , समान परिस्थितियों में, स्वयं के हितो की रक्षा के लिये करता है। ऐसा करने पर नियोक्ता स्वतः ही तृतीय पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगा और इस प्रकार से निर्मित एजेन्सी आवश्यकता द्वारा निर्मित एजेन्सी मानी जायेगी।

**उदाहरण :–**

अ ने ब को समुद्री जहाज के द्वारा माल ले जाने के लिए अधिकृत किया जो श्रीलंका ले जाना था। मार्ग में ही जहाज में तकनीकी त्रुटि होने के कारण लदान किये गये माल को गिरवी रखते हुए जहाज की मरम्मत कराई। यद्यपि ब गिरवी के लिये अधिकृत नहीं था फिर भी उसके द्वारा किये गये कार्य के लिए अ उत्तरदायी माना जाएगा।

## C- एजेन्ट के अधिकारों की सीमा (Extent of Agent's Authority)
**(धारा 188–189)**

एजेन्ट के अधिकारों की सीमा को निम्नांकित दो आधारों पर समझा जा सकता है –

1. **सामान्य दशाओं में एजेन्ट के अधिकार** (Agent's authority in an ordinary conditions) **(धारा 188)** सामान्य दशाओं में एक एजेन्ट जिस कारोबार के लिए नियुक्त किया जाता है, उस कारोबार को व्यवस्थित रूप से चलाने हेतु वे समस्त वैध कार्य कर सकता है जो उस कार्य के लिये आवश्यक या आनुषंगिक (necessary or incidental) होते है। एजेन्ट के इस अधिकार को प्रकट (apparent or ostensible) – अधिकार कहा जाता है जो वास्तविक अधिकार से भिन्न होता है। यह अधिकार कारोबार की प्रकृति पर निर्भर करता है।

2. **संकटकाल में एजेन्ट का अधिकार** (Agents authority incase of emergency) **(धारा 189)** – संकटकालीन परिस्थितियों में एक एजेन्ट, नियोक्ता के हितों के लिए, वे समस्त कार्य कर सकता है जैसा कि एक विवेकशील व्यक्ति, समान परिस्थितियों में, स्वयं के हितो की रक्षा के लिये करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

## D –क्या एजेन्ट अपने अधिकारों का भार्रापण कर सकता है?(Can an agent delegate his authority ?)

प्रश्न यह पैदा होता है कि एजेन्ट अपने अधिकारों का भार्रापण कर सकता है या नहीं ? यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नियोक्ता एजेन्ट की व्यक्तिगत योग्यता, चातुर्य, कार्यकुशलता एवं ईमानदारी को दृष्टिगत रखते हुए एजेन्सी सम्बन्धी कारोबार को करने के लिए नियुक्त करता है। ऐसी स्थिति में एक ऐसा व्यक्ति, जिसके सम्बन्ध में नियोक्ता को कोई जानकारी न हो और उसके द्वारा किये गये कार्यों के लिए नियोक्ता तृतीय पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी हो, यह तर्कसंगत प्रतीत नही होता। अतः साधारणतया एक एजेन्ट अपने अधिकारों का भार्रापण किसी अन्य व्यक्ति को नहीं कर सकता । (A delegate cannot furhter delegate his powers or Delegatus non-potest delegare) परन्तु निम्नांकित दो दशाओं में एजेन्ट नियोक्ता द्वारा प्रदत्त अधिकारों का भार्रापण कर सकता है जिनका विवेचन इस प्रकार है :

(A) **उप–एजेन्ट** (Sub Agent) – धारा 191 के अनुसार ''उप–एजेन्ट'' वह व्यक्ति है जो मूल एजेन्ट द्वारा नियुक्त किया जाता है और मूल एजेन्ट के नियन्त्रण में रहते हुए एजेन्सी सम्बन्धी कारोबार को करता है।'' इसका अभिप्रायः यह है कि यह मूल एजेन्ट का एजेन्ट होता है। सामान्यतया एजेन्ट एवं उपएजेन्ट के मध्य सम्बन्ध नियोक्ता एवं एजेन्ट का ही होता है।

धारा 190 के अनुसार, निम्नांकित दशाओं में एक एजेन्ट अपने अधिकारों का भार्रापण किसी अन्य व्यक्ति को कर सकता है, जिसे उप एजेन्ट कहा जाता है :

1. जब एजेन्ट ने नियोक्ता से स्पष्ट या गर्भित अधिकार प्राप्त कर लिया हो।
2. जब एजेन्ट उप –एजेन्ट की नियुक्ति कर रहा हो और नियोक्ता जानते हुए भी उसे ऐसा करने से नहीं रोकता हो।
3. जब व्यापारिक रीति या परम्परा के अनुसार उप–एजेन्ट की नियुक्ति की जाती हो।
4. कार्य सामान्य लिपिकीय प्रकृति का हो और उसे करने के लिए कोई विशेष योग्यता या चातुर्य की आवश्यकता न हो।
5. कार्य की प्रकृति के अनुसार उप–एजेन्ट की नियुक्ति अनिवार्य हो। और
6. जब संकटकालीन परिस्थितियां उत्पन्न हो गई हो।

**नियोक्ता, एजेन्ट एवं उप–एजेन्ट के मध्य वैधानिक सम्बन्ध**

(a) **जब उप एजेन्ट की नियुक्ति वैधानिक तरीके से की गई हो** (धारा–192)

जब एजेन्ट द्वारा उप–एजेन्ट की नियुक्ति अधिनियम की धारा 190 के प्रावधानों के अनुरूप की गई हो तो सम्बन्ध इस प्रकार होगा :–

1. उप–एजेन्ट, अपने द्वारा किये गये कार्यों के लिए मूल एजेन्ट के प्रति उत्तरदायी होगा।
2. मूल एजेन्ट, उप–एजेन्ट द्वारा किये गये कार्यों के लिये नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होगा।
3. नियोक्ता, उप–एजेन्ट द्वारा किये गये कार्यों के लिये तृतीय पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगा।
4. सामान्य दशाओं में एजेन्ट एवं उप–एजेन्ट के मध्य सम्बन्ध नियोक्ता एवं एजेन्ट के रूप में ही होते हैं जब तक कि उप–एजेन्ट जान–बूझकर लापरवाही या कपट का शिकार न हो।

(b) **जब उप एजेन्ट की नियुक्ति अनाधिकृत तरीके से की हो (धारा 193 )**

जब उप एजेन्ट की नियुक्ति अनाधिकृत तरीके से अर्थात धारा 190 के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए की हो तो एजेन्ट एवं उप–एजेन्ट के मध्य सम्बन्ध वास्तविक नियोक्ता एवं एजेन्ट के रूप में होगा। इस स्थिति में उप–एजेन्ट द्वारा किये गये कार्यों के लिए मूल–एजेन्ट अन्य पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगा। नियोक्ता का कोई दायित्व नहीं होगा। साथ ही नियोक्ता एवं उप–एजेन्ट के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(B) **स्थानापन्न एजेन्ट** (Substituted Agent or Co-Agent) धारा 194 के अनुसार ''जब एजेन्ट नियोक्ता से स्पष्ट या गर्भित अधिकार रखते हुए एजेन्सी सम्बन्धी कारोबार को करने के लिए स्वयं के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को नामांकित करता है तो इसे स्थानापन्न एजेन्ट कहते है न कि उप–एजेन्ट'' ।

**उदाहरण :–**

अ ने ब को जहाज खरीदने के लिये अधिकृत किया। ब ने अ से स्वीकृति प्राप्त करते हुए जहाज खरीदने हेतु स को अधिकृत कर दिया जो कि इस विषय का विशेषज्ञ है। यहॉ स स्थानापन्न एजेन्ट होगा न कि उप–एजेन्ट।

धारा 195 के अनुसार, ''मूल एजेन्ट का यह कर्तव्य है कि स्थानापन्न एजेन्ट की नियुक्ति में उतनी योग्यता, चातुर्य एवं विवेक का उपयोग करना चाहिये जितना कि एक विवेकशील व्यक्ति स्वयं के हितों की रक्षा करने के लिये करता है।'' यदि धारा 195 की अनुपालना की जाती है तो स्थानापन्न एजेन्ट द्वारा किये गये कार्यों के लिये नियोक्ता उत्तरदायी होगा, एजेन्ट का कोई व्यक्तिगत दायित्व नहीं होगा।

**उप एजेन्ट एवं स्थानापन्न एजेन्ट में अन्तर**

| क्र.सं. | अन्तर का आधार | उप–एजेन्ट | स्थानापन्न एजेन्ट |
|---|---|---|---|
| 1 | नियुक्ति | धारा 190 के प्रावधानों के अनुसार नियुक्ति की जा सकती है। | नियुक्ति तभी संभव है जब नियोक्ता से स्पष्ट या गर्भित अधिकार प्राप्त कर लिया गया हो। |
| 2 | नियंत्रण | यह मूल एजेन्ट के नियन्त्रण में रहते हुए कार्य करता है। | यह नियोक्ता के नियन्त्रण में रहते हुए कार्य करता है। |
| 3 | उत्तरदायित्व | यह अपने कार्यों के लिए मूल एजेन्ट के प्रति उत्तरदायी होता है। | यह अपने कार्यों के लिये नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होता है। |
| 4 | एजेन्ट का उत्तरदायित्व | उप–एजेन्ट द्वारा किये गये कार्यों के लिये एजेन्ट नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होता है। | स्थानापन्न एजेन्ट द्वारा किये गये कार्यों के लिये एजेन्ट नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है। |
| 5 | एजेंट का कर्तव्य | उप–एजेन्ट की नियुक्ति के पश्चात भी एजेन्ट का कर्तव्य बना रहता है। | स्थानापन्न एजेन्ट की नियुक्ति के साथ ही एजेन्ट का कर्तव्य समाप्त हो जाता है। |
| 6 | अनुबन्ध की सन्निकटता | नियोक्ता एवं उप एजेन्ट के बीच अनुबन्ध की सन्निकटता नहीं होती है। | नियोक्ता एवं स्थानापन्न एजेन्ट के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो जाता है। |
| 7 | पारिश्रमिक | यह मूल एजेन्ट से पारिश्रमिक की मांग करता है। | यह नियोक्ता से पारिश्रमिक की मांग करता है। |
| 8 | अधिकारों का भारापर्ण | आवश्यकता पड़ने पर एजेन्ट अपने अधिकारों का भारापर्ण कर सकता है। | एजेन्ट, केवल नियोक्ता के अधिकारों का ही भारापर्ण कर सकता है। |
| 9 | वाद प्रस्तुत करना | जानबूझकर लापरवाही एवं कपट को छोड़कर नियोक्ता एवं उप एजेन्ट एक दूसरे के विरूद्ध वाद प्रस्तुत नहीं कर सकते। | नियोक्ता एवं स्थानापन्न एजेन्ट के दूसरे के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकते है। |

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

## (E)– पुष्टिकरण का सिद्धान्त (Doctrine of Ratificaiton)

### (धारा 196–200)

धारा 196 के अनुसार ''यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की बिना जानकारी या सहमति के उसकी ओर से कोई कार्य करता है तो दूसरा व्यक्ति उस कार्य को स्वीकार भी कर सकता है और इन्कार भी कर सकता है। यदि वह स्वीकार करता है तो यह मानकर चला जायेगा कि वह कार्य पूर्व स्वीकृति के आधार पर किया गया है।'' पुष्टि करते ही सामान्य एजेन्सी की स्थापना हो जायेगी, एजेन्ट व्यक्तिगत दायित्व से मुक्त हो जायेगा और नियोक्ता तृतीय पक्षकारों के प्रति प्रतिगामी प्रभाव से उत्तरदायी होगा।

लॉर्ड हैल्सबरी के शब्दों में ''जब कोई व्यक्ति बिना सहमति के और बिना व्यक्तिगत दायित्व के दूसरे की ओर से कोई कार्य करता है एवं दूसरा व्यक्ति उस कार्य की पुष्टि कर देता है तो प्रतिगामी एजेन्सी (retrospective agency) का निर्माण होता है अर्थात् जिस तारीख को कार्य किया है, उसी तारीख से एजेन्सी का निर्माण माना जायेगा। पुष्टि के पश्चात सम्पूर्ण कार्य नियोक्ता का माना जायेगा और वही तृतीय पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगा।

### वैध पुष्टिकरण की शर्तें

1. कार्य दूसरे व्यक्ति की ओर से होना चाहिये। (The work must be done for other) – पुष्टिकरण की पहली शर्त यह है कि एजेन्ट का मनतव्य नियोक्ता की ओर से कार्य करना होना चाहिये। यदि उसका इरादा कार्य से स्वयं को बाध्य करने का है तो पुष्टिकरण का सिद्धांत लागू नहीं होगा।

**उदाहरण :–**

अ ने ब को एक निश्चित मूल्य पर गैहूँ ज्वार खरीदने के लिए अधिकृत किया। परन्तु ब निर्देशों की अवहेलना करते हुए अधिक मूल्य पर स्वयं के नाम से स से गैहूँ खरीद लिये।

तत्पश्चात् अ ने ब के कार्यों की पुष्टि कर दी, परन्तु बाद में सुपुर्दगी लेने से मना कर दिया। स ने अ के विरूद्ध वाद प्रस्तुत किया। निर्णय हुआ कि ब का इरादा अ को बाध्य करने का नहीं था, अतः पुष्टिकरणी प्रभावी नहीं।

2. **नियोक्ता का अस्तित्व होना चाहिये** (There must be an existence of the principal) – अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करते समय नियोक्ता का अस्तित्व होना चाहिये। यदि एजेन्ट ने किसी ऐसे व्यक्ति या संस्था की ओर से कार्य किया है जिनका अस्तित्व हीं नहीं है तो पुष्टिकरण का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। इसी नियम के आधार पर यदि संचालकों ने प्रस्तावित कम्पनी की ओर से अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित कर लिया है, तो संचालक व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होंगे।

3. **नियोक्ता में अनुबन्ध करने की क्षमता का होना** – (Principal has a capacity of contract) – पुष्टिकरण के लिए यह एक अनिवार्य तत्व है कि नियोक्ता में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिये। कारण कि नियोक्ता को उत्तरदायी ठहराने के लिए क्षमता का होना अनिवार्य है। यदि किसी व्यक्ति ने अवयस्क की ओर से कार्य कर लिया तो अवयस्क के पुष्टिकरण का कोई कानूनी प्रभाव नहीं होगा।

4. **स्पष्ट या गर्भित** (It may be express or Implied) – स्पष्ट पुष्टि तब मानी जाएगी, जब शब्दों के उच्चारण द्वारा या लिखित में दी गई हो जबकि गर्भित पुष्टि का निर्धारण पक्षकारों के आचरण द्वारा किया जाता है।

**उदाहरण :–**

अ ने ब के लिए, बिना पूर्व स्वीकृति के घोड़ा खरीदा। ब ने स्पष्ट कुछ नहीं कहा, परन्तु उस घोड़े को स को बेच दिया। घोड़े को बेचना इस बात का प्रमाण है कि ब ने स्वीकृति प्रदान करदी है जो उसके आचरण से परिलक्षित हो रही है।

5. **निर्धारित या उचित समय में पुष्टि** (It must be in given time or reasonable time) – यदि समयावधि पूर्ण होने के पश्चात या उचित समयावधि व्यतीत होने के बाद पुष्टि की जाती है तो उस पुष्टि का कोई वैधानित प्रभाव नहीं होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. **नियोक्ता को सभी तथ्यों की जानकारी** (Disclosure of all material facts to principal) – यदि एजेन्ट ने तथ्यों के सक्रिय छिपाव द्वारा या मिथ्यावर्णन के द्वारा पुष्टि प्राप्त की है तो ऐसी पुष्टि नियोक्ता की इच्छा पर व्यर्थनीय होगी।

7. **कार्य नियोक्ता के अधिकार सीमा में हो** (The act must be within the scope of the principal) – यदि एजेन्ट ने नियोक्ता की ओर से कोई ऐसा कार्य किया हो जो नियोक्ता के भी अधिकार सीमा के बाहर हो तो नियोक्ता चाहते हुए भी एजेन्ट के कार्यों की पुष्टि नहीं कर सकता ।

8. **केवल वैध कार्यों की पुष्टि** (Ratification is available to the acts which are lawful) – ऐसे कार्य जो अनैतिक, अवैध या किसी व्यक्ति या सम्पत्ति को हानि पहुंचाने वाले होते है, उनकी पुष्टि नहीं की जा सकती । इसी प्रकार स्पष्ट रूप से व्यर्थ घोषित ठहरावों की पुष्टि नहीं की जा सकती।

9. **पूरे कार्य की पुष्टि** (Whole transaction can be ratified) – नियोक्ता यदि पुष्टि करना चाहे तो सम्पूर्ण कृत्य की पुष्टि करनी होगी। ऐसा सम्भव नहीं है कि लाभकारी कार्यों की पुष्टि कर दें और शेष को छोड़ दें।

10. **पुष्टिकरण की सूचना** (Ratification must be communicated) – यह सूचना न केवल एजेन्ट को बल्कि तृतीय पक्षकार को भी देनी होगी जिन्हें नियोक्ता बाध्य करना चाहता है।

11. **तृतीय पक्षकारों की हानि के लिये पुष्टि नहीं** (Ratification should not put third party to damage) – पुष्टिकरण की सुविधा ऐसे कार्यों के लिए भी सम्भव नहीं जिनका उद्देश्य किसी व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक या भौतिक रूप से क्षति पहुँचाना हो।

12. **भावी कार्यों का पुष्टिकरण नहीं** (Future deeds cannot be ratifief) – पुष्टिकरण का सिद्धांत केवल ऐसे कार्यों पर लागू होता है जो एजेन्ट द्वारा पहले ही किये जा चुके हों, अर्थात् भविष्य में होने वाले कार्यों का पुष्टिकरण सम्भव नहीं है।

13. **भूतगामी प्रभाव** (Retrospective effect) – पुष्टि चाहे किसी भी समय हो, यह भूतकाल से लागू होगी, अर्थात् जिस समय एजेन्ट द्वारा अनुबंध किया है, उस समय से पुष्टि प्रभावी होगी।

## F- एजेन्सी की समाप्ति (Termination of Agency)
### (धारा 201 से 210)

एजेन्ट एवं नियोक्ता के मध्य सम्बन्ध को एजेन्सी कहते है। अतः नियोक्ता एवं एजेन्ट के मध्य सम्बन्धों की समाप्ति को ही एजेन्सी की समाप्ति कहा जाता है। धारा 201 में समाप्ति के विभिन्न तरीकों का उल्लेख किया गया है। इसके साथ राजनियम द्वारा भी एजेन्सी की समाप्ति हो सकती है। सुविधा के दृष्टिकोण से एजेन्सी की समाप्ति को निम्नांकित दो भागों में बांटा जा सकता है –

(A) **पक्षकारों द्वारा एजेन्सी की समाप्ति** (Termination of agency by act of the parties)-पक्षकारों द्वारा एजेन्सी की समाप्ति इस प्रकार की जा सकती है –

1. **नियोक्ता द्वार खण्डन** (Revocation by the principal) – नियोक्ता, एजेन्ट को प्रदत्त अधिकारों का खण्डन करके एजेन्सी को समाप्त कर सकता है, बशर्ते कि एजेन्ट ने अपने अधिकार का उपयोग न किया हो। यदि चालू एजेन्सी है तो समाप्ति की सूचना देकर एजेन्सी को समाप्त किया जा सकता है। समाप्ति की सूचना एजेन्ट के साथ–साथ तृतीय पक्षकारों को भी दी जानी चाहिये।

2. **एजेन्ट द्वारा खण्डन** (Revocation by the agent) – नियोक्ता के साथ–साथ एजेन्ट भी खण्डन द्वारा एजेन्सी को समाप्त कर सकता है। दूसरे शब्दों में एजेन्ट, जैसे ही नियोक्ता को खण्डन की सूचना देगा, वैसे ही आगामी कार्यों के लिये एजेन्ट अपने दायित्वों से मुक्त हो जाएगा।

3. **पारस्परिक सहमति द्वारा** (By mutual consent) – जिस प्रकार एजेन्सी का निर्माण पारस्परिक सहमति के आधार पर होता है ठीक उसी प्रकार पारस्परिक सहमति के आधार पर एजेन्सी की समाप्ति भी हो सकती है।

धारा 205 के अनुसार यदि चालू एजेन्सी को किसी भी पक्षकार द्वारा समाप्त किया जाता है तो दूसरे पक्षकर की क्षतिपूर्ति करनी होगी, क्योंकि राजनियम की दृष्टि से यह अनुबन्ध भंग माना जाता है। इसी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रकार धारा 206 के अनुसार खण्डन की उचित सूचना देने का दायित्व खण्डनकर्त्ता का होगा अन्यथा पीड़ित पक्षकारों को क्षतिपूर्ति करनी होगी। धारा 207 के अनुसार खण्डन स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता हैं

(B) **राजनियम की क्रियाशीलता द्वारा एजेन्सी की समाप्ति** (Termination of agency by operation of law) – निम्नांकित दशाओं में राजनियम क्रियाशील होकर एजेन्सी को समाप्त कर सकता है –

1. **अनुबन्ध का निष्पादन** (Performance of contract) – यदि एजेन्सी का निर्माण किसी विशेष प्रयोजन के लिए हुआ है तो वह प्रयोजन पूरा होते ही एजेन्सी समाप्त मानी जायेगी। साथ ही उस दशा में भी एजेन्सी समाप्त मानी जायेगी जब उद्देश्य या प्रयोजन को पूरा करना असम्भव हो जाये।

2. **अवधि समाप्त होने पर** (Expiry of time) – यदि निश्चित समयावधि वाली एजेन्सी है तो अवधि समाप्त होते ही एजेन्सी समाप्त मानी जायेगी, चाहे कार्य पूरा हुआ हो या न हुआ हो।

3. **मृत्यु** (Death) – यदि दोनों पक्षकारों में किसी एक पक्षकार की मृत्यु हो जाये तो भी एजेन्सी समाप्त हो जायेगी। यदि नियोक्ता की मृत्यु हो जाती है एजेन्ट का कर्त्तव्य है कि नियोक्ता के हितों की रक्षा के लिये उचित सावधानी का प्रयोग करे। **(धारा – 209)**

4. **जब नियोक्ता अनुबन्ध करने की क्षमता खो देता हो** (When principal becomes incapable to contract) – यदि दिवालियापन या पागलपन या अन्य किसी कारण से अनुबन्ध के अयोग्य हो गया हो तो भी एजेन्सी समाप्त मानी जायेगी।

5. **विषयवस्तु के नष्ट होने पर** (Destruction of subject matter) – जब एजेन्सी की विषय वस्तु ही नष्ट हो जाये तो कुछ करने के लिये बचेगा ही नहीं। ऐसी स्थिति में स्वतः ही एजेन्सी समाप्त हो जाएगी।

6. **नियोक्ता एवं एजेन्ट, एक दूसरे के शत्रु राष्ट्र का नागरिक होने पर** (Principal and agent becomes alien enemy) – शत्रु राष्ट्र के नागरिक के साथ किया गया ठहराव पूर्णतः व्यर्थ होता है। यह लोकनीति के भी विरूद्ध है कि ऐसे राष्ट्र के साथ अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करें। अतः सम्बन्धित राष्ट्रों के मध्य युद्ध छिड़ जाने पर एजेन्सी अपने आप समाप्त मानी जायेगी।

7. **कम्पनी का विघटन होने पर** (Dissolution of a company) – कम्पनी का विघटन, वस्तुतः कृत्रिम व्यक्ति की मृत्यु मानी जाती है। अतः कम्पनी, एजेन्ट या नियोक्ता की भूमिका में होने पर कम्पनी का विघटन होते ही एजेन्सी समाप्त हो जायेगी।

## (G) - अखण्डनीय एजेन्सी (Ir-revocable agency)

सामान्यतया, नियोक्ता खण्डन द्वारा एजेन्सी को समाप्त कर सकता है, परन्तु कुछ दशाओं में नियोक्ता चाहते हुए भी एजेन्सी का खण्डन नहीं कर सकता, जिसे अखण्डनीय एजेन्सी कहा जाता है। ये दशाएँ इस प्रकार है –

1. **हितयुक्त एजेन्सी** (Agency coupled with interest) **(धारा 202)** – हितयुक्त एजेन्सी तब मानी जाती है जब एजेन्सी का निर्माण एजेन्ट के हितों की सुरक्षा के लिये किया गया हो। यह प्रावधान तब लागू नहीं होगा जब हित का निर्माण एजेन्सी की स्थापना के बाद किया गया हो।

**उदाहरण :–**

अ, ब का ऋणी है। अ ने ब को से ऋण लेने के लिए अधिकृत किया, जहाँ स, अ का ऋणी है ताकि ब अपने ऋण का निपटारा कर सके। यहाँ अ चाहते हुए भी ब के अधिकार को खण्डित नहीं कर सकता।

2. **जहां एजेन्ट ने व्यक्तिगत दायित्व उत्पन्न कर लिया हो –** (Where the agent has created a personal liability) **(धारा – 203)** – यदि एजेन्सी के दौरान एजेन्ट ने व्यक्तिगत दायित्व उत्पन्न कर लिया हो तो भी नियोक्ता एजेन्सी का खण्डन नहीं कर सकता है।

**उदाहरण :–**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अ ने ब को माल क्रय करने के लिये अधिकृत किया, साथ ही निर्देश दिया कि वह अपनी जेब से भुगतान कर दे। ब ने नकद भुगतान के आधार पर माल क्रय कर लिया। अब अ चाहते हुए भी ब के अधिकार का खण्डन नही कर सकता।

3. **जहाँ एजेन्ट ने अपने कर्त्तव्य का निष्पादन कर दिया हो** - (Where the agent has performed his duty) **(धारा 204)** जहां एजेन्ट ने अधिकृत कार्य का निष्पादन कर दिया है जिसके परिणामस्वरूप नियोक्ता एवं तृतीय पक्षकार के मध्य वैधानिक सम्बन्ध स्थापित हो गया हो तो भी नियोक्ता खण्डन द्वारा एजेन्सी को lekIr ugha dj ldrk A

## H- नियोक्ता के प्रति एजेन्ट के कर्त्तव्य (Duties of agent towards his principal) (धारा 211 से 218)

**एक एजेन्ट को एजेन्सी के दौरान निम्नांकित कर्त्तव्यों की अनुपालना करनी होती है –**

1. **निर्देशानुसार कार्य करना** (To carry out the business according to the directions) **(धारा 211)** – एजेन्ट को नियोक्ता के निर्देशानुसार कार्य करना होगा। यदि स्पष्ट निर्देश न हो तो व्यापारिक परम्परा एवं रीति रिवाज के अनुसार कार्य करना होगा। ऐसा न करने पर हुई हानि की पूर्ति नियोक्ता को करनी होगी।

2. **उचित योग्यता, चातुर्य एंव सावधानी से कार्य करना** (To carry out the work with due care, skill and deligence) **(धारा 212)** – एजेन्ट को एजेन्सी के दौरान उतनी योग्यता, चातुर्य एवं सावधानी का उपयोग करना होगा जितना कि एक विवेकशील व्यक्ति, समान दशाओं में, स्वयं के हितो की रक्षा के लिये करता है। लापरवाही की दशा में हुई हानि की पूर्ति करनी होगी।

3. **हिसाब रखना एवं प्रस्तुत करना** (Maintain account and hand over to his principal) **(धारा 213)** – एजेन्ट का कर्त्तव्य केवल हिसाब बनाये रखना ही नहीं है बल्कि आवश्यकता पड़ने पर हिसाब को प्रस्तुत भी करना चाहिये।

4. **कठिनाई की दशा में नियोक्ता को सूचित करना** (To inform the principal incase of difficulty) **(धारा 214)** – एजेन्ट का यह भी कर्त्तव्य है कि संकट के समय नियोक्ता से सम्पर्क कर आवश्यक दिशा–निर्देश प्राप्त करें एवं नियोक्ता के निर्देशानुसार ही समस्या का समाधान करें।

5. **स्वयं के नाम से व्यवहार न करें** (Not to transact on his own name) **(धारा 215)** – एजेन्सी का मुख्य प्रयोजन नियोक्ता की ओर से कार्य करते हुए अन्य पक्षकारों के साथ वैधानिक सम्बन्ध स्थापित करना होता है। अतः स्वयं के नाम से व्यवहार करना तो प्रत्यक्षः कर्तव्य भंग करना है।

6. **गुप्त लाभ न कमाना** (Not to earn secret profit) **(धारा 216)** – यदि एजेन्सी कारोबार के दौरान एजेन्ट न कोई गुप्त लाभ कमाया है तो उसे नियोक्ता को सुपुर्द करना होगा।

7. **नियोक्ता की ओर से प्राप्त धन, नियोक्ता को सुपुर्द करना** (To pay sums received for the principal) **धारा 218)** धारा 117 के अनुसार प्राप्त राशि का समायोजन करने के पश्चात् शेष राशि नियोक्ता को सुपुर्द करनी होगी।

8. **नियोक्ता की मृत्यु, पागलपन एवं दिवालिया की दशा में उसके हितों की रक्षा करना** (To preserve the interest of the principal incase of his death, insanity and insolvency) **(धारा 209)** – मृत्यु, पागलपन एवं दिवालिया की दशा में भी एजेन्ट का यह कर्तव्य है कि नियोक्ता के हितों की रक्षा के लिये उचित कदम उठायें जैसा कि एक विवेकशील व्यक्ति स्वयं के हितो के लिये प्रयास करता है।

9. **प्राप्त सूचना का नियोक्ता विरूद्ध उपयोग न करें** (Not to use information against the principal) – कोई भी सूचना जो एजेन्सी कारोबार से सम्बन्धित है, नियोक्ता को सूचित करनी होगी। सूचना को रोके रखना या प्राप्त सूचना का दुरूपयोग कने पर एजेन्ट हुई हानि के लिये नियोक्ता के प्रति उत्तरदायी होगा।

10. **विपरीत स्वामित्व न जमाना** (Not to make an adverse title) – नियोक्ता से जो भी माल या वस्तुएं प्राप्त होती है, उनका उपयोग एजेन्ट के रूप में ही करना होगा। एजेन्ट का यह कर्तव्य नहीं है कि नियोक्ता के माल पर स्वयं का या किसी तीसरे पक्षकार का स्वत्व सिद्ध करने का प्रयास करें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

11. **व्यक्तिगत हितों एवं कर्तव्य के बीच संघर्ष को टालना** (Avoid Conflict between duty and interest) – यदि एजेन्ट का नियोक्ता के प्रति कर्तव्य एवं उसके व्यक्तिगत हितों के बीच टकराहट हो तो कर्तव्य को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जब तक कि अपने हितों के सम्बन्ध में नियोक्ता को पूर्ण अवगत न करा दिया हो।

<u>उदाहरण –</u>

अ ने ब को अंश खरीदने के लिये अधिकृत किया। ब ने अ को बिना प्रकट किये स्वंय के अंश, अ के लिये खरीद लिये। निर्णय हुआ कि अ अंश लेने के लिये बाध्य नहीं है। ***आर्म स्ट्रॉग बनाम जेकसन, 1977 के. बी. 822***

12. **अधिकारों के भार्रापण से बचना** (Avoid delegation of authority) **(धारा 190)** – एजेन्ट का यह कर्तव्य है कि धारा 190 एवं 194 के प्रावधानों को छोड़कर नियोक्ता से प्राप्त अधिकारों का भार्रापण किसी अन्य व्यक्ति को न करे।

## I- नियोक्ता के प्रति एजेन्ट के अधिकार **(Rights of agent against Principal)** (धारा 217, 219, से 225)

एजेन्ट का नियोक्ता के प्रति निम्नांकित अधिकार है –

1. **प्राप्त राशि को रोके रखना** – ;त्पहीज जव तमजंपद `नउेद्ध **(धारा 117)** – धारा 118 के अनुसार एजेन्ट का यह कर्तव्य है कि नियोक्ता के लिये प्राप्त धनराशि नियोक्ता को सुपुर्द करना। परन्तु धारा 117 के अनुसार प्राप्त राशि में से निम्नांकित प्रयोजनों के लिए कटौती कर सकता है :–
   1. नियोक्ता को प्रदत्त अग्रिम राशि
   2. एजेन्ट का पारिश्रमिक और
   3. आवश्यक व्यय की राशि
2. **पारिश्रमिक की राशि प्राप्त करने का अधिकार** (Right to receive remuneration) **(धारा 219–220)** – एजेन्ट का यह अधिकार है कि अपनी सेवाओं के लिए निर्धारित या उचित पारिश्रमिक की राशि प्राप्त करे। यह अधिकार तभी प्राप्त होगा जब एजेन्ट ने अनुबन्ध की शर्तानुसार कार्य कर लिया हो। (धारा – 219)

   यदि कार्य के दौरान एजेन्ट दुराचरण का दोषी रहा हो अथवा कार्य निर्देशानुसार नहीं किया गया हो तो पारिश्रमिक की राशि प्राप्त करने का अधिकार नहीं होगा। यहां तक कि क्षति होने पर क्षतिपूर्ति के लिये उत्तरदायी होगा। (धारा – 220)
3. **ग्रहणाधिकार** (Right to Lien) **(धारा 221)** – यदि कोई विपरीत शर्त न हो तो एजेन्ट अपने अधिकार में निहित माल, प्रपत्र एवं अन्य सामग्री तब तक रोके रख सकता है जब तक एजेन्ट की बकाया मांग पूरी नहीं हो जाती। यहां यह उल्लेखनीय है कि एजेन्ट को विशिष्ट ग्रहणाधिकार प्राप्त होता है परन्तु विशेष अनुबन्ध द्वारा सामान्य ग्रहणाधिकार भी प्राप्त हो सकता हैं
4. **क्षतिपूर्ति का अधिकार** – (Right of Indemnification) **(धारा 222, 223)** अपने अधिकार क्षेत्र के अधीन कार्य करते हुए एजेन्ट को किसी प्रकार की क्षति होती है तो क्षति की भरपाई नियोक्ता को करनी होगी। **(धारा 222)**परन्तु अधिकार सीमा के बाहर कार्य करते हुए किसी क्षति का सामना करता है तो उसके लिये नियोक्ता उत्तरदायी नहीं होगा। **(धारा – 223)**
5. **तृतीय पक्षकारों को हुई क्षति की राशि प्राप्त करना** (Right of Indemni-fication incase to pay third parties) **(धारा 224)**–एजेन्सी कारोबार को करते हुए किसी तीसरे पक्षकार को कोई क्षति पहुंची जिसके परिणामस्वरूप एजेन्ट ने तृतीय पक्षकार की क्षति की पूर्ति की। एजेन्ट इस प्रकार से चुकाई गई धनराशि नियोक्ता से प्राप्त कर सकता हैं
6. **नियोक्ता की लापरवाही एवं कार्यकुशलता में कमी के कारण हुई क्षति को प्राप्त करना** (Right to compensation incase of negligency and want of skill) **(धारा 225)** – यदि नियोक्ता की लापरवाही या चातुर्य के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अभाव में एजेन्ट को किसी प्रकार की क्षति हुई है तो उसकी क्षतिपूर्ति नियोक्ता को करनी होगी। एजेन्ट का यह अधिकार है कि नियोक्ता से क्षति की पूर्ति करे।

**उदाहरण :–**

अ ने ब के यहां भवन बनाने की सहमति दी। यह तय हुआ कि भवन बनाने के लिए निर्माण सामग्री इत्यादि चढ़ाने के लिए मंच बनाने का कार्य ब करेगा। ब ने लापरवाही से मंचान (Scaffolding) बनाया जिसके परिणामस्वरूप अ को क्षति पहुंची। इस क्षति की पूर्ति ब को करनी होगी।

7. **माल को मार्ग में रोकने का अधिकार** (Right to stoppage goods in transit) – यदि एजेन्ट ने माल खरीदते समय व्यक्तिगत दायित्व उत्पन्न कर लिया अर्थात् माल व्यक्तिगत साख पर या नगद भुगतान करते हुए खरीदा गया है तो एजेन्ट विक्रेता का स्थान ग्रहण कर लेगा। अर्थात् एजेन्ट अदत्त विक्रेता की तरह माल dks ekxZ esa jksd ldrk gS tc rd fd fu;ksDrk Hkqxrku izLrqr ugha dj nsrkA

## J- तीसरे पक्षकारों के साथ अनुबन्धों पर एजेन्सी का प्रभाव (Effects of Agency on Contracts with Third Persons)

**(धारा 226 से 238)**

इस प्रभाव को जानने हेतु सम्पूर्ण विषय वस्तु को सुविधा के दृष्टिकोण से निम्नांकित चार भागों में बांटा जा सकता है –

(A) **तृतीय पक्षकारों के प्रति नियोक्ता का दायित्व** – (Responsibility of principal towards third parites) यदि एजेन्ट ने अधिकार सीमा के भीतर, नियोक्ता के नाम से एवं यदि आवश्यकता हो तो पुष्टि के आधार पर कार्य किया है तो एजेन्ट द्वारा किये गये कार्यों के लिये नियोक्ता ही उत्तरदायी होगा, एजेन्ट का कोई व्यक्तिगत दायित्व नहीं होगा। नियोक्ता के दायित्व को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

1. **एजेन्ट के अधिकृत कार्यों के लिए दायित्व** – (Responsbility of the authorised work of the agent) **(धारा 226)** – एजेन्ट के द्वारा किया गया कार्य नियोक्ता का कार्य ही माना जाता है , जो इस अवधारणा पर आधारित है :– "Qui facit per alium facit per se." vFkkZr~ He who acts through another does by himself. इस प्रकार अधिकार सीमा के भीतर रहकर किये गये प्रत्येक कार्य के लिए नियोक्ता ही अन्य पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगा।

2. **अशंतः अनाधिकृत कार्य पृथक करने योग्य होने पर दायित्व** (Resposibility of the partly un-authorsed work that can be separated) **(धारा 227)** – यदि एजेन्ट ने कोई ऐसा कार्य किया है जिसका एक भाग अधिकृत है तो दूसरा भाग अनाधिकृत है, परन्तु अधिकृत एवं अनाधिकृत को पृथक किया जा सकता है। फलतः जो भाग अधिकृत है, उसके लिए नियोक्ता उत्तरदायी होगा जबकि अनाधिकृत कार्यों के लिये एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

3. **अंशतः अनाधिकृत कार्य पृथक करने योग्य न होने पर दायित्व** (Responssibility of the partly un-authorsed work that cannot be separated) **(धारा 228)** – इस स्थिति में सम्पूर्ण दायित्व एजेन्ट का ही होगा, नियोक्ता का कोई दायित्व नहीं होगा।

**उदाहरण :–**

अ ने ब को 10 भेड़ें खरीदने के लिए अधिकृत किया। ब ने 10 भेड़े एवं 10 मेमने 15,000/– रूपये के बदले खरीद लिये। अ पूरे अनुबन्ध का परित्याग कर सकता है।

4. **एजेन्ट को दी गई सूचना का प्रभाव** (Effect of notice to the agent) **(धारा 229)** – एजेन्सी के कारोबार के दौरान एजेन्ट को दी गई सूचना, नियोक्ता को दी गई सूचना ही मानी जाती है। नियोक्ता यह कहकर अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो सकता कि सूचना केवल एजेन्ट को ही दी गई है।

5. **जब नियोक्ता तृतीय पक्षकार को यह विश्वास दिलाता है कि एजेन्ट का अनाधिकृत कार्य अधिकृत ही है** (Where principal induces that agent's un-authorised acts as as authorised one) **(धारा**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

237) – यद्यपि एजेन्ट अधिकार सीमा के बाहर कार्य है परन्तु नियोक्ता तृतीय पक्षकार को यह विश्वास दिलाता है कि एजेन्ट का कार्य अधिकृत ही है तो ऐसे कार्यों के लिये नियोक्ता ही जवाबदेह होगा।

6. **एजेन्ट द्वारा मिथ्यावर्णन या कपट करने पर** (Mis-representation or fraud of agent) **(धारा 238)** यदि एजेन्ट ने अधिकार सीमा के भीतर रहते हुए कपट या मिथ्यावर्णन किया है तो नियोक्ता तृतीय पक्षकारों के प्रति जवाबदेह होगा।

7. **संकटकालीन कार्यों के लिये दायित्व** (Responsibility of the emergency arises) **(धारा 189)** – संकटकाल में एक एजेन्ट के समस्त कार्य कर सकता है जैसा कि एक विवेकशील व्यक्ति, समान परिस्थितियों में, स्वयं के हितों की रक्षा के लिये करता है। इस प्रकार किये गये कार्यों के लिये नियोक्ता ही उत्तरदायी होगा।

8. **एजेन्ट के दण्डनीय कार्यों के लिये दायित्व** (Responsibility of criminal act of the agent) – यदि अधिकार सीमा के भीतर एजेन्ट ने कोई दण्डनीय कार्य किया है जिसके परिणामस्वरूप तृतीय पक्षकार को कोई शारीरिक या सम्पति को नुकसान पहुंचा है तो इस क्षति की भरपाई नियोक्ता एवं एजेन्ट संयुक्त रूप से करेंगे। अर्थात् उनका दायित्व संयुक्त एवं पृथक–पृथक होगा।

## B. एजेन्ट का व्यक्तिगत दायित्व (Personal Liablity of an agent) (धारा 230, 23–234)

सामान्य नियम यह है कि एजेन्सी कारोबार में नियोक्ता ही उत्तरदायी होता है, एजेन्ट का कोई व्यक्तिगत दायित्व नहीं होता है। धारा 230 में स्पष्ट प्रावधान है, ''यदि कोई विपरीत शर्त न हो तो नियोक्ता की ओर से किये गए कार्यों के लिए एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से जवाबदेह नहीं होता है और न ही अनुबन्ध के निष्पादन के लिये उत्तरदायी होता है''

परन्तु निम्नांकित दशाओं में एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी माना जाता है –

1. **स्पष्ट या गर्भित ठहराव द्वारा** (Where there is express or implied agreement) – तृतीय पक्षकर के साथ अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करते समय, यदि यह शर्त हो कि अनुबंध भंग की दशा में एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा तो ऐसी स्थिति में एजेन्ट का व्यक्तिगत दायित्व माना जावेगा।

2. **विदेशी नियोक्ता** – (Foreign Principal) – यदि कोई विपरीत शर्त न हो तो विदेशी नियोक्ता के लिये कार्य करने पर एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी माना जाएगा क्योंकि इस स्थिति में एजेन्ट को ही नियोक्ता मानकर अन्य पक्षकार अनुबन्ध करता है।

3. **अप्रकट नियोक्ता की ओर कार्य** (Act for an undisclosed Principal) नियोक्ता होने के बावजूद भी एजेन्ट द्वारा तृतीय पक्षकार के साथ अनुबंध करते समय प्रकट न करना, अप्रकट नियोक्ता कहलाता है। इस दशा में भी एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से ही उत्तरदायी होता है क्योंकि तृतीय पक्षकार एजेन्ट को ही आधार मानकर अनुबंध करता है। नियोक्ता के सम्बन्ध में उसे कुछ भी जानकारी नहीं होती हैं

4. **अनुबंध के अयोग्य नियोक्ता की ओर कार्य करना** (Act for a principal who haven't any capacity to contract) – यदि एजेन्ट द्वारा ऐसे व्यक्तियों जैसे अवयस्क, अवस्वस्थ मस्तिष्क की ओर से कार्य किया जाता है जिन्हें उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता तो उस स्थिति में भी एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।

5. **स्वयं के नाम से हस्ताक्षर करें** (Agent signs a contract in his own name) – नियोक्ता का यह कर्तव्य है कि नियोक्ता के नाम से अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करे। यदि एजेन्ट स्वयं के नाम से, अपने हस्ताक्षर के अधीन कार्य करता है तो वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी माना जाएगा।

6. **ऐसे नियोक्ता की आरे से कार्य करना जिसका अस्तित्व न हो** (Act for a principal not in existence) – अस्तित्व के अभाव में तृतीय पक्षकार नियोक्ता के विरूद्ध वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता तो एजेन्ट को व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ठहरा सकता है। इसी नियम के आधार पर यदि प्रवर्तकों ने प्रस्तावित कम्पनी के माध्यम से कार्य किया है तो प्रवर्तक स्वयं ही अन्य पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होगें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. **अधिकार के बाहर कार्य करने पर** (Act beyond the scope of his authority) – यदि एजेन्ट ने अधिकार सीमा के बाहर कार्य किया है और नियोक्ता ने स्पष्ट या गर्भित रूप से उसके कार्य की पुष्टि नहीं की है तो भी एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी माना जाता है।

8. **जब हितयुक्त एजेन्सी हो** (Where agency is coupled with interest) – ऐसी स्थिति में हित की सीमा तक एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी माना जाएगा। साझेदारी फर्म में एक साझेदार एजेन्ट भी होता है और स्वामी भी। साथ ही प्रत्येक साझेदार का फर्म में हित होता है, अतः हित की सीमा तक एजेनट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

9. **अधिकार के बाहर कपट या मिथ्यावर्णन करने पर** (Where fraud and mis-representation is done beyond his authority) – ऐसा कपट या मिथ्यावर्णन जो अधिकार सीमा के बाहर रहकर किया हो, उनके लिए एजेन्ट व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी माना जाएगा।

10. **परम्परा एवं रीति के अनुसार** (As per the traditions and customs) – यदि अनुबंध में कोई विपरीत शर्त न हो और प्रचलित परम्परा या रीति के अनुसार एजेनट को उत्तरदायी ठहराने का प्रावधान हो तो भी एजेनट को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

11. **दण्डनीय कार्यों के लिए** (For criminal act) – दण्डनीय कार्यों के लिए भी एजेन्ट अपने पक्षकारों के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

## C - अप्रकट नियोक्ता (Undisclosed Principal)
**(धारा 231–232)**

ऐसा नियोक्ता जिसे तृतीय पक्षकारों के सन्मुख प्रकट न किया गया हो, अप्रकट नियोक्ता कहलाता है। इस मामले में एजेन्ट तृतीय पक्षकारों के सन्मुख अपने आपको स्वतन्त्र पक्षकार के रूप में प्रकट करता है। अप्रकट नियोक्ता की वैधानिक स्थिति इस प्रकार होगी –

1. **नियोक्ता अनुबन्ध के निष्पादन की मांग कर सकता है** – (Principal could demand for performance) – यदि अनुबंध का निष्पादन होना शेष है तो अप्रकट नियोक्ता अपने आपको तृतीय पक्षकार के सन्मुख प्रकट करते हुए अनुबन्ध के निष्पादन की मांग कर सकता हैं। यद्यपि यह कथन अजनबी लगता है परन्तु दोषी पक्षकार अर्थात् एजेन्ट को महत्व नहीं दिया जा सकता है।

2. **तृतीय पक्षकार निष्पादन की मांग को ठुकरा सकता है** (Third party can deny the demand of an undisclosed principal ) – तृतीय पक्षकार यह सिद्ध कर दे कि यदि उसे यह जानकारी होती कि सम्बन्धित व्यक्ति नियोक्ता न होकर एजेन्ट है तो वह उसके साथ अनुबंधात्मक सम्बन्ध स्थापित नहीं करता तो ऐसी स्थिति में अप्रकट नियोक्ता की मांग को ठुकरा सकता हैं

3. **अप्रकट नियोक्ता का दायित्व** (Liability of an undisclosed principal) – यदि अप्रकट नियोक्ता निष्पादन की मांग करता है तो उसे वे समस्त शर्तें स्वीकार करनी होगी जो एजेन्ट एवं तृतीय पक्षकार के बीच निर्धारित हुई है।

## D- बनावटी एजेन्ट (Pretended Agent)
**(धारा 235 – 236)**

एक व्यक्ति एजेन्ट न होते हुए भी तृतीय पक्षकार के सन्मुख अनुबन्धात्मक सम्बन्ध स्थापित करते समय अपने आपको किसी अन्य व्यक्ति के एजेन्ट के रूप में प्रदर्शित करता है तो उसे बनावटी एजेन्ट कहते है। बनावटी एजेन्ट की वैधानिक स्थिति इस प्रकार है –

1. यदि नियोक्ता बनावटी एजेन्ट के कार्यों की पुष्टि नहीं करता है तो वह व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।
2. पुष्टिकरण के पश्चात् नियोक्ता उत्तरदायी होगा।
3. बनावटी एजेन्ट एवं तृतीय पक्षकार के बीच हुआ अनुबन्ध तृतीय पक्षकार की इच्छा पर व्यर्थनीय होगा क्योंकि यह कपट से प्रेरित है।
4. बनावटी एजेन्ट तृतीय पक्षकार की क्षतिपूर्ति के लिए भी उत्तरदायी माना जायेगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

## बोद्ध प्रश्न (Text Questions)

1. एजेन्ट एवं नियोक्ता को परिभाषित कीजिये। क्या एजेन्सी अनुबन्ध के लिए प्रतिफल अनिवार्य है ?(5 अंक)
2. नियोक्ता के दायित्व की क्या सीमा होगी जब एजेन्ट ने अधिकारों के बाहर कार्य किया हो ?(5 अंक)
3. उप–एजेन्ट को परिभाषित कीजिये। एक एजेन्ट उप–एजेन्ट की नियुक्ति कब कर सकता है ?(5 अंक)
4. अखण्डनीय एजेन्सी की विवेचना कीजिये। (5 अंक)
5. 'एजेन्ट नियोक्ता से प्रदत्त अधिकारों का भार्रापण नहीं कर सकता है।' समीक्षा कीजिये। (5 अंक)
6. 'पुष्टिकरण के सिद्धांत' से आपका क्या अभिप्राय है ? (5 अंक)
7. नियोक्ता, एजेन्ट एवं उप–एजेन्ट के मध्य सम्बन्धों की विवेचना कीजिये। (5 अंक)
8. एजेन्ट के अधिकारों की सीमा क्या है ? व्याख्या कीजिये। (5 अंक)
9. निम्नांकित पर टिप्पणियाँ लिखिये –
    1. एजेन्ट कौन हो सकता है ? (5 अंक)
    2. स्थानापन्न एजेन्ट । (5 अंक)
    3. अप्रकट नियोक्ता । (5 अंक)
    4. बनावटी एजेन्ट । (5 अंक)
10. एजेन्सी अनुबन्ध क्या है ? एजेन्सी की स्थापना कैसे होती है ? (15 अंक)
11. क्या एजेन्ट अधिकारों का भार्रापण कर सकता है ? उप एजेन्ट एवं स्थानापन्न एजेन्ट के परिपेक्ष्य में विवेचना कीजिये। (15 अंक)
12. एजेन्सी क्या है ? एजेन्सी के समाप्ति के तरीकों की विवेचना कीजिये। (15 अंक)
13. यदि कोई दूसरे व्यक्ति के माध्यम से कार्य करता है तो यह मानकर चला जायेगा कि वह कार्य स्वयं उसी व्यक्ति ने किया है' – इस कथन के सन्दर्भ में तृतीय पक्षकारों के साथ अनुबन्ध पर एजेन्सी के प्रभावों की विवेचना कीजिये। (15 अंक)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

# माल विक्रय अधिनियम 1930

**परिचयः–** इस आर्थिक जगत में क्रय–विक्रय दो महत्वपूर्ण क्रियाएं है। विक्रय किये बिना किसी भी अर्थव्यवस्था में कुछ भी घटित नहीं हो सकता है। अर्थात विक्रय किसी भी अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण क्रिया है जिसे किसी कानून द्वारा नियमित और नियन्त्रित किया जाता है। भारत में विक्रय अनुबन्धों को माल विक्रय अनुबन्ध अधिनियम द्वारा नियमित और नियन्त्रित किया जाता है। माल विक्रय अनुबन्ध अधिनियम भारत में 1 जुलाई 1930 से लागू किया गया। इस अधिनियम से पहले माल विक्रय अधिनियम के प्रावधान भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के ही एक भाग थे, किन्तु देश के वाणिज्यक विकास को ध्यान में रखकर माल विक्रय से सम्बंधित एक स्वतन्त्र अधिनियम की आवश्यकता महसूस की गई। परिणामस्वरूप भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की 76 से 123 तक की धाराओं को निकाल कर उन्हे नये सिरे से व्यवस्थित किया गया तथा कुछ नये प्रावधान जोड़कर माल विक्रय अधिनियम 15 मार्च 1930 को निर्माण कर दिया गया जिसे 1 जुलाई 1930 को जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत पर लागू किया गया।

**महत्वपूर्ण शब्दावली या परिभाषाऐं**

1. **क्रेताः–** ऐसा व्यक्ति जो माल क्रय करता है या क्रय करने का ठहराव या करार करता है, क्रेता कहलाता है।
2. **विक्रेताः–** विक्रेता ऐसा व्यक्ति होता है जो माल को बेचता या बेचने का करार करता है।
3. **कीमत :–** ऐसा प्रतिफल जो माल बेचने पर धन के रूप में प्राप्त होता है,इसे कीमत कहते है।
4. **सुपुर्दगी या परिदान :–** माल का स्वेच्छा से एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को स्वामित्व का हस्तान्तरण सुपुर्दगी कहलाता है।
5. **सुपुर्दगी योग्य स्थितिः–** माल सुपुर्दगी योग्य स्थिति में तब कहा जाता है जब वह ऐसी स्थिति में हो कि क्रेता उसका परिदान लेने के लिए अनुबन्ध के अधीन आबद्ध हो।
6. **माल पर स्वामित्व (हक) के दस्तावेज :–** इन दस्तावेजों के अन्तर्गत वहन–पत्र, डाक–वारण्ट, भण्डार–रक्षक का प्रमाण–पत्र, रेल रसीद, विभिन्न परिवहन दस्तावेज, माल सुपुर्दगी का आदेश और अन्य कोई दस्तावेज आती है जिसका सामान्य कारोबार के दौरान माल के स्वामित्व या नियन्त्रण के सबूत के रूप में काम आती है।
7. **दोष या कसूर :–** कसूर का तात्पर्य सदोष कार्य से है।
8. **भावी माल :–** भावी माल ऐसा माल है जिसे संविदा करने के पश्चात उत्पादित निर्मित या अर्जित करना है।
9. **माल :–** माल में वादयोग्य दावों और धन से भिन्न सभी प्रकार की चल सम्पति को शामिल किया जाता है, जिसमें स्टॉक तथा अंशपत्र, खड़ी फसलें एवं अन्य वस्तुऐं जो कि भूमि के अंग है किन्तु जिन्हें विक्रय के पहले अथवा विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत अलग किया जाना है, शामिल है।
10. **दिवालिया :–** दिवालिया व्यक्ति ऐसा व्यक्ति जिसने सामान्य कारोबार के दौरान अपने ऋणों का भुगतान करना बन्द कर दिया हो या जो अपने देय ऋणों का भुगतान नहीं कर सकता हो, चाहे उसने दिवालिएपन का कोई कार्य किया हो या नहीं।

**11.वाणिज्यक अभिकर्ता :–** वाणिज्यक अभिकर्ता ऐसा अभिकर्ता जो अभिकर्ता होने के

कारण व्यापार की परम्परा के अनुसार या तो माल के विक्रय का या विक्रय उद्धेश्य के लिए माल के हस्तान्तरण का या माल के क्रय का या माल की प्रतिभूति पर धन खड़ा करने का प्राधिकार रखता हो।

11. **सम्पति :–** सम्पति से तात्पर्य माल की साधारण सम्पति न कि केवल कोई विशेष सम्पति से होता है।
12. **माल की किस्म :–**माल की किस्म के अन्तर्गत उसकी स्थिति या दशा आती है।
13. **विशिष्ट माल :–** विशिष्ट माल ऐसा माल है जिसे विक्रय अनुबन्ध करते समय पहचाना और तय किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

## माल विक्रय अनुबन्ध का अर्थ

**धारा 4 (1) के अनुसार** :– वस्तु विक्रय अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके द्वारा विक्रेता एक निश्चित मूल्य के बदले किसी वस्तु या माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित करता है या हस्तान्तरित करने का ठहराव करता है।

अन्य शब्दों में विक्रय अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसमें एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को किसी प्रतिफल के बदले में अपने माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण करता है अथवा हस्तान्तरण करने के लिए सहमत होता है।

## माल विक्रय अनुबन्ध के आवश्यक तत्व

माल विक्रय अनुबन्ध के निम्नलिखित आवश्यक तत्व हैः–

1. **दो पक्षकार** :– विक्रय अनुबन्ध दो पक्षकारों के बीच किया जाता है। इनमें से एक क्रेता और दूसरा विक्रेता होता है। क्रेता और विक्रेता दो अलग–अलग व्यक्तियों का होना आवश्यक होता है। कोई भी व्यक्ति स्वय अपने आपको माल नहीं बेच सकता तथा कोई भी व्यक्ति अपने आप से माल खरीद भी नहीं सकता है। पति और पत्नि भी किसी विक्रय अनुबन्ध के दो पक्षकार हो सकते है। एक सह–स्वामी दूसरे सह–स्वामी से उसका हिस्सा खरीदने का अनुबन्ध कर सकता है।

2. **मालः**–माल विक्रय अनुबन्ध के लिए माल अथवा वस्तुओं का होना आवश्यक है। माल का आशय केवल चल सम्पति से है और चल सम्पति में सामान्य वस्तुओं के अतिरिक्त अंश, ऋणपत्र, व्यापार चिन्ह, एकस्व अधिकार न्यायालय की डिक्री आदि को सम्मलित किया जाता है। अचल सम्पति के विक्रय के अनुबन्ध इस अधिनियम के क्षेत्र के बाहर माने जाते है।

3.**मूल्य** :– माल विक्रय अनुबन्ध का एक महत्वपूर्ण तत्व मूल्य भी है। मूल्य का अर्थ माल बेचने के मौद्रिक प्रतिफल से लगाया जाता है। (धारा 2 (10)) यह ऐसा प्रतिफल है जिसे क्रेता विक्रेता को चुकाता है या चुकाने के लिए सहमत होता है। यदि मूल्य मुद्रा के अलावा किसी और रूप में चुकाया जाता है तो इसे विक्रय नहीं कहा जाएगा।

4. **स्वामित्व का हस्तान्तरणः**– इस अनुबन्ध के अन्तर्गत विकेता क्रेता को अपने माल का हस्तान्तरण भी करता है। माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण तत्काल या किसी भावी तिथि पर किया जा सकता है।किन्तु विक्रय अनुबन्ध में माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण ही आवश्यक है, अधिकार हस्तान्तरण आवश्यक नहीं है। इसी प्रकार माल के विक्रय अनुबन्ध में माल के साधारण स्वामित्व का हस्तान्तरण होता है न कि केवल विशेष स्वामित्व का हस्तान्तरण होता है। गिरवी अनुबन्ध में केवल विशेष स्वामित्व का ही हस्तान्तरण होता है।

5. **स्वतन्त्र सहमति** :– विक्रय अनुबन्ध पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति से ही होना चाहिए। किसी भी अधिनियम या नियम के अधीन माल के स्वामित्व का अनिवार्यतः हस्तान्तरण विक्रय नहीं होता है। लेकिन किसी ठहराव के अन्तर्गत किसी उत्पादक द्वारा अपने सम्पूर्ण उत्पादित माल को अपने उत्पादक संघ को अनिवार्यतःरूप से अन्तरित करना विक्रय ही होता है।

6. **सशर्त तथा शर्तरहितः**–माल विक्रय अनुबन्ध सशर्त अथवा शर्तरहित हो सकता है। (धारा 4(2))

7. **विक्रय या विक्रय का ठहरावः**– विक्रय अनुबन्ध एक विस्तृत शब्द है जिसमें विक्रय एवं भविष्य में माल बेचने का अनुबन्ध भी शामिल है।

8. **वैध अनुबन्ध के आवश्यक तत्व**

उपरोक्त तत्वों के अलावा विक्रय अनुबन्ध में एक वैध अनुबन्ध के आवश्यक लक्षणों का होना भी अनिवार्य है।

**विक्रय अनुबन्ध की औपचारिकताऐं**(धारा 5)

विक्रय अनुबन्ध करने के लिए किन्ही विशेष प्रकार की औपचारिकताओं का पालन नहीं करना पड़ता है। लेकिन धारा 5 में उन औपचारिकताओं का उल्लेख किया गया है जिन्हें विक्रय अनुबन्ध करते समय पूरा करना पड़ता है। ऐसी औपचारिकताऐं निम्नानुसार है :–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. **माल कय या विकय का प्रस्ताव**:– विकय अनुबन्ध के लिए आवश्यक है कि कोई एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को माल के कय या विकय का प्रस्ताव करें। (धारा 5 (1) )

2. **माल** :– वैध प्रस्ताव माल के कय या विकय का होना चाहिए। माल से आशय इस अधिनियम के तहत परिभाषित माल से है।

3. **मूल्य** :– माल को खरीदने या बेचने का वैध प्रस्ताव मूल्य के बदले होना चाहिए।

4. **स्वीकृति** :– इस अनुबन्ध में माल के कय या विकय के लिए किये गये प्रस्ताव की वैध स्वीकृति होनी चाहिए।

5. **सुपुर्दगी** :– विकय अनुबन्ध में माल की सुपुर्दगी के समय तथा विधि का उल्लेख होना चाहिए। अनुबन्ध में माल की तत्काल सुपुर्दगी अथवा किस्तों में सुपुर्दगी अथवा भावी सुपुर्दगी की व्यवस्था की जा सकती है।(धारा 5 (1) )

6. **मूल्य का भुगतान** :– विकय अनुबन्ध में मूल्य के भुगतान के समय एवं विधि के सम्बध में व्यवस्था होनी चाहिए। माल के मूल्य का तत्काल भुगतान अथवा किस्तों में भुगतान अथवा भविष्य में भुगतान किया जा सकता है।

7. **लिखित मौखिक या गर्भित** :–माल विकय अनुबन्ध लिखित मौखिक अथवा गर्भित हो सकता है। यह अंशतः लिखित एवं अंशतः मौखिक भी हो सकता है। यह गर्भित भी हो सकता है जिसे पक्षकारों के आचरण से भी समझा जा सकता है।

**बोध प्रश्न**

1. **विकय अनुबन्ध किसे कहते हैं?**
2. **माल विकय अधिनियम 1930 के तहत माल को परिभाषित कीजिए।**
3. **विकय अनुबन्ध के आवश्यक तत्व बताइये।**

**विकय और विकय का ठहराव**

विकय अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसमें विकय और विकय का ठहराव दोनों शामिल है। अन्य शब्दों में विकय अनुबन्ध एक विस्तृत शब्द है जिसमें निम्न सम्मिलित हैः–

1. विकय तथा

2. .विकय का ठहराव

उपरोक्त दोनों शब्दों का अलग–अलग अध्ययन करना आवश्यक है।

**विकय**– धारा 4 (3) के अनुसार –''जब विकय अनुबन्ध के अनुसार माल के स्वामित्व का विकेता से केता को हस्तान्तरण किया जाता है तो उसे विकय अनुबन्ध कहते हैं।''

**उदाहरण** – अ ब को अपनी मोटरसाइकल 25000 रूपऐ में बेचता है। यह विकय अनुबन्ध है, जहां विकेता (अ) अपनी मोटरसाइकल के स्वामित्व का हस्तान्तरण केता (ब) को 25000रूपऐ (मूल्य) के बदले करता है।

**ब्लैकस्टोन के अनुसार** –''किसी मूल्यवान प्रतिफल के बदले एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण ही विकय है। ''

इस प्रकार विकय में माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को मूल्य के बदले किया जाता है, जिसमें माल बेचने वाला विकेता और खरीदने वाला केता कहलाता है। विकय वैध तभी माना जाता है जब इसमें एक वैध अनुबन्ध के आवश्यक तत्व विद्यमान हो।

**विकय का ठहराव** :–माल विकय अधिनियम की धारा 4 (3)के अनुसार –''जब माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण भविष्य में किसी तिथि अथवा कुछ शर्तों को पूरा करने के बाद किया जाना है तो वह अनुबन्ध विकय का ठहराव कहलाता है। ''

**उदाहरण** – अ ब को अपनी साईकल 1500रूपए में 10 फरवरी को बेचने के लिए सहमत होता है। यह विकय का ठहराव है क्योंकि साईकल भविष्य में किसी तारीख को हस्तान्तरित की जाएगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपरोक्त धारा 4 (3) के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि विक्रय के ठहराव के अन्तर्गत माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण तुरन्त नहीं होता, विक्रय का ठहराव भविष्य में पूरा किये जाने वाला ठहराव है इसलिए इसे निष्पादनीय ठहराव कहते है।

**विक्रय का ठहराव कब विक्रय बनता है?**

विक्रय का ठहराव विक्रय तब बनता है जब विक्रय के ठहराव की अवधि समाप्त हो जाती है या स्वामित्व हस्तान्तरण के लिए सुनिश्चित शर्तें पूरी कर दी जाती है।(धारा 4 (4) )

**विक्रय एवं विक्रय के ठहराव में अन्तर**

विक्रय एवं विक्रय के ठहराव में अन्तर इस बात पर निर्भर करता है कि माल का हस्तान्तरण हो गया है या भविष्य में होना तय किया है। इसके अलावा भी इन दोनों में अन्तर के कई कारण हैं जो निम्नलिखित हैः–

| अन्तर का आधार | विक्रय | विक्रय का ठहराव |
|---|---|---|
| 1.स्वामित्व का हस्तान्तरण | विक्रय में माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण विक्रेता से क्रेता को तुरन्त हो जाता है। | इसमें माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण विक्रेता से क्रेता को तुरन्त नहीं होता है। |
| 2.अनुबन्ध की प्रकृति | विक्रय में अनुबन्ध का निष्पादन पहले होने के कारण इसे निष्पादित अनुबन्ध कहा जाता है। | इसमें विक्रय के ठहराव का निष्पादन होना शेष रहता है। अतः यह निष्पादनीय अनुबन्ध है। |
| 3.हानि की जोखिम | विक्रय के अन्तर्गत यदि माल की क्षति/हानि होती है और यदि माल विक्रेता के अधिकार में है तो भी हानि की जोखिम क्रेता की ही होती है। | इसमें हानि की जोखिम विक्रेता की होती है चाहे माल क्रेता के अधिकार में ही क्यों न हो। |
| 4.क्रेता द्वारा अनुबन्ध भंग | विक्रय में यदि क्रेता माल के मूल्य का भुगतान नहीं करता है या अनुबन्ध भंग करता है तो विक्रेता उस पर मूल्य वसूल करने के लिए वाद दायर कर सकता है। | विक्रय के ठहराव में यदि क्रेता मूल्य का भुगतान नहीं करता या अनुबन्ध भंग करता है तो विक्रेता केवल हर्जाने के लिए वाद चला सकता है,मूल्य के लिए नही। |
| 5. माल का पुनः विक्रय | विक्रय की दशा में माल का क्रेता माल का पुनः विक्रय आसानी से कर सकता है। | इस दशा में माल के पुनः विक्रय में कठिनाई आती है क्योंकि विक्रेता द्वारा अनुबन्ध भंग करने पर विक्रय के ठहराव को पूरा करना कठिन हो जाता है। |
| 6. माल के विरूद्ध अधिकार | इसमें क्रेता को वस्तु या माल के विरूद्ध पूर्ण स्वामित्व मिल जाता है, इसलिए वह उस वस्तु का प्रयोग समस्त विश्व के विरूद्ध(त्पहीज पद तमउ)कर सकता है। | यह एक ठहराव होने के कारण केवल क्रेता या विक्रेता को ही एक दूसरे के विरूद्ध कर्तव्य भंग की दशा में वाद प्रस्तुत करने का अधिकार (Right in personam)होता है। |
| 7. माल का प्रकार | विक्रय की दशा में माल निश्चित होता है। | इस दशा में माल अनिश्चित होता है। |

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

| | | |
|---|---|---|
| 8. विक्रेता का दिवालिया होना | विक्रय की दशा में यदि विक्रेता दिवालिया हो जाता है तो क्रेता अपने माल को ऑफीशियल रिसीवर से प्राप्त कर सकता है क्योंकि वह माल का स्वामी होता है। | ऐसी दशा में क्रेता माल पाने का अधिकार नही रखता। वह केवल अपने आनुपातिक अंश के लिए दावा कर सकता है। |
| 9. क्रेता का दिवालिया होना | यदि विक्रय की दशा में क्रेता दिवालिया हो जाता है तो विक्रेता को क्रेता का माल उसके ऑफीशियल रिसीवर के हवाले करना होगा। विक्रेता केवल आनुपातिक अंशदान प्राप्त कर सकेगा। | इस दशा में यदि विक्रेता को पूर्ण भुगतान नहीं दिया जाता है तो वह क्रेता को माल देने से इन्कार कर सकता है। |
| 10. शर्त | विक्रय में माल हस्तान्तरण की शर्त नही होती है। | विक्रय का ठहराव शर्तयुक्त होता है। |
| 11.अदत विक्रेता के अधिकार | विक्रय की दशा में विक्रेता को मूल्य का भुगतान नहीं मिलने पर उसे वे सभी अधिकार मिल जाते है जो अदत विक्रेता को प्राप्त होते हैं। | विक्रय के ठहराव की दशा में विक्रेता को केवल अनुबन्ध भंग कर क्रेता के विरूद्ध वाद प्रस्तुत करने का अधिकार होता है। |
| 12. क्रेता के अधिकार | यदि विक्रेता अनुबन्ध भंग करता है तो क्रेता हर्जाने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।यदि विक्रेता ने माल पुनः विक्रय कर भी दिया हो तो क्रेता तीसरे पक्षकार से माल प्राप्त कर सकता है। | इस दशा में क्रेता विक्रेता के विरूद्ध हर्जाने के लिए वाद दायर कर सकता है। |

**बोध प्रश्न** **1. विक्रय का ठहराव क्या है?**

**2. विक्रय का ठहराव कब विक्रय बन जाता है?**

**3.विक्रय और विक्रय के ठहराव में अन्तर स्पष्ट कीजिए।**

**विक्रय और किराया–क्रय अनुबन्ध**

विक्रय के अन्तर्गत माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण एक पक्षकार से दूसरे पक्षकार को मूल्य के बदले तत्काल कर दिया जाता है। एक किराया क्रय अनुबन्ध विक्रय नहीं है।

**किराया–क्रय अधिनियम 1972 की धारा 2(ब)** से स्पष्ट होता है कि किराया–क्रय ठहराव से तात्पर्य एक ऐसे ठहराव से है जिसके अन्तर्गत माल का अधिकार उसके स्वामी द्वारा किराया–क्रेता को इस शर्त पर सौंप दिया जाता है कि वह माल की समस्त राशि पूर्व निर्धारित किश्तों में चुकाएगा तथा किराया–क्रेता को माल का स्वामित्व तब हस्तान्तरित किया जाएगा जब वह अन्तिम किश्त का भुगतान कर देगा।

यदि किराया–क्रेता किश्तों के भुगतान में त्रुटि करता है या किराया–क्रय अनुबन्ध की शर्तों को भंग करता है तो विक्रेता को इस अनुबन्ध को भंग करने का अधिकार होता है तथा वह इस माल को पुनः अपने कब्जे में ले सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University, Ladnun

धारा 2 (ब) से यह स्पष्ट होता है कि इस अनुबन्ध में क्रेता को माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण तभी होता है जबकि उसने अन्तिम किश्त का भुगतान कर दिया हो। इससे पूर्व क्रेता शुल्क (किश्त) के बदले निक्षेपग्रहीता की स्थिति में होता है।

**किराया–क्रय के आवश्यक तत्व–**

किराया–क्रय अनुबन्ध के आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैः–

1. यह एक ऐसा ठहराव है जिसमें किसी माल का स्वामी अपने माल को किराये पर देता है।
2. इसमें किराया–क्रेता के पास दो विकल्प होते है प्रथम वह माल को कभी भी वापिस दे सकता है, दूसरा वह उस माल की समस्त किश्तें चुका कर उसे खरीद सकता है।
3. किराया–क्रय अनुबन्ध लिखित एवं हस्ताक्षर युक्त होना चाहिए।
4. इसमें विक्रेता अपने माल को समस्त किश्तों का भुगतान प्राप्त करने के बाद बेचने के लिए सहमत होता है।
5. यदि किराया–क्रेता किश्त भुगतान में कोई त्रुटि करता है तो विक्रेता अपने माल को पुनः अपने नियन्त्रण या अधिकार में ले सकता है।

**किराया–क्रय अनुबन्ध एवं विक्रय में अन्तर**

विक्रय और किराया–क्रय अनुबन्ध में अन्तर निम्नलिखित हैः–

1. **ठहरावों की संख्या–**विक्रय में केवल एक ही ठहराव होता है।

किराया–क्रय अनुबन्ध में दोठहराव होते है प्रथम सशुल्क निक्षेप का ठहराव तथा द्वितीय माल के विक्रय का ठहराव।

2. **अधिकार–**विक्रय की दशा में क्रेता का माल के स्वामी के रूप में अधिकार होता है।

किराया–क्रय की दशा में क्रेता का माल पर एक निक्षेपग्रहीता की तरह अधिकार होता है।

3. **स्वामित्व का हस्तान्तरण–**विक्रय के अन्तर्गत माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण तत्काल हो जाता है।

किराया–क्रय के अन्तर्गत केवल माल के अधिकार का हस्तान्तरण होता है। उसके स्वामित्व का हस्तान्तरण सम्पूर्ण किश्तों के भुगतान के बाद होता है।

4. **पक्षकारों की स्थिति–**विक्रय की दशा में क्रेता माल के स्वामी की स्थिति में होता है।

किराया–क्रय में क्रेता की स्थिति एक निक्षेपग्रहीता की भांति तब तक बनी रहती है जब तक कि वह अन्तिम किस्त का भुगतान नही कर देता है।

5. **स्वत्व का तृतीय पक्षकार को हस्तान्तरण–**विक्रय में क्रेता तृतीय पक्षकार को माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण कर सकता है।

जबकि किराया–क्रय के अन्तर्गत किरायेदार माल के स्वत्व का माल के स्वामी की सहमति के बिना तृतीय पक्षकार को हस्तान्तरण नहीं कर सकता है।

6. **अनुबन्ध का परित्याग–**एक विक्रेता और एक क्रेता दोनों में से कोई भी विक्रय अनुबन्ध का परित्याग नहीं कर सकता है, यदि दोनों में से कोई भी ऐसा करता है तो उसे हर्जाने का भुगतान करना होता है। किराया–क्रय अनुबन्ध में यदि किराया–क्रेता अनुबन्ध का परित्याग करता है तो विक्रेता अपने माल को अपने अधिकार में ले सकता है।

7. **भुगतान प्राप्त न होने पर–**यदि विक्रय किये गये माल का पूरा भुगतान नही होता है तो विक्रेता क्रेता पर ही वाद प्रस्तुत कर सकता है।

किराया–क्रय में समस्त किस्तों का भुगतान न मिलने पर विक्रेता क्रेता से माल का पुनः प्राप्त कर सकता है तथा समस्त प्राप्त किस्तों की राशि जब्त कर सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. **माल का पुनः अधिकार–**विक्रय के अन्तर्गत जब माल के स्वत्व का हस्तान्तरण एक बार क्रेता को हो जाता है तो विक्रेता उसे पुनः अपने कब्जे में नही ले सकता है।

किराया–क्रय में भुगतान में त्रुटि या ठहराव की अन्य शर्तों को भंग करने की दशा में माल का स्वामी माल को पुनः अपने अधिकार में ले सकता है।

9. **किस्तों का उपयोग–**विक्रय की दशा में माल के मूल्य का भुगतान यदि किस्तों में किया जाता है तो प्रत्येक किस्त का भुगतान मूल्य के हिस्से का भुगतान माना जाता है।

किराया–क्रय पद्धति में प्रत्येक किस्त को किराये के रूप में तब तक माना जाता है, जब तक कि अन्तिम किस्त का भुगतान नही हो जाता है।

10 .**लिखित ठहराव–**विक्रय का अनुबन्ध लिखित, मौखिक अथवा गर्भित हो सकता है।

जबकि किराया–क्रय अनुबन्ध लिखित और हस्ताक्षरयुक्त होना अनिवार्य है।

11. **अधिनियम–**विक्रय पर माल विक्रय अधिनियम 1930 लागू होता है।

जबकि किराया–क्रय पर किराया–क्रय अधिनियम 1972 लागू होता है।

**विक्रय और निक्षेप**

विक्रय में एक पक्षकार (विक्रेता) दूसरे पक्षकार (क्रेता) को मूल्य के बदले माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण करता है। निक्षेप के अन्तर्गत माल के अधिकार का हस्तान्तरण अस्थायी उद्धेश्य के लिए एक पक्षकार से दूसरे पक्षकार को किया जाता है।

**अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 148 के अनुसारः**– '' जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को किसी उद्धेश्य से इस अनुबन्ध पर माल सुपुर्द करता है कि किसी निश्चित उद्धेश्य के पूरा हो जाने पर माल की सुपुर्दगी देने वाले को वापिस दे दी जाएगी अथवा उसके निर्देशानुसार उस माल की व्यवस्था कर दी जाएगी तो ऐसे अनुबन्ध को निक्षेप अनुबन्ध कहते है।

**विक्रय और निक्षेप में अन्तर**

| अन्तर का आधार | विक्रय | निक्षेप |
|---|---|---|
| 1. स्वामित्व का हस्तान्तरण | विक्रय के अन्तर्गत माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण होता है। | निक्षेप में केवल माल के अधिकार का हस्तान्तरण होता है न कि स्वामित्व का। |
| 2. उद्धेश्य | विक्रय का उद्धेश्य माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण करना होता है। | निक्षेप का उद्धेश्य किसी माल की सुरक्षा, उपयोग या एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना हो सकता है। |
| 3. माल का उपयोग | विक्रय होने पर क्रेता माल का प्रयोग अपनी इच्छा से कर सकता है। | निक्षेप में निक्षेपग्रहीता माल का प्रयोग अपनी इच्छानुसार नही कर सकता वह शर्तों के अनुसार ही माल का उपयोग कर सकता है। |
| 4. प्रतिफल | विक्रय में मौद्रिक प्रतिफल होना अनिवार्य है। | निक्षेप बिना प्रतिफल अर्थात् निःशुल्क भी हो सकता है। |
| 5. माल की वापसी (लौटाना) | विक्रय में माल क्रेता से विक्रेता | निक्षेप में निश्चित समय पूरा |

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

| | | |
|---|---|---|
| | को वापस नही दिया जाता है। | होने पर या उद्धेश्य पूरा होने पर माल अनिवार्य रूप से निक्षेपकर्ता को लौटाया जाता है। |
| 6. अधिनियम | विक्रय को माल विक्रय अधिनियम 1930 की धारा की धारा 4 (3) में परिभाषित किया गया है। | निक्षेप को भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 की धारा 148 में परिभाषित किया गया है। |
| 7. हस्तान्तरण का समय | विक्रय में माल का स्थायी हस्तान्तरण होता है। | निक्षेप में माल का अस्थायी हस्तान्तरण होता है। |
| 8. माल की हानि | यदि बेचा हुआ माल खो जाता है या नष्ट हो जाता है तो माल की हानि का दायित्व क्रेता ही वहन करेगा। | यदि निक्षेपित माल की हानि निक्षेपग्रहीता की असावधानी या लापरवाही के कारण हुई है तो ऐसी हानि निक्षेपग्रहीता वहन करेगा। |
| 9. व्ययों का भुगतान | माल के विक्रय के बाद विक्रेता किसी भी प्रकार के खर्चों के लिए दायी नही होता है। | निक्षेप में यदि निक्षेपग्रहीता ने माल की देखभाल के संबंध में कोई व्यय किया है तो निक्षेपकर्ता को ऐसे व्यय निक्षेपग्रहीता को चुकाने होंगे। |

**विक्रय अनुबन्ध तथा सेवा एवं श्रम का अनुबन्ध**

विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत जहां माल के स्वत्व का हस्तान्तरण एक निश्चित प्रतिफल के बदले विक्रेता से क्रेता को किया जाता है तो उसे विक्रय कहते है। लेकिन सेवा एवं श्रम के अनुबन्ध ऐसे अनुबन्ध है जिसमें एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को कच्ची सामग्री या माल दिया जाता है तथा दूसरा पक्षकार उस माल या सामग्री पर अपना श्रम एवं चातुर्य का उपयोग करके उसे पारिश्रमिक के बदले लौटा देता है। अन्य शब्दों में एक पक्षकार द्वारा कच्ची सामग्री देने पर जब दूसरा पक्षकार उस सामग्री पर अपने चातुर्य का प्रयोग करके उसे नये रूप में लौटाता है तो इसे सेवा एवं श्रम का अनुबन्ध कहते है। **जैसे** एक व्यक्ति द्वारा जन्मदिन के निमन्त्रण पत्र छपवाने के लिए छपाई करने वाले व्यक्ति को कार्डस और लिफाफे देना सेवा एवं श्रम का अनुबन्ध है। किन्तु एक फोटोग्राफर द्वारा फोटो बेचना विक्रय अनुबन्ध है [Newmen v/s Lipman (1951) 1 KB333, इसी प्रकार चित्रकार को चित्र बनाने के लिए रंग और कैनवास आदि उपलब्ध करवाना सेवा एवं श्रम का अनुबन्ध है। [Robinson v/s Graves (1935) 1KB579,

**विक्रय तथा सेवा एवं श्रम अनुबन्ध में अन्तर**

विक्रय तथा सेवा एवं श्रम के अनुबन्ध में अन्तर निम्न प्रकार है:–

1. विक्रय माल विक्रय अधिनियम1930 द्वारा नियमित एवं नियन्त्रित है, जबकि सेवा एवं श्रम अनुबन्धों पर माल विक्रय अधिनियम लागू नही होता है।
2. विक्रय विक्रेता से क्रेता को माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण से सम्बन्धित है, जबकि सेवा एवं श्रम के अनुबन्ध श्रम एवं चातुर्य के उपयोग से सम्बन्धित है जहां सेवा प्राप्त करने वाला व्यक्ति स्वंय आवश्यक कच्ची सामग्री उपलब्ध करवाता है।
3. विक्रय में माल की सुपुर्दगी अनिवार्य हैं जबकि सेवा एवं श्रम के अनुबन्ध में यह माल की सुपुर्दगी आनुषंगिक (incidental) है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. विक्रय का अनुबन्ध सदैव शर्तयुक्त नही होता है जबकि सेवा एवं श्रम के अनुबन्ध में यह शर्त होती है कि एक पक्षकार आवश्यक कच्चा माल उपलब्ध करवायेगा और दूसरा अपने श्रम और चातुर्य का उपयोग करेगा।

**विक्रय और वस्तु विनिमय**

विक्रय और वस्तु विनिमय दोनों भिन्न–भिन्न है। विक्रय के अन्तर्गत माल के स्वामित्व का अन्तरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को होता है जिसमें मूल्य चुका दिया जाता है या चुकाया जाना है। वस्तु विनिमय के अन्तर्गत माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को वस्तु के बदले किया जाता है। अन्य शब्दों में जब माल के बदले माल का हस्तान्तरण किया जाता है तो इसे वस्तु विनिमय कहते है।

**विक्रय और वस्तु विनिमय में अन्तर**

विक्रय और वस्तु विनिमय में अन्तर अग्रलिखित हैः–

1. विक्रय सदैव मौद्रिक प्रतिफल के बदले होता है। जबकि वस्तु विनिमय वस्तु के बदले वस्तु का हस्तान्तरण है।
2. विक्रय के अन्तर्गत माल का आदान–प्रदान तभी होता है जब उसका मूल्यांकन मुद्रा में किया जाए, जबकि वस्तु विनिमय में मुद्रा रूपी तत्व अनुपस्थित रहता है।

**विक्रय और उपहार**

यद्यपि विक्रय और उपहार दोनों में वस्तु के स्वामित्व का हस्तान्तरण किया जाता है, लेकिन फिर भी दोनों में गहन अन्तर है। विक्रय में प्रतिफल की विद्यमानता रहती है जबकि उपहार बिना प्रतिफल के होता है। अन्य शब्दों में वस्तु का ऐसा हस्तान्तरण जो बिना प्रतिफल के किया जाता है उसे उपहार कहते है और दूसरी ओर जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को प्रतिफल की एवज में वस्तु का स्वामित्व प्रदान करता है तो इसे विक्रय कहते है।

**प्रश्न**

1. **किराया–क्रय अनुबन्ध किसे कहते है?**
2. **किराया–क्रय के अन्तर्गत क्रेता को माल का स्वामित्व कब मिलता है।**
3. **निक्षेप के विभिन्न उद्धेश्य बताइये।**
4. **सेवा और श्रम अनुबन्ध को परिभाषित कीजिए।**
5. **ग ल को मकान बनाने हेतु ईटें, चूना और पत्थर उपलब्ध करवाता है। ग द्वारा ऐसी कच्ची सामग्री की आपूर्ति किस अनुबन्ध के तहत आती है।**

**माल और उसका वर्गीकरण अथवा माल विक्रय अनुबन्ध की विषय वस्तु**

माल विक्रय अनुबन्ध की धारा 6 कहती है कि माल विक्रय अनुबन्ध की विषय वस्तु होता है धारा 2 (7) के अनुसार माल शब्द में सभी प्रकार की चल सम्पति शामिल है। इसमें वाद योग्य दावे तथा मुद्रा शामिल नही है। जमीन के साथ जुड़ी हुई वस्तुएं, यदि उन्हे अलग किया जा सकता है तो वे भी माल में सम्मलित है। जमीन पर खड़े पेड़ यदि उन्हे काटने से नही रोका जाता है तो उन्हे भी माल माना जाता है। इस प्रकार स्टॉक तथा अंश पत्र ख्याति कॉपीराइट ट्रेडमार्क सभी प्रकार की उपजें पुराने सिक्के पानी बिजली तथा गैस आदि माल माने जाते है।

उपरोक्त परिभाषा के अध्ययन के पश्चात कहा जा सकता है कि –

1. वाद योग्य दावे माल नही होते है। क्योंकि वाद योग्य दावे के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को अन्य व्यक्ति के विरूद्ध धन वसूली का अधिकार मिलता है। इस अधिकार को हस्तान्तरित नही किया जा सकता है। अतः इसका विक्रय सम्भव नही है।
2. इसी प्रकार मुद्रा को भी माल नही माना गया है। क्योंकि माल का भुगतान नकद में होना चाहिए किन्तु जो मुद्रा चलन में नही है वह माल ही मानी जाती है।
3. उगी हुई फसलें और घास माल है क्योंकि इन्हे खरीदने और बेचने से पहले जमीन से अलग किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. धातु और पत्थर भी माल माने जाते है।
5. किसी साझेदार का साझेदारी फर्म में हित माल माना जाता है। सभी प्रकार की उपजें जैसे फल और सब्जियां भी माल की श्रेणी में आती है।
6. अंश आवंटन से पहले अंश माल कहे जाते है इसी प्रकार ऋण पत्र भी आवंटन से पूर्व माल माने जाते है।
7. पुराने सिक्के और पुराने नोट भी माल कहे जाते है। न्यायालय की डिक्री भी माल मानी जाती है।
8. ख्याति, कॉपीराइट, पेटेन्ट, पानी, बिजली और गैस भी माल है। इसी प्रकार विदेशी मुद्रा को भी माल माना गया है।

उपरोक्त के अलावा ऋण पत्र जिनका आवंटन नही हुआ है, सेवा, और अचल सम्पति माल नही माने जाते है। इसी प्रकार होटल रेल्वे और एयर लाइन्स इत्यादि द्वारा अपने यात्रियों को खाद्य पदार्थ परोसना माल की श्रेणी में नही आता है।

**माल का वर्गीकरण**

धारा 6 के अनुसार माल को विक्रय अनुबन्ध की विषय वस्तु कहा जाता है। माल निश्चित और भावी किसी भी प्रकार का हो सकता है। माल का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

रेखाचित्र

**1.विद्यमान माल** – ऐसा माल जो विक्रय अनुबन्ध करते समय विक्रेता के स्वामित्व और अधिकार में होता है, विद्यमान माल कहलाता है। (धारा 6(1) ) माल विक्रय अधिनियम के अनुसार विद्यमान माल ही विक्रय की विषय वस्तु हो सकता है। विद्यमान माल निम्न प्रकार का हो सकता है–

(1) विशिष्ट माल– धारा 2 (14) के अनुसार विशिष्ट माल ऐसा माल होता है जो विक्रय अनुबन्ध करते समय पहचान और तय कर लिया जाता है। जैसे– एक कार, स्कूटर और मोटरसाइकल आदि। यह ऐसा पहचाना गया माल होता है जो अनुबन्ध की विषय वस्तु बनता है। जैसे– किसी शोरूम में रखे गये चार अलग–अलग रंग के स्कूटर में से एक्स द्वारा लाल रंग का स्कूटर चुनना। यहां लाल रंग का स्कूटर विशिष्ट माल है।

(2) **निश्चित माल**– निश्चित माल ऐसा विद्यमान माल है जो क्रेता द्वारा छांटकर अलग कर दिया जाता है। उदाहरण–एक्स एक शोरूम में जाता है जहां अलग–अलग ब्रांड के टी वी रखे हुए है। एक्स उनमेंसे एक टी वी पसंद करता है और उसे खरीदने का प्रस्ताव करता है। यहां टी वी निश्चित माल है।

(3) **अनिश्चित माल**–अनिश्चित माल ऐसा माल होता है जिसे अनुबन्ध करते समय पहचाना और तय नही किया जाता है। ऐसा माल वर्णन के अनुसार निश्चित किया जाता है। उदाहरण–अ 10 पीपे तेल के ब को बेचने का अनुबन्ध करता है। यहां माल अनिश्चित है क्योंकि इसे ब द्वारा पहचाना नही गया है।

**2.भावी माल**– धारा 2(6) के अनुसार भावी माल ऐसा माल होता है जो विक्रय अनुबन्ध करते समय विद्यमान नही होता है। किन्तु विक्रेता को जिसका विक्रय अनुबन्ध के बाद निर्माण करना है अथवा प्राप्त करना है। भावी माल का विक्रय नही हो सकता है बल्कि भावी माल के विक्रय का ठहराव ही किया जा सकता है। (धारा 6 (3) ) उदाहरण– अ ब को एक विशिष्ट मौसम में अपने खेतों में उत्पन होने वाला गैंहू बीस हजार रूपये प्रति टन बेचने का अनुबन्ध करता है। यह भावी माल के लिए विक्रय का ठहराव है। जब गैंहू की सुपुर्दगी दे दी जाएगी तब यह ठहराव विक्रय में परिवर्तित हो जाएगा।

**3.सांयोगिक माल**–इसे सम्भावित माल भी कहा जाता है। सांयोगिक माल ऐसा भावी माल होता है जिसकी प्राप्ति किसी घटना के घटित होने अथवा न होने पर निर्भर करती है। अ ब को 200 क्विंटल चना 500 रूपये प्रति क्विंटल की दर से बेचने का ठहराव करता है यदि अच्छी बारिस होगी और फसल अच्छी हो जाए। यह सांयोगिक माल को बेचने का अनुबन्ध है।

## विद्यमान माल और भावी माल में अन्तर

विद्यमाल माल और भावी माल में अन्तर इस प्रकार है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. विद्यमान माल विक्रय अनुबन्ध करते समय विक्रेता के स्वामित्व और अधिकार में होता है जबकि भावी माल विक्रय अनुबन्ध करते समय विक्रेता के स्वामित्व या अधिकार में नही होता है।
2. विद्यमान माल विक्रय अनुबन्ध के समय विद्यमान होता है जबकि भावी माल उस समय विद्यमान नही होता है।
3. विद्यमान माल का विक्रय अथवा विक्रय का ठहराव किया जा सकता है जबकि भावी माल का विक्रय नही किया जा सकता बल्कि विक्रय का ठहराव ही किया जा सकता है।

**भावी माल और सांयोगिक माल में अन्तर –**

भावी माल तथा सांयोगिक माल में अन्तर निम्नलिखित है–

1. भावी माल की प्राप्ति अथवा उसका उत्पादन किसी सांयोगिक घटना के घटित होने पर निर्भर नही रहता है जबकि सांयोगिक माल की प्राप्ति किसी घटना के घटित होने या न होने पर निर्भर करती है।

2. माल का उत्पादन और प्राप्ति नहीं होने पर होने पर भावी माल के विक्रय का ठहराव समाप्त नही हो जाता है जबकि सांयोगिक माल प्राप्त नही होने पर विक्रय का ठहराव समाप्त हो जाता है।

**प्रश्नः–1. माल विक्रय अधिनियम के अन्तर्गत माल को परिभाषित कीजिए।**

**2. वाद योग्य दावों और मुद्रा को माल की परिभाषा में शामिल क्यों नही करते है?**

**3.माल कितने प्रकार का होता है।**

**4.निश्चित और अनिश्चित माल में अन्तर स्पष्ट कीजिए।**

**5.सांयोगिक माल किसे कहते है।**

## माल के नष्ट हो जाने का विक्रय अनुबन्ध पर प्रभाव

माल के नष्ट हो जाने के परिणामस्वरूप विक्रय अनुबन्ध पर पड़ने वाले प्रभावों को अधिनियम की धारा 7और 8 में इस प्रकार से स्पष्ट किया गया है–

1. **विक्रय अनुबन्ध से पूर्व माल का नष्ट हो जाना**–धारा 7 में कहा गया है कि यदि विक्रय का ठहराव किसी विशिष्ट माल के विक्रय के लिए किया गया है और ऐसा माल विक्रेता की जानकारी के बिना ही अनुबन्ध करने से पहले ही नष्ट हो गया है तो ऐसा माल के विक्रय का अनुबन्ध व्यर्थ होगा। **उदाहरण–**अ ब को 100 पीपे शुद्ध घी के बेचने का अनुबन्ध करता है जिन्हे अनुबन्ध करते समय निश्चित कर लिया गया था। इन मेसे 25 पीपे चोरी हो गये। जिसकी जानकारी अ को नही थी, ब शेष माल की सुपुर्दगी लेने के लिए बाध्य नही है।

इसी प्रकार उपरोक्त उदाहरण में यदि समस्त माल आग से नष्ट हो जाता और विक्रेता को इसकी जानकारी नही होती तो विक्रय का अनुबन्ध व्यर्थ हो जाता। यदि कोई अनुबन्ध अविभाजनीय विशिष्ट माल के लिए है और उसका एक भाग नष्ट हो जाता है तो क्रेता शेष माल की सुपुर्दगी लेने के लिए बाध्य नही है। परिणामस्वरूप अनुबन्ध व्यर्थ हो जाता है।

2. **विक्रय के ठहराव के बाद लेकिन विक्रय से पहले माल का नष्ट हो जाना**–धारा 8 से स्पष्ट होता है कि यदि किसी विशिष्ट माल के विक्रय का ठहराव होने के बाद लेकिन विक्रय से पहले क्रेता या विक्रेता की त्रुटि के बाद, माल की जोखिम हस्तान्तरित होने से पूर्व ही माल नष्ट हो जाता है या इतना खराब हो जाता है कि वह वर्णन के अनुसार भी नही रहता है तो उस माल के विक्रय का अनुबन्ध व्यर्थ हो जाता है। धारा 8 के अनुसार अनुबन्ध असम्भवता के आधार पर व्यर्थ हो जाता है। यदि माल की जोखिम अथवा स्वामित्व के हस्तान्तरण के बाद माल नष्ट होता है तो वह अनुबन्ध व्यर्थ नही होगा तथा क्रेता ऐसी हानि के लिए उतरदायी होगा। धारा 7 और 8 निम्न परिस्थितियों में लागू नही होती है–

1. जब माल विक्रेता की लापरवाही से नष्ट हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. जब माल विक्रय का अनुबन्ध विशिष्ट माल के लिए नही हो।

**उदाहरण**–ए बी को विशिष्ट ब्राण्ड की 100 कमीजें बेचने का अनुबन्ध करता है। ए के पास कमीजों का सम्पूर्ण स्टॉक आग से नष्ट हो जाता है और ए को अनुबन्ध करते समय इस बात की जानकारी नही होती है यहां ए कमीजों की सुपुर्दगी देने के लिए उतरदायी है क्योंकि विक्रय अनुबन्ध विशिष्ट माल के लिए नही था।

## माल के स्वत्व का प्रलेख

सामान्यतः माल के स्वत्व के प्रलेख से आशय किसी ऐसे प्रलेख से है जिसे सामान्य व्यापार संचालन के दौरान किसी माल पर अधिकार एवं नियन्त्रण के प्रमाण के रूप में प्रयोग किया जाता है। ऐसा प्रलेख जिस व्यक्ति के पास होता है वह माल प्राप्त कर सकता है। इस प्रलेख का धारक उस प्रलेख की सुपुर्दगी या बेचान से प्रलेख में वर्णित माल का हस्तान्तरण आसानी से कर सकता है।

**माल विक्रय अधिनियम की धारा 2 (4) के अनुसार :–**

माल के स्वत्व के प्रलेख के अन्तर्गत वहन–पत्र, डाक–वारण्ट, भण्डारगृह के प्रमाण–पत्र, घाटपाल का प्रमाण–पत्र, रेल–रसीद, विभिन्न परिवहन दस्तावेज माल की सुपुर्दगी के लिए दिया आदेश और ऐसी अन्य कोई भी दस्तावेज आती है जिसका सामान्य व्यापारिक व्यवहारों में उपयोग माल पर स्वत्व या नियन्त्रण के सबूत के रूप में किया जाता है या जो उस प्रलेख पर अधिकार रखने वाले व्यक्ति को वह माल जिसके बारे में वह दस्तावेज है अन्तरित या प्राप्त करने के लिए या तो बेचान द्वारा या सुपुर्दगी द्वारा अधिकृत करती है।

इस प्रकार माल के स्वत्व का प्रलेख एक ऐसा प्रलेख है जो इस बात का प्रमाण है कि धारक को माल प्राप्त करने का अधिकार है। ऐसे प्रलेख विधि मान्य तभी होते है जब निम्नलिखित शर्ते पूरी होती हैः–

1. यह सामान्य व्यापारिक व्यवहारों के दौरान उपयोग में लिए जाते हैं।
2. इसमें माल की शर्तरहित सुपुर्दगी का वचन होता है।
3. ऐसे प्रलेख के धारक को माल प्राप्ति का शर्तरहित अधिकार होता है।

**माल के स्वत्व के प्रलेख निम्नलिखित हो सकते हैः–**

**1.सुपुर्दगी आदेशः–** यह आदेश ऐसा आदेश है जिसके अन्तर्गत माल का स्वामी माल पर अधिकार रखने वाले व्यक्ति को उसमें उल्लिखित व्यक्ति को माल सुपुर्द करने का आदेश देता है।

**2.जहाजी बिल्टी**:–यह एक रसीद है जो जहाज के कप्तान पर जहाज पर माल लादने के पश्चात जारी की जाती है। इस रसीद में माल को गंतव्य स्थल पर सुपुर्द करने की गारन्टी भी होती है।

**3.रेलवे रसीदः–**रेलवे रसीद एक ऐसा प्रलेख है, जिसे रेलवे द्वारा जारी किया जाता है। इसमें धारक या आदेशित व्यक्ति को रेलवे द्वारा प्राप्त माल को गंतव्य स्थल पर सुपुर्द करने का वचन होता है।

**4.डॉक वारण्टः–**(बन्दरगाह वारण्ट) डॉक वारण्ट बन्दरगाह के स्वामी द्वारा जारी किया जाता है। इस वारण्ट में यह प्रतिज्ञा होती है कि वह इसके धारक या आदेशित व्यक्ति को माल की सुपुर्दगी दे दी जायेगी।

**5.घाटपाल या गोदामरक्षक का प्रमाणः–** ऐसा प्रमाणपत्र जो घाटपाल या गोदामरक्षक द्वारा जारी किया जाता है जो इस बात का प्रमाण होता है कि इसमें उल्लिखित माल गोदाम या घाट पर आ गया है और इस माल की सुपुर्दगी प्रमाणपत्र धारक या इसमें आदेशित व्यक्ति को दे दी जाएगी।

**प्रश्नः–**

**1.माल के स्वत्व के प्रलेख से क्या आशय है?**

**2.माल के स्वत्व के प्रलेख कौन–कौन से हो सकते है?**

**माल का मूल्य**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

माल विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत माल हस्तान्तरण मूल्य के बदले किया जाता है। मूल्य माल विक्रय अनुबन्ध का एक आवश्यक तत्व है। मूल्य को मुद्रा में व्यक्त किया जाता है। माल विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत मूल्य प्रतिफल है जिसके बदले माल का हस्तान्तरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को किया जाता है।

**धारा 2 (10) के अनुसार** :–वस्तुओं के मौद्रिक प्रतिफल को मूल्य कहते है।

उपरोक्त धाराओं से स्पष्ट होता है कि :–

1. मूल्य को सदैव मुद्रा में व्यक्त किया जाता है।
2. यह आवश्यक नही कि मूल्य हमेशा विक्रय अनुबन्ध करते समय ही तय किया जाए, लेकिन जब भी चुकाया जाएगा उस समय भी तय किया जा सकता है।

इस प्रकार मूल्यः–

1. मुद्रा में होना चाहिए
2. निश्चित होना चाहिए और
3. वास्तविक होना चाहिए।

**मूल्य निर्धारण की विधियॉ**

मूल्य निर्धारण करने के लिए निम्न में से किसी भी विधि का चुनाव किया जा सकता हैः–

1. **विक्रय अनुबन्ध द्वारा मूल्य निर्धारणः**–धारा 9(1) के अनुसार यदि अनुबन्ध में मूल्य निर्धारित किया हुआ है तो माल के मूल्य का भुगतान उसी मूल्य से किया जाएगा।
2. **पक्षकारों के पारस्परिक सहयोग द्वारा मूल्य निर्धारणः**–यदि अनुबन्ध करते समय मूल्य निर्धारण नही किया है और न ही अनुबन्ध में मूल्य निर्धारण की विधि का उल्लेख किया हुआ है तो पक्षकार पारस्परिक सहयोग द्वारा मूल्य निर्धारित कर सकते है। जैसेः–पक्षकारों द्वारा यह तय करना कि मूल्य किसी तीसरे पक्षकार द्वारा निर्धारित किया जाएगा।

3. **व्यापार की प्रचलित रीति द्वाराः**–विक्रय अनुबन्ध के पश्चात चाहे तो पूर्व में किये गये व्यापारिक व्यवहारों अथवा व्यापार की प्रचलित रीति के अनुसार भी मूल्य निर्धारित कर सकते है। (धारा 9 (1) )

1. **उचित मूल्यः**–यदि उपरोक्त में से किसी भी विधि से मूल्य का निर्धारण नही किया गया है तो क्रेता को उचित मूल्य का भुगतान करना पड़ेगा। (धारा 9 (1))
2. **सरकार द्वारा निर्धारित मूल्यः**–अनुबन्ध का मूल्य सरकार द्वारा किसी नियन्त्रित आदेश के अन्तर्गत भी निर्धारित किया जा सकता है। ख्दकपं`जममस ूपतम चतवकनबजे सजकण्अे`जंजम व`िडंकतें 1968,
3. **तृतीय पक्षकार द्वारा** :–यदि विक्रय अनुबन्ध में यह तय किया गया है कि मूल्य निर्धारण कोई तीसरा पक्षकार करेगा तो ऐसा मूल्य तीसरे पक्षकार द्वारा ही निर्धारित किया जाएगा। तृतीय पक्षकार द्वारा निर्धारित मूल्य क्रेता और विक्रेता दोनों को स्वीकार करना पड़ेगा।

**तृतीय पक्षकार मूल्य निर्धारण में असमर्थ होने पर**

**धारा 10 (1)**

1. **अनुबन्ध व्यर्थः**–कभी–कभी अनुबन्ध में यह शर्त होती है कि मूल्य तृतीय पक्षकार द्वारा निर्धारित किया जाएगा। इस स्थिति में यदि तृतीय पक्षकार मूल्य निर्धारण में असमर्थ रहता है तो ऐसा अनुबन्ध व्यर्थ हो जाता है। (धारा 10 (1) )

2. **कुछ माल की सुपुर्दगी होने पर** :–यदि माल का मूल्य निर्धारण करने में तीसरा पक्षकार असमर्थ रहता है और दूसरी ओर विक्रेता ने माल की या उसके किसी भाग की सुपुर्दगी क्रेता को दे दी हो तो क्रेता को उस माल के लिए उचित मूल्य का भुगतान करना होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. **मूल्य निर्धारण की असमर्थता में किसी पक्षकार का दोषी रहना** :–धारा 10 (2)के अनुसार यदि तृतीय पक्षकार अनुबन्ध के किसी पक्षकार के दोष के कारण मूल्य निर्धारण में असमर्थ रहता है तो निर्दोष पक्षकार को अनुबन्ध भंग करने और दोषी पक्षकार से हर्जाना प्राप्त करने का अधिकार होगा।

**अग्रिम तथा बयाना (जमानत) राशि**

अग्रिम (।क्ट।छब्न्) राशि ऐसी राशि होती है जो क्रेता द्वारा विक्रेता को पेशगी के रूप में दी जाती है यह राशि मूल्य का एक भाग होती है। जबकि बयाना राशि (म्ंतदमेज उवदमल) ऐसी रकम होती है जो एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को अनुबन्ध के समुचित निष्पादन की जमानत के रूप में देता है।

अग्रिम तथा बयाना राशि के संबंध में निम्न नियम महत्वपूर्ण हैः–

1. यदि अनुबन्ध का समुचित निष्पादन हो जाता है तो बयाना राशि या तो लौटा दी जाती है या इसे विक्रय मूल्य में समायोजित कर दिया जाता है।
2. जब तक अनुबन्ध में कोई विपरीत व्यवस्था न हो, यदि अनुबन्ध का समुचित निष्पादन क्रेता के दोष के कारण नही हो पाता है तो विक्रेता बयाना राशि को जब्त कर सकता है।
3. क्रेता द्वारा विक्रेता को दी गई पेशगी रकम अनुबन्ध के समुचित निष्पादन की दशा में माल के मूल्य में समायोजित कर दी जाती है, यदि शेष रहती है तो उसे क्रेता अथवा विक्रेता जेसी भी स्थिति हो लौटा दिया जाता है। अनुबन्ध भंग होने पर इसे बयाना राशि की तरह जब्त नही किया जा सकता है।
4. यदि अनुबन्ध का निष्पादन नही होता है लेकिन दोनों में से कोई भी पक्षकार दोषी नही होता है तो बयाना राशि क्रेता को लौटानी पड़ती है।

**करों में कमी या वृद्वि का मूल्य पर प्रभाव**

यदि माल का मूल्य निर्धारित होने के बाद, लेकिन माल की सुपुर्दगी देने से पहले किसी प्रकार के करों में वृद्वि या कमी होती है तो विक्रेता को कर की ऐसी कमी या वृद्वि माल में परिस्थिति के अनुसार जोड़ अथवा घटा देनी चाहिए।

**समय सम्बन्धी बन्धन**

माल विक्रय अनुबन्ध की धारा 11 के अनुसार माल विक्रय अनुबन्ध में समय के सम्बन्ध में निम्नांकित बन्धन हो सकते हैः–

1. भुगतान के समय सम्बन्धी बन्धनः–माल विक्रय अनुबन्ध में भुगतान के समय सम्बन्धी बन्धन को सार तत्व नही माना जाता है, जब तक कि अनुबन्ध से कोई विपरीत आशय प्रकट नही होता हो। अन्य शब्दों में भुगतान के समय से सम्बन्धित बन्धन अनिवार्य नही होते लेकिन अनुबन्ध में यदि ऐसा स्पष्ट उल्लेख है तो ये बन्धन अनिवार्य बन सकते है।
2. अन्य किसी मामले में समय सम्बन्धी बन्धन :–इस प्रकार के समय से सम्बन्धित बन्धन (भुगतान सम्बन्धी नही) अनुबन्ध के लिए अनिवार्य बन्धन हो सकते है। इन बन्धनों का पालन पक्षकार को अनिवार्य रूप से करना पड़ता है अन्यथा पीड़ित पक्षकार अनुबन्ध को व्यर्थ घोषित कर सकता है। जैसे यदि अनुबन्ध में सुपुर्दगी का समय निश्चित किया गया है तो सुपुर्दगी निश्चित समय पर ही होनी चाहिए।

**प्रश्नः–**

**1.मूल्य किसे कहते है?**

**2.माल विक्रय अनुबन्ध मे समय सम्बंधी बन्धनों को समझाइये।**

**3. मूल्य निर्धारण सम्बंधी वैधानिक प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।**

**शर्ते और आश्वासन**

**परिचयः–**जब एक व्यक्ति (भावी क्रेता) किसी दूसरे व्यक्ति (भावी विक्रेता) के पास कोई वस्तु या माल खरीदने जाता है तो वस्तु का भावी विक्रेता वस्तु या माल की प्रशंसा करने के लिए अनेक बातें कहता है। इन बातों में कुछ बाते तो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

बढ़ा चढ़ा कर क्रेता को आकर्षित करने के लिए की जाती है, जिनका कोई महत्व नही होता है। लेकिन इन बातों में कुछ बातें ऐसी होती है जिन्हे अनुबन्ध का हिस्सा मान लिया जाता है, वे बन्धन कहलाते है।

अर्थात् ऐसे विचार या बातें जिन्हे अनुबन्ध का हिस्सा मान लिया जाता है उन्हे बन्धन कहा जाता है।

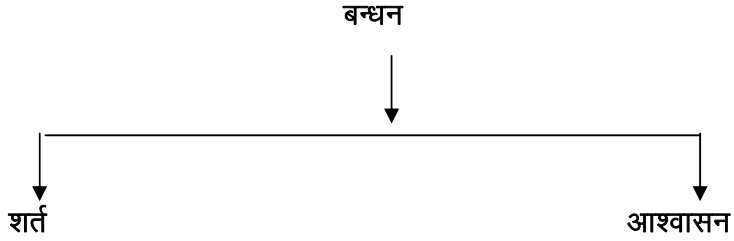


**धारा 12 1 के** अनुसार :– विक्रय अनुबन्ध में माल जो कि अनुबन्ध की विषय वस्तु है के सम्बन्ध में बन्धन या तो शर्त होती है या आश्वासन। अन्य शब्दों में माल सम्बन्धी बन्धन दो प्रकार के हो सकते है :–

(1) शर्त, (2) आश्वासन ।

उपरोक्त धारा से निम्न दो बातें स्पष्ट होती है:–

1. शर्त और आश्वासन अनुबन्ध की विषय–वस्तु माल के सम्बन्ध में ही हो सकती है। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि मूल्य और सुपुर्दगी से सम्बन्धित बन्धन इस धारा के क्षेत्र के बाहर माने गये है।
2. माल विक्रय अनुबन्ध में बन्धन शर्त या आश्वासन के रूप में हो सकते है।

**शर्त की परिभाषाः** माल विक्रय अनुबन्ध की धारा 12 (2) के अनुसार ''शर्त उस बन्धन को कहते है जो अनुबन्ध के मुख्य उद्धेश्य के लिए आवश्यक होता है तथा जिसके भंग होने पर अनुबन्ध परित्याग करने का अधिकार मिलता है।''

अन्य शब्दों में शर्त किसी अनुबन्ध के लिए जड़ का कार्य करती है और किसी अनुबन्ध के लिए आधार या नींव तैयार करती है।

शर्त के आवश्यक तत्वः–

1. शर्त एक बन्धन है।
2. शर्त एक ऐसा बन्धन है जो अनुबन्ध के मुख्य उद्धेश्य के लिए आवश्यक होती है।
3. शर्त भंग होने के परिणामस्वरूप निर्दोष पक्षकार को अनुबन्ध परित्याग करने का अधिकार मिल जाता है।

इस प्रकार शर्त एक ऐसा बन्धन है जो अनुबन्ध की आधारशिला है। अनुबन्ध का कोई पक्षकार जब इस बन्धन को पूरा नही करता है तो दूसरे पक्षकार को अनुबन्ध परित्याग का अधिकार मिलता है और वह माल को अस्वीकार भी कर सकता है।

**उदाहरणः–**अ ब को कहता है कि वह उसका स्कूटर तभी खरीदेगा यदि 40 किमी प्रति लीटर से चलता है। यदि अ अपना स्कूटर ब को बेचता है तो उसे ब **को** उपरोक्त शर्त को पूरा करना होगा। यदि स्कूटर 40 किमी प्रति लीटर से नही चलता है तो ब अनुबन्ध का परित्याग कर सकता है।

**आश्वासन की परिभाषाः–**

धारा 12 (3) के अनुसार :– ''आश्वासन एक बन्धन है जो अनुबन्ध के मुख्य उद्धेश्य के लिए **समपार्श्वक** होता है जिसके भंग होने की दशा में केवल हर्जाने के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार होता है किन्तु माल को अस्वीकार करने या अनुबन्ध के परित्याग करने का अधिकार नही होता है।''

अन्य शब्दों में आश्वासन ऐसे बन्धन होते है जो अनुबन्ध के लिए आधारशीला का कार्य नही करते है। आश्वासन अनुबन्ध के मुख्य उद्धेश्य के लिए सहायक होता है।यदि आश्वासन पूरा नही किया जाता है तो पीड़ित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पक्षकार को अनुबन्ध परित्याग करने का अधिकार नही मिलता केवल क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार मिलता है।

[Wallis v\s Pratt (1910)]

आश्वासन के आवश्यक तत्व

1. आश्वासन एक बन्धन है।
2. आश्वासन बन्धन के मुख्य उद्धेश्य के लिए सहायक होते है।
3. आश्वासन भंग होने के परिणामस्वरूप निर्दोष पक्षकार को अनुबन्ध परित्याग करने का अधिकार नही मिलता है, केवल हर्जाने के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार मिलता है।

इस प्रकार आश्वासन ऐसे बन्धन है जो अनुबन्ध के मुख्य उद्धेश्य के लिए इतने महत्वपूर्ण नही होते है कि ये अनुबन्ध की नींव को हिला सके।

**उदाहरणः**—अ अपना स्कूटर ब को बेचता है और कहता है कि यह स्कूटर एक लीटर में 40 किमी चलता है। खरीदने के पश्चात ब द्वारा स्कूटर चलाने पर यह पता चलता है कि स्कूटर एक लीटर में 35 किमी ही चलता है । यहां अ द्वारा आश्वासन भंग माना जाएगा और ब को केवल क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार मिलेगा।

**शर्त और आश्वासन की कसौटी**

धारा 12 (4) कहती है कि विक्रय अनुबन्ध में कोई बन्धन शर्त है या आश्वासन यह निश्चित करने के लिए प्रत्येक अनुबन्ध की बनावट या रचना को ध्यान में रखना होगा। अनुबन्ध की रचना और परिस्थिति देखने के पश्चात ही यह तय किया जा सकेगा कि कोई बन्धन शर्त है या आश्वासन।

उदाहरणः— अ ने ब को जो कि घोड़ों का व्यापारी था एक घोड़ा **भेजना** का आदेश दिया जो शान्त स्वभाव का हो । ब ने अ को एक उग्र स्वभाव का घोड़ा भेज दिया। यहां अ अनुबन्ध का परित्याग कर सकता है और घोड़ा ब को लौटा सकता है क्योंकि यहां ब द्वारा शर्त भंग किया गया है।

[Hartley v\s Hymans 1920]

शर्त बनाम आश्वासन

शर्त और आश्वासन में निम्न अन्तर हो सकते हैः—

1. **महत्वः**—शर्त अनुबन्ध के मुख्य उद्धेश्य या अनुबन्ध के अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण होती है, जबकि आश्वासन का किसी अनुबन्ध के लिए विशेष महत्व नही होता है।
2. **भंग के उपचार या परिणामः**— शर्त भंग होने पर पीड़ित पक्षकार को अनुबन्ध परित्याग करने का अधिकार मिल जाता है, जबकि आश्वासन भंग होने पर पीड़ित पक्षकार केवल क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।
3. **शर्त भंग और आश्वासन भंगः**— शर्त भंग को आश्वासन भंग मानते हुए अनुबन्ध प्रवर्तित करवाया जा सकता है, जबकि आश्वासन भंग शर्त भंग नही माना जा सकता है।
4. **प्रकृतिः**—शर्त अनुबन्ध के मुख्य उद्धेश्य के लिए आवश्यक होती है, जबकि आश्वासन अनुबन्ध के मुख्य उद्धेश्य के लिए सहायक होता है।
5. **अनुबन्ध का निष्पादनः**—शर्त को पूरा किये बिना अनुबन्ध का निष्पादन नही किया जा सकता है जबकि आश्वासन को पूरा किये बिना भी अनुबन्ध का निष्पादन किया जा सकता है।

**शर्त भंग के परिणाम अथवा उपचार**

शर्त भंग के परिणामस्वरूप क्रेता को विक्रेता के विरूद्ध निम्न उपचार प्राप्त हो सकते हैः—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. **अनुबन्ध का परित्यागः**—जैसे ही विक्रेता द्वारा शर्त भंग की जाती है वैसे ही क्रेता को अनुबन्ध का परित्याग करने का अधिकार मिल जाता है।

2. **माल को अस्वीकार करनाः**—यदि विक्रेता अनुबन्ध की शर्त को पूरा करने में असमर्थ रहता है तो क्रेता माल को अस्वीकार कर सकता है।

3. **शर्त से मुक्त करनाः**—विक्रेता द्वारा शर्त का पालन नही किये जाने पर क्रेता चाहे तो विक्रेता को शर्त के पालन से मुक्त कर सकता है। लेकिन एक बार शर्त मुक्त किये जाने के बाद विक्रेता को शर्त पालन के लिए बाध्य नही किया जा सकता है। धारा 13 1

4. **शर्त भंग को आश्वासन भंग माननाः**—विक्रेता द्वारा शर्त भंग किये जाने पर क्रेता के पास एक विकल्प यह भी होता है कि वह शर्त भंग को आश्वासन भंग मानले और विक्रेता पर ऐसे भंग के उपचार के रूप में क्षतिपूर्ति प्राप्त कर ले।(धारा13 (1) )

5. **अनिवार्यतः शर्त भंग को आश्वासन भंग मानने की बाध्यताः**—कभी—कभी विक्रेता द्वारा शर्त भंग किये जाने पर क्रेता उसे अनिवार्य रूप से आश्वासन भंग मानने को मजबूर हो जाता है। ऐसी स्थिति में क्रेता विक्रेता से केवल क्षतिपूर्ति ही प्राप्त कर सकता है।

6. **विक्रेता को कानून द्वारा क्षमा करने पर कोई उपचार नहीः**—कभी—कभी कानून विक्रेता को किसी शर्त के पालन से मुक्ति प्रदान कर देता है, ऐसी दशा में क्रेता को कोई उपचार प्राप्त नही होता है। वह न तो अनुबन्ध का परित्याग कर सकता है और न ही क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।(धारा 13(3))

**आश्वासन भंग के परिणाम अथवा उपचार**

विक्रेता द्वारा आश्वासन भंग किये जाने पर क्रेता को निम्न उपचार उपलब्ध होते हैः—

1. **क्षतिपूर्ति का दावाः**—जब एक विक्रेता विक्रय अनुबन्ध में दिये गये आश्वासन को पूरा नही करता है तो क्रेता अनुबन्ध का परित्याग नही कर सकता है, वह केवल क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।इस दशा में क्रेता को माल अस्वीकार करने का अधिकार भी नही मिलता। (धारा 12 (3) )

2. **मूल्य में कमी करने का अधिकारः**—विक्रेता द्वारा आश्वासन को पूरा नही करने पर क्रेता चाहे तो क्षति की राशि से माल के मूल्य में कमी कर सकता है। (धारा 59 (1) )

3. **मूल्य चुकाने से इन्कार करनाः—**आश्वासन भंग होने पर यदि ऐसे भंग से उत्पन हानि माल के मूल्य के बराबर या अधिक हो जाती है तो क्रेता माल का मूल्य चुकाने से इन्कार भी कर सकता है।

4. **क्षति के अधिक्य के लिए वादः**— आश्वासन भंग के परिणामस्वरूप उत्पन क्षति माल के मूल्य से अधिक हो जाती है तो क्रेता विक्रेता पर ऐसी अतिरिक्त हानि के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। (धारा59(2) )

**शर्त भंग को आश्वासन भंग मानना**

निम्नाकिंत परिस्थितियों में क्रेता विक्रेता द्वारा किये गये शर्त भंग को आश्वासन भंग मान सकता हैः—

1.**स्वेच्छा से शर्त का परित्याग**—धारा 13 (1) के अनुसार जब क्रेता अनुबन्ध के अन्तर्गत लगाई गई किसी शर्त को स्वेच्छा से त्याग देता है तो विक्रेता ऐसे शर्त पालन के दायित्व से मुक्त हो जाता है। एक बार शर्त का परित्याग करने के बाद पुनः शर्त पालन के लिए विक्रेता को बाध्य नही किया जा सकता है।

2.**शर्त भंग को आश्वासन के रूप में समझनाः**—वस्तु विनिमय अधिनियम क्रेता को यह विकल्प भी देता है कि वह चाहे तो शर्त को आश्वासन समझ सकता है। यदि क्रेता शर्त को अश्वासन समझता है तो क्रेता अनुबन्ध का परित्याग नही कर सकता है केवल क्षतिपूर्ति के लिए विक्रेता के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है। (धारा 13 (1))

3.**शर्त को अनिवार्यतः आश्वासन समझनाः**—जब विक्रय अनुबन्ध ऐसे माल के लिए होता है जो अविभाज्य होता है तथा क्रेता ऐसे माल को या इसके किसी एक भाग को स्वीकार कर लेता है तो शर्त भंग होने पर भी उसे आश्वासन भंग ही माना जाएगा। ऐसा मानना क्रेता की इच्छा पर नही बल्कि अनिवार्यता है।

यह महत्वपूर्ण है कि यदि विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत विक्रेता को कानून ने ऐसी शर्त के पालन से मुक्त कर दिया है तो इस धारा के नियम का कोई प्रभाव नही होगा। (धारा 13 (3))

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**प्रश्न–1. शर्त और आश्वासन को परिभाषित कीजिए।**

**2.किसी अनुबन्ध में कोई बन्धन शर्त है या आश्वासन इसकी जांच कैसे करेंगे?**

**3.शर्त और आश्वासन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।**

**4.शर्त भंग को आश्वासन भंग कब माना जाता है।**

## शर्त और आश्वासन के प्रकार

विक्रय अनुबन्ध में शर्त और आश्वासन दो प्रकार के हो सकते है–

1. **स्पष्ट शर्तें और आश्वासन**–स्पष्ट शर्तें व आश्वासन ऐसे बन्धन होते है जिन्हे अनुबन्ध के पक्षकारों द्वारा अनुबन्ध करते समय निश्चित कर लिया जाता है और विक्रय अनुबन्ध में शामिल कर लिया जाता है। पक्षकार अपनी इच्छा से शर्त और आश्वासन निर्धारित कर सकते है।
2. **गर्भित शर्तें तथा आश्वासन**–गर्भित शर्तें और आश्वासन ऐसे बन्धन होते है जो पक्षकारों द्वारा तय नही किये जाते है, बल्कि राजनियम या व्यापार की परम्परा के अनुसार स्वतः ही अनुबन्ध पर लागू हो जाते है। ये बन्धन ऐसे होते है जिन्हे पक्षकारों द्वारा स्पष्ट शर्त और आश्वासन की तरह पूरा करना पड़ता है। गर्भित शर्तें और आश्वासन अधिनियम की धारा 14 से 17 में वर्णित है।

**गर्भित शर्तें–(**धारा 14–17)

माल विक्रय अनुबन्ध में निम्न गर्भित शर्तों के बारे में बताया गया है–

1. **माल के स्वामित्व सम्बन्धी शर्त**–(धारा 14 () ) के अनुसार–विक्रय अनुबन्ध के पक्षकार अनुबन्ध में माल के स्वामित्व सम्बन्धी शर्त स्पष्ट करे या न करे यह गर्भित शर्त होती है कि–(अ) विक्रय की दशा में विक्रेता को माल बेचने का अधिकार है और

   (ब) विक्रय की ठहराव की दशा में विक्रेता को माल बेचने का अधिकार होगा जिस समय माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण किया जाएगा। उदाहरण– अ एक टाइप–राइटर ब को तीन हजार रूपए में बेचता है। अ को इस टाइप–राइटर का स्वामित्व प्राप्त नही था। इसलिए ब ने इस टाइप–राइटर को इसके वास्तविक स्वामी को सौंप दिया। यहां ब अ से टाइप–राइटर की कीमत वापिस प्राप्त कर सकता है। इसलिए केवल उसी व्यक्ति को माल बेचने का अधिकार है जो उस माल का स्वामित्व रखता है।
2. **वर्णन सम्बन्धी शर्त**–धारा 15 (1) के अनुसार जहां वर्णन द्वारा माल का विक्रय किया जाता है वहां यह गर्भित शर्त होती है कि माल वर्णन के अनुसार ही होगा। इस प्रकार यदि माल बेचते समय माल का वर्णन किया गया है तो माल की सुपुर्दगी वर्णन के अनुसार ही होनी चाहिए। यदि ऐसा नही होता है तो क्रेता माल को अस्वीकार कर सकता है एवं अनुबन्ध का परित्याग कर सकता है।

   अधिनियम की धारा 15 इस बात पर आधारित है कि यदि आपने मटर बेचने का अनुबन्ध किया है तो आप सेंम कैसे बेच सकते है।

   **उदाहरण**–अ ब को एक मशीन यह कह कर बेचता है कि यह मात्र दो साल पुरानी है और इसे बहुत कम उपयोग में लिया गया है। सुपुर्दगी के समय मशीन वर्णन के अनुसार नही थी, वह बहुत पुरानी और चलने योग्य भी नही थी। इसलिए ब ने मशीन अ को लौटादी। जब माल वर्णन के अनुसार बेचा जाता है तो निम्न तीन स्थितियां उत्पन हो सकती है–

1. जब क्रेता ने माल देखा ही नही हो और सिर्फ वर्णन के आधार पर विश्वास करके माल खरीदा हो, तब वर्णन सम्बन्धी शर्त लागू होती है।
2. जब क्रेता ने माल देखा हो लेकिन देखने से ज्यादा वर्णन पर भरोसा किया हो तब भी वर्णन सम्बन्धी गर्भित शर्त लागू होती है।
3. जब वर्णन के अन्तर्गत पैकिंग की विधि को भी शामिल किया गया हो वहां भी वर्णन सम्बन्धी गर्भित शर्त लागू होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. नमूने से सम्बन्धित गर्भित शर्त–नमूने से सम्बन्धित गर्भित शर्त वहां लागू होती है जहां माल का विक्रय नमूना दिखाकर किया जाता है इस स्थिति में माल एवं उसकी किस्म दोनों ही नमूने के अनुसार होनी चाहिए। (धारा 17 (1) )

नमूने द्वारा विक्रय की दशा में निम्न तीन गर्भित शर्ते लागू होती है–

1. समस्त माल नमूने की किस्म के अनुसार हो
2. क्रेता को समस्त माल का नमूने से मिलान करने का मौका देना चाहिए।
3. माल में ऐसा कोई दोष नही होना चाहिए जिसे सामान्य जांच द्वारा ज्ञात नही किया जा सके तथा ऐसे दोष से माल व्यापार के लिए अयोग्य हो सकता है (धारा 17 (2) )
4. नमूने तथा वर्णन सम्बन्धी शर्त– यदि माल नमूने और वर्णन दोनों के अनुसार बेचा जा रहा हो तो यह गर्भित शर्त होती है कि माल नमूने और वर्णन दोनों के अनुसार होना चाहिए। (धारा 15 )
5. वस्तु की उपयुक्तता और किस्म की शर्त– धारा 16 (1) के अनुसार ''जब क्रेता ने माल खरीदने से पूर्व विक्रेता को माल खरीदने का उद्धेश्य स्पष्ट या गर्भित रूप से बता दिया हो और वह विक्रेता की माल विक्रय में कुशलता तथा विवेक पर विश्वास रखता हो, तथा माल ऐसा हो जिसे विक्रेता अपने सामान्य व्यापार के दौरान बेचता हो तो वहां यह गर्भित शर्त लागू होती है कि माल क्रेता के उद्धेश्य के अनुरूप उपयुक्त एवं उचित किस्म का होगा इस स्थिति में क्रेता सावधान रहो का सिद्धान्त लागू नही होता है।

यह ध्यान रखने योग्य बात है कि यदि माल पेटेन्ट या ट्रेडमार्क के अन्तर्गत बेचा जाता है तो वहां यह शर्त लागू नही होती है।

1. **व्यापार योग्यता सम्बन्धी शर्त–** माल विक्रय अनुबन्ध में यह गर्भित शर्त होती है कि क्रेता द्वारा खरीदा गया माल व्यापार योग्य होगा। जब माल वर्णन के अनुसार खरीदा जा रहा हो (चाहे विक्रेता उस वस्तु का निर्माता या उत्पादक हो अथवा नही) विक्रेता सामान्यतः उस माल में व्यापार करता है तो यह गर्भित शर्त होती है कि माल व्यापार योग्य किस्म का होगा।

यहां यह ध्यान देने योग्य है कि व्यापार योग्यता सम्बन्धी गर्भित शर्त वहां लागू नही होती है जहां क्रेता सामान्य जांच द्वारा वस्तु के दोषों का पता लगा सकता हो।

**उदाहरण**–अ ब से 10 टिन देशी घी के खरीदता है। ब अ से कहता है कि वह घी की

शुद्धता की जांच कर ले । घी के टिन ब के गोदाम में सीलबंद थे। अ ने माल की सुपुर्दगी ले ली। बाद में उसे पता चला कि घी शुद्व नही है। यहां ब घी के टिन वापिस लेने के लिए और अ को कीमत वापिस करने के लिए बाध्य है क्योंकि घी की शुद्धता का पता सीलबंद टिन से नही लगाया जा सकता था।

1. **माल के स्वास्थ्यकर सम्बन्धी शर्त**–माल के स्वास्थ्यकर होने की गर्भित शर्त खाद्य वस्तुओं के विक्रय अनुबन्धों पर लागू होती है।इस शर्त के अनुसार खाद्य वस्तुएं स्वास्थ्यकर होनी चाहिए। अन्य शब्दों में खाद्य वस्तुएं उपयोग में उपयुक्त होनी चाहिए।

उदाहरण–एक्स ने वाई की दूकान से मिठाई खरीदी। उस मिठाई में एक पत्थर का टुकड़ा था मिठाई खाने से एक्स का दांत टूट गया यहां एक्स वाई से हर्जाना प्राप्त कर सकता है।

2. **व्यापार की रीति के सम्बन्ध में शर्त**–विक्रय अनुबन्ध में कुछ शर्तें ऐसी होती है जो व्यापार की रीति या परम्परा के अनुसार अनुबन्ध पर स्वतः लागू हो जाती है। धारा 16 (3) के अनुसार किसी विशेष उद्धेश्य के लिए माल की किस्म एवं उपयुक्तता की शर्त व्यापार की परम्परा के अनुसार हो सकती है। यह एक गर्भित शर्त है कि जहां कोई माल क्रेता किसी निर्माता से खरीदा जाता है तो माल ऐसा होना चाहिए जैसा उसके द्वारा निर्मित किया जाता है।

**गर्भित आश्वासन**

प्रत्येक अनुबन्ध में निम्नलिखित गर्भित आश्वासन होते है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. माल पर शान्तिपूर्ण अधिकार का आश्वासन–धारा 14 (इ) के अनुसार विक्रय अनुबन्धों में यह गर्भित आश्वासन है कि क्रेता माल पर शान्तिपूर्ण अधिकार रखते हुए माल का उपयोग कर सकेगा, जब तक अनुबन्ध में कोई विपरीत बात नही कही गई हो। अर्थात् क्रेता अपनी स्वैच्छा से माल का उपयोग कर सकेगा। यदि विक्रेता के दूषित स्वामित्व के कारण क्रेता के शान्तिपूर्ण अधिकार में कोई बाधा उत्पन होती है तो वह विक्रेता से क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है।
2. ऋणभार से मुक्ति का आश्वासन– धारा 14 (ब) के अन्तर्गत विक्रय अनुबन्ध में दूसरा गर्भित आश्वासन यह है कि जब तक अनुबन्ध में कोई विपरीत व्यवस्था न हो यह माना जाएगा कि माल तृतीय पक्षकार के ऋणभार से मुक्त है। यदि ऐसा नही होता है तो क्रेता क्षतिपूर्ति के वाद प्रस्तुत कर सकता है।

**उदाहरण–**राम अपनी मोटरसाइकल श्याम के पास गिरवी रखता है। श्याम इस मोटरसाइकल को मोहन को बेच देता है। मोहन को मोटरसाइकल के गिरवी होने का ज्ञान हो जाता है। यहां श्याम ने मोहन के साथ आश्वासन भंग किया है।

1. **व्यापार की रीति के सम्बन्ध में गर्भित आश्वासन**–इस गर्भित शर्त के अनुसार व्यापार की रीति के अनुसार माल उपयुक्त होना चाहिए। यदि वह किसी विशेष उद्धेश्य के लिए बनाया गया है तो वह उस उद्धेश्य के अनुरूप होना चाहिए। ( धारा 16 (3) )
2. **खतरे के सम्बन्ध में गर्भित आश्वासन**– विक्रय अनुबन्ध में यह गर्भित आश्वासन होता है कि विक्रेता द्वारा बेची जाने वाली वस्तु की खतरनाक प्रकृति के बारे में क्रेता को बता देना चाहिए। यदि विक्रेता ऐसा नही करता है और क्रेता को वस्तु की खतरनाक प्रकृति से कोई नुकसान होता है तो इसके लिए विक्रेता उतरदायी होगा।
3. **माल की शुद्धता का गर्भित आश्वासन**–भारतीय व्यापारिक चिन्ह अधिनियम 1819 के अनुसार व्यापारिक चिन्ह के अन्तर्गत बेची जाने वाली वस्तुएं शुद्ध होनी चाहिए।

**प्रश्नः–**

**1. व्यापारयोग्य माल से आप क्या समझते है?**

**2. वर्णन द्वारा विक्रय से सम्बन्धित कानून को समझाइयें।**

**3.गर्भित शर्त तथा आश्वासनों को स्पष्ट कीजिए।**

**माल के स्वत्व का हस्तान्तरण**

माल विक्रय अनुबन्ध का मुख्य उद्धेश्य माल के स्वत्व का हस्तान्तरण करना होता है। माल के स्वत्व का हस्तान्तरण विक्रय अनुबन्ध का एक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। माल के स्वत्व के हस्तान्तरण और अधिकार के हस्तान्तरण में अन्तर है। स्वामित्व के हस्तान्तरण से आशय विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत मूल्य के बदले माल के स्वामित्व का विक्रेता से क्रेता को हस्तान्तरण होना है। अधिकार हस्तान्तरण के अन्तर्गत एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को दी जाती है। एक व्यक्ति का किसी माल पर अधिकार हो सकता है लेकिन यह आवश्यक नही है कि वह उसका स्वामी हो। जैसे किसी ऐजेन्ट या नौकर या निक्षेपी के पास किसी वस्तु का अधिकार होना इसी प्रकार किसी व्यक्ति का किसी माल पर स्वामित्व हो सकता है लेकिन उस पर अधिकार हो ऐसा आवश्यक नही है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि माल के स्वत्व का हस्तान्तरण माल के अधिकार हस्तान्तरण के द्वारा या इसके बिना भी हो सकता है।

**माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण/अन्तरण के वैधानिक प्रावधान**

माल के स्वामित्व के अन्तरण से सम्बंधित वैधानिक प्रावधान निम्नलिखित हैः–

1. **विशिष्ट माल की दशा में स्वामित्व का अन्तरण**– धारा 2 (14) के अनुसार–'' विशिष्ट माल ऐसा माल होता है जिसे अनुबन्ध करते समय पहचान और तय कर लिया जाता है।'' विशिष्ट माल की दशा में माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित उस समय होगा जब अनुबन्ध के पक्षकार उसका हस्तान्तरण करना चाहेगें। धारा 19 (1)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

धारा 19 (2) में कहा गया है कि विशिष्ट माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण पक्षकारों के अभिप्राय या उद्धेश्य अनुसार ही होगा। यदि पक्षकारों ने अपना अभिप्राय स्पष्ट नही किया है तो अभिप्राय निश्चित करने के लिए अनुबन्ध तथा अनुबन्ध के पक्षकारों के आचरण की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखना पड़ेगा।

जब पक्षकारों का अभिप्राय स्पष्ट नही हो तो निम्न नियमों को अपनाया जाता है–

**(क) जब माल सुपुर्दगी योग्य स्थिति में हो अथवा अनुबन्ध के समय स्वामित्व का अन्तरण**–धारा 20 के अनुसार यदि अनुबन्ध किसी ऐसे विशिष्ट माल के लिए है जिसके सम्बन्ध में कोई शर्त नही है तथा माल सुपुर्दगी योग्य स्थिति में है तो माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण उस समय हुआ माना जाएगा जिस समय अनुबन्ध हुआ है। यह महत्वपूर्ण है कि यदि माल के मूल्य के भुगतान का समय या सुपुर्दगी अथवा दोनो ही स्थगित कर दिए जाए तो इसके स्वामित्व के अन्तरण पर कोई प्रभाव नही पड़ता है। **उदाहरण**–एक्स वाई को एक बकरी बेचता है जिसकी सुपुर्दगी 20 मई को दी जानी है लेकिन वाई को इसका भुगतान 30 अप्रेल को करना है। 5 मई को बकरी मर जाती है यहां वाई को ही इस हानि को वहन करना पड़ेगा क्योंकि माल (बकरी)के स्वामित्व का हस्तान्तरण विक्रय के समय ही वाई को हो गया था।

**(ख) जब माल सुपुर्दगी योग्य स्थिति में नही है अथवा माल को सुपुर्दगी योग्य बनाया जाना है**–धारा 21 कहती है कि यदि विक्रयअनुबन्ध किसी ऐसे विशिष्ट माल का है जो सुपुर्दगी योग्य स्थिति में नही है किन्तु उसे सुपुर्दगी योग्य बनाया जाना है तो माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण उस समय हुआ माना जाएगा जब माल सुपुर्दगी करने योग्य स्थिति में लाया जाएगा और क्रेता को इसकी सूचना दे दी जाएगी। उदाहरण–एक्स वाई से एक टेबल खरीदने का अनुबन्ध करता है टेबल को अभी तैयार किया जाना है। टेबल का स्वामित्व एक्स को तभी अन्तरित होगा जब वाई टेबल को तैयार करके एक्स को इसकी सूचना दे देगा।

**(ग) जब माल सुपुर्दगी योग्य स्थिति में है लेकिन मूल्य निर्धारण सम्बन्धी कार्य शेष हो**–जब विक्रय अनुबन्ध ऐसे विशिष्ट माल के लिए हो जो सुपुर्दगी योग्य स्थिति में तो होता है लेकिन इसके मूल्य निर्धारण में विक्रेता को कुछ कार्य करना शेष होता है जैसे माल को गिनना नापना आदि, तो ऐसी स्थिति में स्वत्व का अन्तरण क्रेता को उस समय तक हुआ नही माना जाएगा जब तक की विक्रेता ने वह कार्य नही कर लिया हो और क्रेता को इसकी सूचना न दे दी हो। (धारा 22)

2. **अनिश्चित माल अथवा भावी माल की दशा में स्वत्व का अन्तरण**–अनिश्चित माल ऐसा माल होता है जो वर्णन के अनुसार बेचा जाता है। अन्य शब्दों में अनिश्चित माल अनुबन्ध करते समय पहचाना और तय नही किया जाता है। भावी माल ऐसा माल होता है जो अनुबन्ध करते समय विक्रेता के स्वामित्व और अधिकार में नही होता है बल्कि ऐसे माल को निर्मित या प्राप्त किया जाना होता है।

धारा 18 के अनुसार अनिश्चित माल के स्वामित्व का अन्तरण तब तक नही किया जा सकता है जब तक कि इसे निश्चित नही कर लिया जाए।

धारा 23 (1) के अनुसार जब अनिश्चित अथवा भावी माल का क्रय वर्णन के अनुसार किया गया हो और उस वर्णन के अनुसार माल क्रेता की सहमति से विक्रेता के द्वारा या विक्रेता की सहमति से क्रेता द्वारा कुल माल में से अलग करके निश्चित कर लिया है अथवा उसका बिना शर्त के विनियोजन कर दिया गया है तो ऐसा करने के साथ ही माल के स्वामित्व का अन्तरण हो जाता है।

धारा 23(2) के अनुसार विक्रेता द्वारा माल का शर्तरहित विनियोजन किया जाना तब माना जाएगा जब विक्रेता माल को किसी मालवाहक या किसी निक्षेपग्रहीता (चाहे क्रेता ने ऐसे मालवाहक या निक्षेपग्रहीता का नाम बताया हो अथवा नही) को इस उद्धेश्य से माल सौंप दिया है कि वह माल को क्रेता तक पहुंचा देगा। इसे माल का निश्चित होना भी कहते है। यह ध्यान देने योग्य है कि विक्रेता ऐसे माल पर अपना अधिकार सुरक्षित नही रखे। यदि विक्रेता माल पर अपना अधिकार सुरक्षित रख लेता है तो स्वामित्व का अन्तरण हुआ नही माना जाएगा।

विनियोजन से आशय सम्पूर्ण माल में से बेचे गये माल को अलग करना है। ऐसा विक्रेता द्वारा क्रेता की सहमति से अथवा क्रेता द्वारा विक्रेता की सहमति से किया जा सकता है। उदाहरण–आर अपने चावल के स्टॉक में से 500 क्विंटल चावल एस को बेचता है,और एस को चावल की सुपुर्दगी गोदामरक्षक से प्राप्त करने के लिए कहता है। एस चावल की सुपुर्दगी नही लेता है और इसे टी को बेच देता है। एस ने आर को इस माल के मूल्य का भुगतान नही किया इसलिए आर ने माल की सुपुर्दगी देने से मना कर दिया। यहां पर चावल को गोदाम से छांटकर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अलग नही किया गया है इसलिए माल का विनियोजन पूरा नही होने के कारण स्वत्व का अन्तरण हुआ नही माना गया है।

3. **अनुमोदन पर भेजे गये माल के स्वामित्व का अन्तरण**–जब माल पसन्दगी अथवा अनुमोदन की शर्त पर केता को दिया जाता है तो माल के स्वत्व का अन्तरण तभी होता है जब माल केता को पसन्द आ जाए। अनुमोदन पर भेजे गये माल के स्वामित्व के अन्तरण के सम्बन्ध में निम्न परिस्थितियां उत्पन होती है–

**(अ) केता द्वारा अनुमोदन की सूचना देना**–धारा 24 () के अनुसार जब केता विकेता को माल की पसन्दगी की सूचना या क्रय करने की सूचना दे देता है तो ऐसी सूचना देने के साथ ही स्वत्व का अन्तरण माना जाएगा।

**(ब) केता द्वारा माल अपनाने पर**– यदि केता विकेता को माल क्रय करने की कोई सूचना नही देता है लेकिन कोई ऐसा कार्य करता है जिससे यह लगता है कि उसने माल को अपना लिया है तो उसी समय माल का अन्तरण हुआ माना जाएगा, जब वह माल को अपना लेता है। ख्धारा 24(),

**उदाहरण**–एक्स वाई को कुछ जेवरात पसन्दगी पर देता है। वाई यह जेवरात एक्स को बिना सूचना दिये ही अपने पास रख लेता है। कुछ समय बाद वाई के घर डकैती के दौरान यह जेवरात चोरी हो जाते है। यहां एक्स जेवरात के मूल्य के लिए वाई पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

**(स)केता द्वारा बिना सूचना दिये माल अपने पास रखना**–धारा 24(इ)में कहा गया है कि यदि केता माल के अस्वीकार होने की सूचना दिये बिना माल अपने पास रोककर रखता है,तो इस स्थिति में यदि माल लौटाने का समय निश्चित कर दिया गया है,तो उस निश्चित समय के बीतने के बाद माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण हुआ माना जाएगा।यदि समय निश्चित नही किया गया है तो उचित समय बीतने के बाद माल के स्वत्व का अन्तरण हुआ माना जाएगा।

**उदाहरण**–अनिता निर्मल साड़ी सेन्टर से एक साडी पसन्दगी पर तीन दिन के लिए लेती है। अनिता न तो साडी वापस करती है और न ही अपनी स्वीकृति की सूचना देती है। यहां स्वत्व का हस्तान्तरण तीन दिन बीतने के पश्चात हो जाएगा।

**(द) केता द्वारा माल की वापसी असम्भव करने पर**– जब केता कोई ऐसा कार्य या गलती करता है जिसके कारण माल की वापसी असम्भव हो जाती है तो भी माल के स्वत्व का हस्तान्तरण हुआ माना जाएगा।

4. **व्यवस्थापन के अधिकार को सुरक्षित करने पर स्वामित्व का अन्तरण**–यदि अनुबन्ध किसी निश्चित माल के विक्रय के लिए है अथवा अनिश्चित माल के लिए है तो विकेता अनुबन्ध अथवा विनियोग की शर्तों के अनुसार माल के व्यवस्थापन का अधिकार तब तक अपने पास सुरक्षित रख सकता है जब तक विकेता द्वारा अनुबन्ध के अन्तर्गत लगाई गई शर्तों को केता द्वारा पूरा नही कर दिया जाता है। ऐसी दशा में माल के स्वत्व का हस्तान्तरण तब होगा जब केता विकेता द्वारा लगाई गई शर्तो को पूरा कर देता है। धारा 25 (1)

उपरोक्त के अलावा विकेता निम्नलिखित दो परिस्थितियों में विकेता व्यवस्थापनअधिकार को सुरक्षित मान सकता है–

1. जब माल जहाज या रेल द्वारा भेजा जाता है और जहाजी बिल्टी या रेलवे की रसीद विकेता या उसके एजेन्ट के निर्देशानुसार ही केता को सुपुर्द की जाती है। धारा 25 (2)
2. यदि विकेता द्वारा माल के मूल्य के लिए केता पर विनिमय बिल लिखा जाता है और उसे जहाजी बिल्टी या रेलवे की रसीद के साथ भेजा है, तो माल के स्वत्व का हस्तान्तरण तब तक नही होगा जब तक कि केता उस बिल को स्वीकार नही कर लेता है। धारा 25(3)

**जोखिम प्रायःस्वत्व के साथ ही अन्तरित होती है**(धारा–26)

जोखिम प्रायः स्वत्व के साथ ही अन्तरित हो जाती है। माल की जोखिम विकेता के पास तब तक बनी रहती है जब तक कि माल के स्वत्व का अन्तरण केता को नही हो जाता है बशर्ते पक्षकारों ने इसके विपरीत कोई अनुबन्ध नही किया हो। माल की सुपुर्दगी दी गई है अथवा नही इसका इस नियम पर कोई प्रभाव नही पड़ता है।
**उदाहरण**–एक्स वाई से 20 पैकेट मक्खन खरीदने के लिए सहमत होता है। वाई इस माल को तैयार करके इसे पैक कर देता है लेकिन एक्स सुपुर्दगी प्राप्त करने में देर कर देता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

**प्रश्नः–**

1. **माल के 'स्वत्व के अन्तरण'और 'अधिकार के अन्तरण' में क्या अन्तर है?**
2. **''जोखिम स्वत्व के साथ–साथ चलती है।'' समीक्षा कीजिए।**
3. **माल के स्वामित्व अन्तरण से सम्बन्धित नियमों को स्पष्ट कीजिए।**

**माल के स्वत्व के अधिकार का अन्तरण**

**न्यायाधीश बिलीस के अनुसार–**''कोई भी व्यक्ति अपने स्वय के स्वामित्व के अधिकार से अधिक अच्छा स्वामित्व अधिकार दूसरों को प्रदान नही कर सकता है।''

न्यायाधीश बिलीस के अनुसार विधि का सामान्य नियम है कि **कोई भी वह नही दे सकता जो स्वय उसके पास नही है।** दूसरे शब्दों स्वत्व के अधिकार का अन्तरण माल का स्वामी ही कर सकता है। इसे लैटिन भाषा में**'नेमो डेट कोड नॉन हैबेट'(Nemo date quod non habet)** कहते है।

धारा 27 के अनुसार ''जब माल ऐसे व्यक्ति द्वारा बेचा जाता है जो उस माल का स्वामी नही है और वह उस माल को उसके स्वामी के अधिकार अथवा सहमति के बिना बेचता है तो क्रेता उस पर विक्रेता से अच्छा स्वत्व अधिकार प्राप्त नही कर सकता।''

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि विक्रेता के पास किसी वस्तु के स्वत्व का अधिकार नही है तो क्रेता भी ऐसे अधिकार को प्राप्त नही कर सकता है,चाहे उसमें माल पूर्ण सदभावना से वस्तु का पूर्ण मूल्य भुगतान करके क्यों न खरीदा हो।

**अपवाद**–निम्नलिखित परिस्थितियों में माल का विक्रय स्वामी द्वारा नही किया जाता है। फिर भी क्रेता अच्छा स्वत्व प्राप्त करता है–

1. **अवरोध या प्रदर्शन द्वारा विक्रय–**जब माल का स्वामी कोई ऐसा कार्य करता है अथवा ऐसा आचरण करता है जिससे यह लगता है कि विक्रेता को किसी माल को बेचने का अधिकार है, और दूसरा व्यक्ति उस बात या आचरण पर विश्वास करके वह माल खरीद लेता है, तो ऐसी स्थिति में क्रेता को अच्छा स्वत्व प्राप्त होता है।(धारा 27)

2. **व्यापारिक एजेन्ट द्वारा विक्रय–**जब माल व्यापारिक एजेन्ट द्वारा बेचा जाता है तो क्रेता को अच्छा स्वामित्व अधिकार प्राप्त होता है यद्यपि व्यापारिक एजेन्ट माल का स्वामी नही होता है यदि क्रेता को इस बात की जानकारी नही है कि एजेन्ट को माल बेचने का अधिकार नही है और वह पूर्ण सद्विश्वास के साथ माल खरीदता है तो भी क्रेता को अच्छा स्वत्व प्राप्त होता है यदि–

(1) विक्रेता का माल पर अधिकार हो।

(2) विक्रेता एक व्यापारिक एजेन्ट हो।

(3) क्रेता ने पूर्ण सद्विश्वास से माल खरीदा हो।

(4) क्रेता को यह पता नही हो कि एजेन्ट को उस माल को बेचने का अधिकार नही है।

1. **सह–स्वामियों में से किसी एक सह–स्वामी द्वारा विक्रय–**यदि बेचा जाने वाला माल ऐसा है जिसके अनेक सह–स्वामी है और कोई भी सह–स्वामी सम्पूर्ण को सभी सह–स्वामियों की सहमति से बेचता है तो क्रेता को अच्छा स्वामित्व मिलता है। यदि किसी माल पर अधिकार रखने वाला कोई सह–स्वामी शेष सह–स्वामियों की बिना सहमति के सम्पूर्ण माल का विक्रय कर देता है तो क्रेता को अच्छा स्वामित्व प्राप्त होता है। (धारा 28)

2. **व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत माल पर अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा विक्रय–**यदि माल का विक्रेता किसी व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत माल पर अधिकार रखता है और ऐसा माल किसी व्यक्ति को बेच देता है तो क्रेता विक्रेता से अच्छा स्वत्व प्राप्त कर लेता है जबकि क्रेता ने ऐसा माल पूर्ण सद्विश्वास के साथ खरीदा हो। (धारा 29)

1. **माल पर अधिकार रखने वाले विक्रेता द्वारा विक्रय–**यदि माल का विक्रय किया जा चुका है लेकिन ऐसे माल पर विक्रेता या एजेन्ट का अधिकार है और ऐसा विक्रेता या एजेन्ट उस माल को किसी दूसरे पक्ष को बेच देता है तो ऐसा क्रेता विक्रेता से अच्छा स्वामित्व प्राप्त करता है। ऐसा विक्रय तभी वैध होगा जब निम्न शर्ते पूरी हो–

Jai Vishwa Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1 क्रेता ने पूर्ण सद्विश्वास से माल खरीदा हो।

2 विक्रय के बाद माल विक्रेता के अधिकार में हो।

3 क्रेता को माल के पूर्व विक्रय की सूचना नही हो।

**उदाहरण**–अ अपनी कार ब को 1,00,000 रूपये में बेचता है,लेकिन कार की सुपुर्दगी अगले दिन देने के लिए कहता है। ब द्वारा सुपुर्दगी लेने से पूर्व ही अ इस कार को स को बेच देता है, जो इसे पूर्ण सद्विश्वास के साथ खरीदता है यहां स को इस कार पर अच्छा स्वामित्व प्राप्त होगा और ब अ के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है।

1. **माल पर अधिकार रखने वाले विक्रेता द्वारा विक्रय**–ऐसा व्यक्ति जिसने कोई माल खरीदा है और विक्रेता की सहमति से माल अपने अधिकार में ले लिया है, लेकिन उस माल का स्वामित्व हस्तान्तरित नही हुआ है, और ऐसा माल किसी तीसरे व्यक्ति को बेच दिया जाता है तो तीसरा व्यक्ति ऐसे माल पर अच्छा स्वामित्व प्राप्त करता है। इसके लिए निम्न शर्तो का पूरा होना जरूरी है–

(1) क्रेता का माल पर अधिकार होना चाहिए।

(2) माल को खरीदने वाला व्यक्ति पूर्ण सद्विश्वास के साथ माल खरीदे।

(3) क्रेता के पास माल विक्रेता की सहमति से होना चाहिए।

(4) माल को खरीदने वाले व्यक्ति को क्रेता के दूषित अधिकार का ज्ञान न हो। धारा 30 (2)

**अदत विक्रेता द्वारा विक्रय–**

धारा 54(3) के अनुसार अदत विक्रेता को यह अधिकार है कि वह अपने अधिकार में पड़े हुए माल का विक्रय कर सकता है, यदि क्रेता ने माल के मूल्य का भुगतान नही किया है ऐसी दशा में भी ऐसे माल का क्रेता माल पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर सकता है।

**अन्य अधिनियमों के अन्तर्गत विक्रय–**

निम्नाकिंत परिस्थितियां ऐसी है जिसमें विक्रय स्वामी के द्वारा नही किया जाता है लेकिन फिर भी क्रेता अच्छा स्वत्व प्राप्त करता है–

1. राजकीय प्रापक द्वारा विक्रय।
2. खोये माल को पाने वाले के द्वारा किया गया विक्रय।
3. गिरवीग्राही द्वारा विक्रय।

**प्रश्नः–**

**1.''कोई भी व्यक्ति अपने से अच्छा स्वत्व नही दे सकता''। समीक्षा कीजिए।**

**2.खोया हुआ माल पाने वाला व्यक्ति किन परिस्थितियों में माल का विक्रय कर सकता है?**

**3.''कोई भी विक्रेता माल में अपने से अच्छा स्वत्व क्रेता को प्रदान नही कर सकता है''। क्या इस नियम के अपवाद है?**

**विक्रय अनुबन्ध का निष्पादन**

एक सामान्य अनुबन्ध की तरह विक्रय अनुबन्ध भी पक्षकारों के बीच वैधानिक दायित्व उत्पन्न करता है। अनुबन्ध के सभी पक्षकार इन वैधानिक दायित्वों के निष्पादन के लिए बाध्य होते है। निष्पादन से तात्पर्य अनुबन्ध के सभी वचनों और दायित्वों को पूरा करने से है। और अन्य शब्दों में निष्पादन किसी अनुबन्ध के अन्तर्गत दायित्वों के निर्वहन की सामान्य रीति है।

विक्रय अनुबन्ध के धारा 32 के अनुसार निष्पादन का अर्थ यह है कि विक्रेता अनुबन्ध की शर्तो के अनुसार क्रेता को माल की सुपुर्दगी करे तथा क्रेता माल के मूल्य का भुगतान विक्रेता को करे।

धारा 33 कहती है कि अनुबन्ध में किसी विपरीत व्यवस्था के अभाव में विक्रेता को मूल्य के बदले माल की सुपुर्दगी देने तथा क्रेता को सुपुर्दगी के बदले मूल्य चुकाने के लिए तैयार रहना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

## माल की सुपुर्दगी

### सुपुर्दगी का अर्थ एवं परिभाषा

**माल विक्रय अधिनियम की धारा 2(2) के अनुसार** –''एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छा से माल के हस्तान्तरण को सुपुर्दगी कहते है।''

### सुपुर्दगी के आवश्यक तत्व

1. माल के अधिकार का हस्तान्तरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को होना चाहिए, और
2. ऐसा हस्तान्तरण स्वैच्छिक होना चाहिए।

### सुपुर्दगी की विधि (धारा 33)

''बेचे हुए माल की सुपुर्दगी कोई भी ऐसा कार्य करके दी जा सकती है जिसे पक्षकार सुपुर्दगी मान ले अथवा जिसका प्रभाव यह हो कि माल क्रेता अथवा उसके प्रतिनिधि के अधिकार में आ जाए।''

सुपुर्दगी के प्रकार

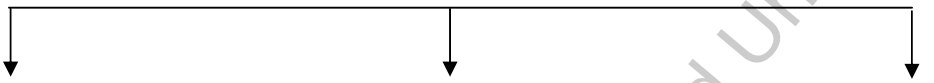

वास्तविक सुपुर्दगी | रचनात्मक सुपुर्दगी | सांकेतिक सुपुर्दगी

1. **वास्तविक सुपुर्दगी–** जब माल भौतिक रूप में विक्रेता से क्रेता को या उसके एजेन्ट को सौंपा जाता है तो उसे वास्तविक सुपुर्दगी कहते है। अन्य शब्दों में जब माल वास्तविक रूप से विक्रेता से क्रेता या उसके एजेन्ट को सौंप दिया जाता है तो उसे वास्तविक सुपुर्दगी कहते है।
2. **रचनात्मक सुपुर्दगी**–इसे कल्पित सुपुर्दगी भी कहते है। इस प्रकार की सुपुर्दगी में वस्तु भौतिक रूप से विक्रेता द्वारा क्रेता को नही सौंपी जाती है, किन्तु कब्जा रखने वाले व्यक्ति द्वारा यह स्वीकार करना कि वह वस्तु दूसरे की ओर से रखता है। धारा 36(3)

   **उदाहरण**–रमेश 100 बोरी गेहूँ सुरेश को बेचता है। गेहूँ रमेश के गोदाम में ही पड़े है। रमेश अपने गोदाम रक्षक से कहता है कि वह 100 बोरी गेहूं सुरेश के लिए रख दे। यह रचनात्मक सुपुर्दगी है।
3. **सांकेतिक सुपुर्दगी –**इसके अन्तर्गत भी माल का हस्तान्तरण वास्तविक रूप से नही होता है। इस सुपुर्दगी में आचरण के आधार पर सुपुर्दगी हुई मानी जाती है। अन्य शब्दों में इस सुपुर्दगी के अन्तर्गत विक्रेता कोई ऐसा कार्य करता है जिससे यह प्रतीत होता है कि माल पर क्रेता का अधिकार हो गया है। जैसे–रेलवे रसीद,कार की चाबी,जहाजी बिल्टी आदि।

**प्रश्न**

1. **माल विक्रय अनुबन्ध के निष्पादन से आप क्या समझते है?**
2. **माल की सुपुर्दगी से क्या आशय है?**
3. **सुपुर्दगी कितने प्रकार की होती है?**

### सुपुर्दगी से सम्बन्धित नियम

सुपुर्दगी से सम्बन्धित सामान्य नियम निम्नलिखित है –

1. **अनुबन्ध के अनुसार सुपुर्दगी** –सुपुर्दगी तभी वैध होती है जब वह अनुबन्ध की शर्तो के अनुसार दी जाती है। (धारा 31)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. **सुपुर्दगी और भुगतान समवर्ती शर्ते है**– किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में वस्तु की सुपुर्दगी एवं मूल्य का भुगतान समवर्ती शर्ते मानी जाती है। अर्थात् विक्रेता मूल्य के बदले क्रेता को माल की सुपुर्दगी देने को तैयार है और क्रेता सुपुर्दगी के बदले मूल्य का भुगतान करने को तैयार है। (धारा 32)

3. **सुपुर्दगी की विधि**–विक्रेता सुपुर्दगी की किसी भी विधि का चयन कर सकता है अर्थात् सुपुर्दगी वास्तविक रचनात्मक या सांकेतिक किसी भी प्रकार की हो सकती है। (धारा 33)

4. **आंशिक सुपुर्दगी**–पूर्ण सुपुर्दगी देने के उद्धेश्य से दी गई आंशिक सुपुर्दगी का स्वामित्व हस्तान्तरण के सम्बन्ध में वही प्रभाव होगा जो पूर्ण सुपुर्दगी का होता है। लेकिन यदि आंशिक सुपुर्दगी का आशय उसे पूर्ण वस्तु से अलग करना है तो शेष माल की सुपुर्दगी नही मानी जाएगी। (धारा 34)

5. **क्रेता द्वारा सुपुर्दगी के लिए आवेदन करना**–धारा 35 के अनुसार जब तक कोई विपरीत अनुबन्ध न हो विक्रेता वस्तु की सुपुर्दगी उस समय तक देने के लिए बाध्य नही है जब तक कि क्रेता सुपुर्दगी के लिए आवेदन नही करता है। यदि क्रेता ऐसा नही करता है तो वह विक्रेता के विरूद्ध कोई कार्यवाही नही कर सकता है।

6. **सुपुर्दगी का स्थान**–सुपुर्दगी उस स्थान पर दी जानी चाहिए जो स्थान दोनों पक्षकारों ने मिल कर निश्चित किया है। यदि सुपुर्दगी का स्थान निश्चित नही किया गया है तो किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में विक्रय की दशा में सुपुर्दगी उस स्थान पर दी जाएगी जहां माल अनुबन्ध करते समय विद्यमान था। विक्रय के ठहराव की दशा में भी यदि स्थान निश्चित नही किया गया है तो सुपुर्दगी उस स्थान पर दी जाएगी जहां माल विक्रय का ठहराव करते समय मौजूद था। भावी माल की दशा में भी यदि सुपुर्दगी का स्थान निश्चित नही किया गया है तो सुपुर्दगी उस स्थान पर दी जाएगी जहां माल निर्मित किया गया है। (धारा 36 (1) )

7. **सुपुर्दगी का समय**–विक्रेता क्रेता को केवल सुपुर्दगी देने के लिए बाध्य है, लेकिन माल भेजने के लिए यदि कोई समय निश्चित नही किया गया है तो सुपुर्दगी उचित समय के अन्दर दी जानी चाहिए। उचित समय क्या होगा यह परिस्थिति पर निर्भर करेगा। (धारा 36 (2) )

8. **जब माल तीसरे पक्षकार के पास हो**–यदि विक्रय के समय माल किसी तीसरे पक्षकार के पास हो तो माल की सुपुर्दगी तब तक पूर्ण नही मानी जाएगी जबतक कि तृतीय पक्षकार क्रेता को सूचित नही करता है कि माल उसके पास उसकी ओर से (क्रेता की ओर से) पड़ा है। लेकिन यदि सुपुर्दगी स्वत्व के प्रलेखों के आधार पर दी जाती है तो तीसरे पक्षकार की सूचना की आवश्यकता नही पड़ती। (धारा 36 (3) )

9. **सुपुर्दगी के खर्चे**–धारा 34(5) के अनुसार किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में माल को सुपुर्दगी योग्य स्थिति में लाने तथा सुपुर्दगी के समस्त खर्चे विक्रेता द्वारा वहन किये जाते है।

10. **गलत मात्रा में सुपुर्दगी**–सुपुर्दगी विक्रय अनुबन्ध में वर्णित मात्रा में ही दी जानी चाहिए। यदि सुपुर्दगी कम या ज्यादा या किसी अन्य प्रकार के माल की दी जाती है तो क्रेता माल को स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है। (धारा 37)

11. **किश्तों में सुपुर्दगी**–सामान्यतः विक्रेता क्रेता को माल की सुपुर्दगी किश्तों में लेने के लिए बाध्य नही कर सकता है। अर्थात् किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में सुपुर्दगी सम्पूर्ण माल की होनी चाहिए।

12. **माल वाहक तथा घाटपाल को माल की सुपुर्दगी**–धारा 39 (1) के अनुसार जब माल किसी मालवाहक के माध्यम से भेजा जा रहा हो तो सुपुर्दगी उस समय पूर्ण हो जाती है जब वह माल मालवाहक घाटपाल को सौंप दिया जाता है।

13. **दूरस्थ स्थान पर सुपुर्दगी**–यदि विक्रेता अपनी जोखिम पर सुपुर्दगी किसी दूरस्थ स्थान पर देने का ठहराव करता है फिर भी किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में उस माल की क्षति की जोखिम क्रेता पर ही होगी। (धारा 40)

## माल की स्वीकृति/माल को स्वीकार करना

क्रेता के सम्बन्ध में अनुबन्ध के निष्पादन से तात्पर्य यह है कि क्रेता माल की सुपुर्दगी स्वीकार करे और माल के मूल्य का भुगतान करें। माल की सुपुर्दगी और माल को स्वीकार करने में अन्तर है। स्वीकृति से तात्पर्य क्रेता द्वारा माल को पूर्ण रूप से स्वीकार कर लेना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

धारा 42 के अन्तर्गत निम्नलिखित परिस्थितियां ऐसी है जिसमें यह माना जाता है कि क्रेता ने माल स्वीकार कर लिया है–

1. धारा 42 के अन्तर्गत जब क्रेता विक्रेता को सूचित करता है कि उसने माल स्वीकार कर लिया है।
2. जब क्रेता माल प्राप्त करके कोई ऐसा कार्य करता है जो विक्रेता के हितों के प्रतिकूल हो।
3. जब क्रेता उचित अवधि में विक्रेता को कोई सूचना नही देता है और माल अपने पास रख लेता है।
4. धारा 43 के अन्तर्गत जब सुपुर्द किये गये माल को अस्वीकार कर दिया जाता है तो क्रेता ऐसा माल लौटाने के लिए बाध्य नही है। वह केवल माल की अस्वीकृति की सूचना पहुंचाने के लिए ही बाध्य है।
5. यदि विक्रेता उचित समय में माल की सुपुर्दगी देना चाहता है लेकिन क्रेता उचित समय में ऐसी सुपुर्दगी लेने से इन्कार करता है और विक्रेता को क्रेता की ऐसी उपेक्षा एवं लापरवाही के कारण कोई नुकसान होता है तो क्रेता को उसकी क्षतिपूर्ति करनी होगी।

### क्रेता के अधिकार एवं कर्तव्य

**क्रेता के अधिकार**–किसी क्रेता को वस्तु विक्रय अधिनियम के तहत निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते है–

1. क्रेता को अनुबन्ध के अनुसार सुपुर्दगी प्राप्त करने का अधिकार है।
2. जब तक अनुबन्ध में कोई विपरीत व्यवस्था न हो क्रेता माल की सुपुर्दगी किस्तों में लेने के लिए बाध्य नही है,यदि ऐसा होता है तो वह अनुबन्ध को भंग कर सकता है।
3. क्रेता को माल स्वीकार करने से पहले उसे जांचने का अधिकार होता है।
4. यदि विक्रेता अनुबन्ध भंग करता है तो क्रेता को विक्रेता के विरूद्ध उपचार प्राप्त होते है।
5. क्रेता को शर्त भंग को आश्वासन भंग मानने का अधिकार होता है।

**क्रेता के कर्तव्य**

1.क्रेता का कर्तव्य है कि वह सुपुर्दगी लेकर माल के मूल्य का भुगतान करे।
2. माल की सुपुर्दगी के लिए आवेदन करना।
4. माल की खराबी की जोखिम लेने का कर्तव्य
5. उचित समय में सुपुर्दगी की मांग करने का कर्तव्य।
6. माल को अस्वीकार करने की दशा में विक्रेता सूचित करने कर्तव्य।
7. माल को अस्वीकार करने पर होने वाली क्षति की पूर्ति, ब्याज चुकाने, अनुबन्ध भंग के परिणामस्वरूप होने वाली क्षति की पूर्ति करने का कर्तव्य।

**प्रश्न**

1. **क्रेता माल की सुपुर्दगी को कब अस्वीकार कर सकता है?**
2. **माल की सुपुर्दगी के सम्बन्ध में कोन–कोन से नियम है?**
3. **क्रेता के अधिकार एवं कर्तव्य बताइए।**

## अदत विक्रेता

## (Unpaid seller)

**अदत विक्रेता कौन होता है?**

एक विक्रेता अदत विक्रेता माना जाता है जबकि–

(अ) ''उसे विक्रय किये गये माल का पूरा मूल्य चुकाया नही गया है या सम्पूर्ण मूल्य प्रस्तुत नही किया गया हो या

(ब) जब उसे मूल्य भुगतान में कोई विनिमय विपत्र या अन्य विनिमय साध्य विलेख दिया गया है किन्तु वह अप्रतिष्ठित हो गया है।'' (धारा 45)

कसी विक्रेता के अदत विक्रेता होने के लिए निम्न शर्तों का होना अनिवार्य है–

1. जब सम्पूर्ण माल का मूल्य चुकाया नही गया है और न ही विक्रेता के सम्मुख भुगतान प्रस्तुत किया गया है।
2. क्रेता द्वारा दिये गये विनिमय साध्य विलेख अप्रतिष्ठित हो गये हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

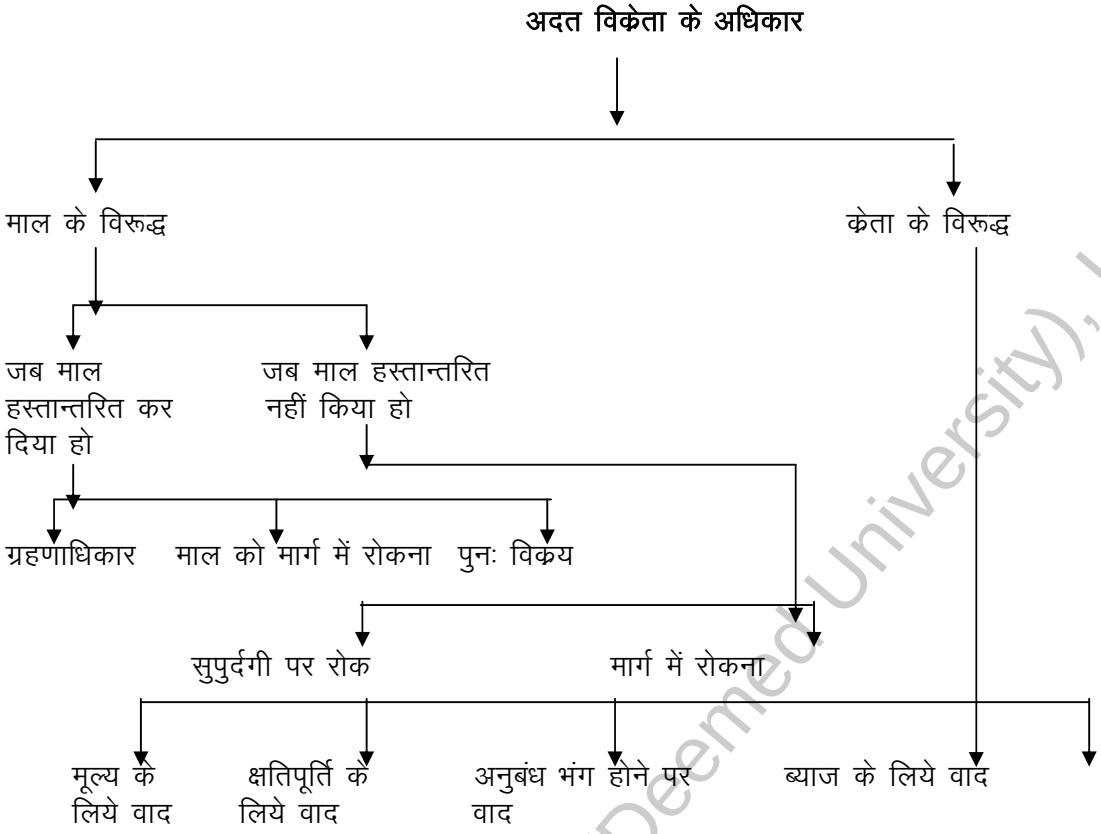


### 1 अदत विक्रेता के माल के विरूद्ध अधिकार

(अ) जब माल क्रेता को हस्तान्तरित किया जा चुका हो तो एक अदत विक्रेता को निम्न तीन अधिकार प्राप्त होते है–

1. **ग्रहणाधिकार**– ग्रहणाधिकार एक ऐसा अधिकार है जिसके अन्तर्गत माल को तब तक रोक कर रखा जा सकता है जब तक कि उसके विरूद्ध दावों या मांगो को पूरा नही कर दिया जाता है।

धारा 47(1) के अनुसार अदत विक्रेता अपने अधिकार में पड़े हुए माल को तब तक रोककर रख सकता है जब तक कि उसे मूल्य का भुगतान नही कर दिया जाये या प्रस्तुत नही किया जाए।

**ग्रहणाधिकार से सम्बन्धित नियम**

ग्रहणाधिकार से सम्बधित नियम निम्नलिखित है–

1. विक्रेता के पास माल का अधिकार होना चाहिए अथवा विक्रेता का माल पर अधिकार होना चाहिए।
2. ग्रहणाधिकार वास्तविक अधिकार पर निर्भर है न कि स्वामित्व पर।
3. अदत विक्रेता ग्रहणाधिकार का प्रयोग केवल मूल्य प्राप्त करने के लिए ही कर सकता है न कि अन्य व्ययों के लिए
4. अदत विक्रेता ग्रहणाधिकार का प्रयोग कर सकता है चाहे माल उसके अधिकार में एक एजेन्ट या निक्षेपग्रहीता की तरह ही क्यों न हो। (धारा 47 (2))
5. ग्रहणाधिकार का प्रयोग तब किया जा सकता है जब माल उधार नही बेचा गया हो। (धारा 47)
6. जब अदत विक्रेता को मूल्य के लिए डिक्री प्राप्त हो जाती है तब भी ग्रहणाधिकार समाप्त नही होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. यदि विक्रेता ने माल के किसी एक भाग की सुपुर्दगी दे दी है, तो वह शेष माल पर ग्रहणाधिकार का प्रयोग कर सकता है।

## प्रश्न

1. **अदत विक्रेता से आप क्या समझते है?**
2. **ग्रहणाधिकार क्या है?**
3. **अदत विक्रेता के अधिकारों को स्पष्ट कीजिए।**

### ग्रहणाधिकार की समाप्ति

निम्नांकित परिस्थितियों में एक अदत विक्रेता माल पर अपना ग्रहणाधिकार खो देता है–

1. जब अदत विक्रेता माल पर अपना अधिकार सुरक्षित किये बिना ही माल किसी मालवाहक को क्रेता के पास भेजने के लिए सोंप देता है तो उसका ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है।(धारा 49 (1) )
2. जब क्रेता या उसका एजेन्ट माल पर वैधानिक अधिकार प्राप्त कर लेता है तो विक्रेता का माल पर से ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है।

   **उदाहरण–**एक्स कुछ माल वाई को बेचता है एक्स यह माल वाई के एजेन्ट को सुपुर्द कर देता है। यहां एक्स का माल पर से ग्रहणाधिकार समाप्त हो गया है।
3. जब विक्रेता स्वेच्छा से अपने इस अधिकार का त्याग कर देता है। जैसे वह माल उधार की शर्त पर बेचता है, तो ऐसे माल पर ग्रहणाधिकार का प्रयोग नही किया जा सकता है।

(ब) **माल को मार्ग में रोकने का अधिकार** (धारा 50–52)

अदत विक्रेता का माल के विरूद्ध अगला अधिकार माल को मार्ग में रोकने का अधिकार है। माल विक्रय अधिनियम की धारा 50 के अनुसार–''इस अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत जब क्रेता दिवालिया हो जाता है और अदत विक्रेता जिसने माल किसी वाहक को दिया है तो उसे माल को मार्ग में रोक लेने का अधिकार है, अर्थात् जब तक माल मार्ग में है वह उसे रोककर अपने अधिकार में ले सकता है और फिर मूल्य के भुगतान होने तक अपने पास रख सकता है।''

माल को मार्ग में रोकने के अधिकार का प्रयोग करने के लिए निम्नलिखित शर्तो का पूरा होना अनिवार्य है–

1. जब क्रेता दिवालिया हो गया हो।
2. जब माल मार्ग में हो।
3. क्रेता के दिवालिया होने की सूचना विक्रेता को मिल गई हो।
4. विक्रेता ने माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण कर दिया हो।

दिवालिया व्यक्ति ऐसा व्यक्ति होता है जिसने सामान्य कारोबार के दौरान अपने ऋणों का भुगतान करना बन्द कर दिया हो, या जो अपने देय ऋणों का भुगतान नही कर सकता हो, चाहे उसने दिवालियेपन का कोई कार्य किया है अथवा नही।

**माल के मार्ग में रहने की अवधि** (धारा 51)

माल उस समय तक मार्ग में ही माना जाएगा जब तक की माल क्रेता या उसके प्रतिनिधि के अधिकार में नही पहुंच जाता है। यदि माल किसी निक्षेपग्रहीता या किसी मालवाहक को क्रेता के पास पहुंचाने के उद्धेश्य से सौंपा जाता है तो माल उस समय तक मार्ग में समझा जाएगा जब तक कि क्रेता या उसका एजेन्ट उसकी सुपुर्दगी प्राप्त न कर ले।

**माल को मार्ग में किस प्रकार रोका जा सकता है?**(धारा 52)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

एक अदत विक्रेता माल को मार्ग में निम्न में से किसी भी विधि से रोक सकता है–

1. माल को वास्तविक रूप से अपने अधिकार में लेकर ।
2. मालवाहक अथवा निक्षेपग्रहीता को माल रोकने की सूचना देकर।

ऐसी सूचना या तो ऐसे व्यक्ति को दी जानी चाहिए जिसके अधिकार में माल है अथवा प्रधान को दी जानी चाहिए। प्रधान को सूचना इस प्रकार दी जानी चाहिए ताकि वह तुरन्त प्रभावी हो सके अर्थात् मालवाहक या निक्षेपग्रहीता सूचना प्राप्त होते ही तुरन्त सुपुर्दगी रोक सके।

**क्रेता द्वारा माल पुनः बेचने या गिरवी रखने का प्रभाव** (धारा 53)

कोई भी क्रेता अपने द्वारा क्रय किये गये माल को पुनः बेचता है या गिरवी रखता है तो उससे अदत विक्रेता के ग्रहणाधिकार तथा माल को मार्ग में रोकने के अधिकार पर कोई विपरीत प्रभाव तब तक नही पड़ेगा जब तक कि विक्रेता ने स्वयं क्रेता को ऐसा करने की छूट नही दे दी हो।

**प्रश्न**

1. **माल को मार्ग में रोकने के अधिकार से आप क्या समझते है?**
2. **माल मार्ग में कब माना जाता है?**
3. **ग्रहणाधिकार की समाप्ति कब होती है?**

**(स) पुनः विक्रय का अधिकार (धारा 54)**

अदत विक्रेता निम्नलिखित परिस्थितियों में माल को पुनः बेच सकता है–

1. जब माल नाशवान प्रकृति का हो तो अदत विक्रेता को यह अधिकार होता है कि वह क्रेता को सूचना दिये बिना ही ऐसे माल का पुनः विक्रय कर सकता है। (धारा 54)
2. जब अदत विक्रेता क्रेता को माल के पुनः विक्रय की सूचना देकर माल बेचता है, और क्रेता उचित समय में अपना उतर नही भेजता है तो अदत विक्रेता माल का पुनः विक्रय कर सकता है। (धारा 54)
3. यदि विक्रेता विक्रय करते समय ही माल के पुनः विक्रय के अधिकार को आरक्षित कर लेता है तो वह माल का पुनः विक्रय कर सकता है। (धारा 54 (3) )

यह ध्यान देने योग्य है कि यदि अदत विक्रेता को पुनः विक्रय से कोई लाभ होता है तो ऐसा लाभ वह क्रेता को देने के लिए बाध्य नही है। किन्तु यदि माल के पुनः विक्रय से हानि होती है तो विक्रेता क्रेता पर हानि की शर्त के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।(धारा 54(2) )

यदि विक्रेता क्रेता को उचित सूचना दिये बिना ही माल का पुनः विक्रय कर देता है तो अनुबन्ध भंग के कारण विक्रेता क्रेता से किसी भी प्रकार की क्षतिपूर्ति प्राप्त नही कर सकता है, जबकि क्रेता विक्रेता से वह लाभ प्राप्त कर सकता है जो कि माल के पुनः विक्रय से प्राप्त होता है।

(ब) **जब माल क्रेता को हस्तान्तरित नही किया गया हो–**

जब माल का हस्तान्तरण क्रेता को नही किया गया हो तो विक्रेता माल की सुपुर्दगी रोक सकता है या माल को मार्ग में से रोक सकता है।

**क्रेता के विरूद्ध अदत विक्रेता के अधिकार**

उपरोक्त अधिकारों के अतिरिक्त एक अदत विक्रेता को क्रेता के विरूद्ध अधिकार प्राप्त होते है जो निम्नलिखित है–

1. **मूल्य के लिए वाद (धारा 55)** धारा 55 (1) के अनुसार जब माल का हस्तान्तरण क्रेता को किया जा चुका हो और क्रेता माल के मूल्य का भुगतान नही करता है अथवा भुगतान करने से इन्कार करता है तो विक्रेता क्रेता पर मूल्य प्राप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। धारा 55(2) में यह स्पष्ट किया गया है कि यदि अनुबन्ध के अनुसार मूल्य किसी निश्चित दिन चुकाना तय हुआ है और क्रेता उस दिन मूल्य चुकाने से इन्कार करता है तो विक्रेता क्रेता पर मूल्य चुकाने के लिए वाद दायर कर सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. **क्षतिपूर्ति के लिए वाद जब क्रेता माल अस्वीकार करता है–(धारा 50)** जब क्रेता दोषपूर्णरूप से माल अस्वीकार करता है या उसका मूल्य चुकाने में उपेक्षा करता है तो विक्रेता ऐसी अस्वीकृति से उत्पन हानि के लिए क्रेता पर क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। इस प्रकार की क्षतिपूर्ति की गणना अनुबन्ध अधिनियम की धारा 73 के प्रावधानों के अनुसार की जायेगी जो निम्नलिखित है–

1. जब ऐसे माल के लिए बाजार मूल्य उपलब्ध है तो बाजार मूल्य और अनुबन्ध मूल्य के अन्तर के आधार पर क्षतिपूर्ति वसूल की जा सकती है।

2. जब बाजार मूल्य और अनुबन्ध के मूल्य में कोई अन्तर नही हो तो विक्रेता अनुबन्ध की परिस्थितियों और तथ्यों को ध्यान में रखकर क्षतिपूर्ति वसूल कर सकता है। यह ध्यान रखने योग्य बात है कि यदि विक्रेता क्रेता को माल की सुपुर्दगी देने के लिए तैयार है, और वह क्रेता से सुपुर्दगी लेने के लिए प्रार्थना करता है, किन्तु क्रेता दोषपूर्ण तरीके से सुपुर्दगी लेने से इन्कार करता है, तो विक्रेता ऐसी अस्वीकृति से हुई समस्त हानि क्रेता से वसूल कर सकता है, तथा उस माल की देखरेख के समस्त खर्चे प्राप्त कर सकता है। (धारा 44)

3. **निश्चित तिथि से पूर्व अनुबन्ध का खण्डन–** धारा 60 के अनुसार यदि क्रेता निश्चित तिथि से पूर्व ही अनुबन्ध का खण्डन कर देता है तो विक्रेता उस अनुबन्ध को खण्डित मानते हुए अनुबन्ध की तिथि तक इन्तजार कर सकता है या इससे पहले ही अनुबन्ध को भंग समझकर क्रेता पर वाद दायर कर सकता है।

4. **ब्याज के लिए वाद–**यदि विक्रेता और क्रेता के बीच माल के मूल्य के भुगतान कीकोई तिथि निश्चित की गई है तो इस तिथि के बाद यदि क्रेता भुगतान नही करता है तो विक्रेता क्रेता से ब्याज की राशि वसूल कर सकता है। यदि अनुबन्ध में ब्याज के सम्बन्ध में कुछ तय नही किया गया है तो ऐसा ब्याज देय तिथि तथा वास्तविक भुगतान तिथि के समय के लिए लगाया जा सकता है। (धारा 60(1,2) )

**विक्रेता के विरूद्ध क्रेता के अधिकार**

जिस प्रकार विक्रेता को क्रेता के विरूद्ध अधिकार प्राप्त होते है ठीक उसी प्रकार विक्रेता द्वारा अनुबन्ध भंग करने पर क्रेता को विक्रेता के विरूद्ध निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते है–

1. **सुपुर्दगी न देने पर क्षतिपूर्ति के लिए वाद–** यदि विक्रेता क्रेता को अनुबन्ध की शर्तो के अनुसार माल सुपुर्द नही करता है तो क्रेता को विक्रेता के विरूद्ध क्षतिपूर्ति का वाद प्रस्तुत करने का अधिकार है। (धारा 57)

2. **निर्दिष्ट निष्पादन के लिए वाद–** विक्रेता द्वारा अनुबन्ध भंग किये जाने पर क्रेता अनुबन्ध के निर्दिष्ट निष्पादन के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। ऐसा वाद तभी प्रस्तुत किया जा सकता है जबकि–

1. **माल निश्चित हो,**
2. **क्षतिपूर्ति का उपचार पर्याप्त नही हो,**
3. **माल मूल्यवान हो। (धारा 58)**

4. **आश्वासन भंग होने पर वाद**–जब विक्रेता ने अनुबन्ध का कोई आश्वासन भंग कर दिया हो या कोई शर्त भंग कर दी हो लेकिन क्रेता उसे आश्वासन भंग मान लेता है तो ऐसी स्थिति में क्रेता क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। (धारा 59)

5. **निर्धारित तिथि से पूर्व अनुबन्ध भंग करने पर वाद**–यदि विक्रेता निर्धारित तिथि से पूर्व ही अनुबन्ध भंग कर देता है तो क्रेता तत्काल अनुबन्ध को निरस्त समझकर क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है अथवा निष्पादन तिथि तक सुपुर्दगी का इन्तजार कर सकता है। (धारा 60)

6. **मूल्य वापसी के लिए वाद**–यदि क्रेता द्वारा मूल्य का भुगतान अग्रिम रूप से कर दिया गया है तो विक्रेता द्वारा अनुबन्ध भंग किये जाने पर क्रेता ऐसे अग्रिम मूल्य की वापसी के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। (धारा 61)

7. **ब्याज के लिए वाद**–यदि कानून के अनुसार क्रेता ब्याज प्राप्त करने का अधिकारी है तो वह ब्याज प्राप्त करने के लिए विक्रेता पर वाद प्रस्तुत कर सकता है। (धारा 61)

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University, Ladnun

यदि अनुबन्ध में क्रेता के ब्याज के सम्बन्ध में कुछ नही कहा गया है तो क्रेता उस तिथि से वाद प्रस्तुत कर सकता है जिस तिथि को उसने अग्रिम मूल्य का भुगतान किया था।

**प्रश्नः— 1. अदत विक्रेता माल का पुनः विक्रय कब कर सकता है?**

**2.अनुबन्ध भंग करने की दशा में क्रेता तथा विक्रेता के अधिकार बताइए।**

**नीलाम द्वारा विक्रय**

नीलाम द्वारा विक्रय माल का सार्वजनिक विक्रय है जिसमें नीलाम किये जाने वाले माल के सम्भावित क्रेता इक्ट्ठे होते है और माल की बोली लगाते है।जिस व्यक्ति द्वारा माल की सबसे ऊंची बोली लगाई जाती है, उसे माल का विक्रय कर दिया जाता है। नीलामकर्ता माल के स्वामी का एजेन्ट होता है, जो उसकी और से माल का विक्रय करता है। अर्थात् नीलामकर्ता और माल के स्वामी के बीच प्रधान और एजेन्ट का सम्बन्ध होता है।

**माल नीलाम करने की प्रक्रिया**

नीलाम के लिए निश्चित स्थान पर अधिकाधिक संख्या में लोग बोली लगाने के लिए पहुंच सके इसके लिए नीलामी से पूर्व माल के नीलाम की सार्वजनिक सूचना दी जाती है। नीलामी की ऐसी सूचना प्रस्ताव का निमंत्रण कही जाती है।जब सम्भावित क्रेता अपनी–अपनी बोली लगाते है तो विक्रेता उन में से सर्वाधिक मूल्य की बोली को स्वीकार कर लेता है। बोली स्वीकार करने पर नीलाम करने वाला 'एक'–'दो'–'तीन' कहता है अथवा 'माल जा रहा है'– 'माल जा रहा है' –'गया' शब्द बोलता है या हथौड़े से किसी वस्तु पर चोट मार कर बोली समाप्ति की घोषणा करता है।

**नीलाम द्वारा विक्रय के सम्बन्ध में नियम**

धारा 64 में नीलाम द्वारा विक्रय के सम्बन्ध में नियम बताये गये है जो निम्नलिखित है–

1. यदि नीलाम द्वारा विक्रय के अन्तर्गत माल अलग–अलग भागों में बेचा जा रहा हो तो माल के प्रत्येक भाग को नीलामी विक्रय अनुबन्ध की अलग–अलग विषय–वस्तु माना जायेगा।
2. नीलाम द्वारा विक्रय की दशा में विक्रय प्रक्रिया तब पूरी होती है जबकि नीलामकर्ता सबसे ऊंची बोली को स्वीकार कर लेता है और विक्रय अनुबन्ध पूरा होने पर हथौड़ा गिरा देता है या प्रथा के अनुसार कार्यवाही करके नीलाम द्वारा विक्रय को पूरा कर देता है।
3. बोली लगाने वाला व्यक्ति विक्रय अनुबन्ध के पूरा होने से पहले कभी भी अपनी बोली वापस ले सकता है।
4. नीलाम द्वारा विक्रय सशर्त या शर्तरहित हो सकता है।
5. विक्रेता नीलाम में बोली लगाने के अधिकार को आरक्षित कर लेता है तो विक्रेता या उसकी और से कोई भी व्यक्ति बोली लगा सकता है।
6. कभी–कभी नीलाम द्वारा विक्रय के अन्तर्गत नीलाम की शर्तो के अनुसार बोली लगाने वाले को जमानत राशि जमा करवानी पड़ती है। इस दशा में बोली लगाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को बोली लगाने से पूर्व जमानत राशि जमा करवानी पड़ती है।
7. नीलामी द्वारा माल बेचने वाला व्यक्ति माल का आरक्षित मूल्य रख सकता है। इस मूल्य को गोपनीय भी रखा जा सकता है। नीलामकर्ता इससे कम मूल्य पर माल नही बेच सकता है।
8. यदि नीलाम द्वारा विक्रय की दशा में कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को बोली लगाने में निरूत्साहित करता है तो वह अवैध माना जाता है। ऐसी स्थिति में नीलामकर्ता नीलामी को रद्व कर सकता है।
9. यदि कोई विक्रेता मूल्य बढ़ाने के लिए अपनी ओर से बनावटी बोली लगाता है तो ऐसी दशा में सर्वाधिक बोली लगाकर माल खरीदने का अनुबन्ध व्यर्थ समझा जाता है।

**प्रश्नः–1. नीलाम द्वारा विक्रय क्या है?**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**2. नीलाम में कोई बोलीदाता अपनी बोली कब वापस ले सकता है?**

**3.नीलामी विक्रय से सम्बन्धित नियमों की विवेचना कीजिए।**

## विदेशी विनिमय प्रबंध अधिनियम

**परिचय–** विदेशी विनिमय के प्रबंध को बेहतर बनाने के लिए विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम, 1973 (FERA)की समीक्षा की गई। इस अधिनियम में कुछ कमियां होने के कारण इसे समाप्त कर एक नया अधिनियम बनाने का निर्णय किया गया। इस अधिनियम के स्थान पर विदेशी विनिमय प्रबंध अधिनियम,1999 पारित किया गया जिसे 9 दिसम्बर 1999 को राष्ट्रपति की सम्मति मिल गई। इस अधिनियम को 'फेमा' (FEMA) के नाम से जाना जाता है। इसे केन्द्रीय सरकार द्वारा एक अधिसूचना जारी करके 1जून 2000 से प्रभावी कर दिया गया था।

## फेमा का प्रभाव एवं विस्तार

1. यह अधिनियम सम्पूर्ण भारत में लागू होता है।

2. यह अधिनियम भारत के निवासी किसी भी व्यक्ति के स्वामित्व अथवा नियंत्रण वाली भारत के बाहर सभी शाखाओं, कार्यालयों, और एजेन्सियों पर भी लागू होता है।

3. यदि भारत का निवासी व्यक्ति भारत के बाहर इस नियम का उल्लंघन करता है तब भी उस पर यह अधिनियम लागू होता है।

**उद्धेश्य–**फेमा के उद्धेश्य निम्नलिखित है–

1. भारत में विदेशी मुद्रा का सुव्यवस्थित विकास करना और उसे बनाए रखना।

2. विदेशी विनिमय से सम्बन्धित कानून को सुद्दढ़ करना और विदेशी विनिमय का बेहतर प्रबंध करना।

**विदेशी विनिमय प्रबंध अधिनियम के प्रमुख प्रावधान**

फेमा में विदेशी विनिमय के नियमन एवं प्रबंध के निम्नांकित पहलुओं के सम्बन्ध में प्रावधान सम्मलित किये गये है–

1. **विदेशी विनिमय एवं प्रतिभूति के लेन–देन सम्बन्धी प्रावधान**–इस अधिनियम में विदेशी विनिमय एवं प्रतिभूतियों के लेन–देन पर कुछ प्रतिबन्ध लगाए गये है अर्थात् निम्नांकित व्यवहार रिर्जव बैंक की पूर्वानुमति के बिना नही किये जा सकते है।

- कोई भी व्यक्ति अधिकृत व्यक्ति के अलावा किसी भी अन्य व्यक्ति से विदेशी प्रतिभूति का लेन–देन नही करेगा।(धारा 3())
- कोई भी व्यक्ति भारत के बाहर के निवासी किसी भी व्यक्ति को या उसकी साख के लिए भुगतान नही करेगा। (धारा 3(इ))
- भारत का निवासी कोई भी व्यक्ति भारत के बाहर के किसी भी व्यक्ति के आदेश से या किसी भी व्यक्ति की ओर से अधिकृत व्यक्ति के माध्यम के अलावा किसी भी तरीके से भुगतान प्राप्त नही करेगा। (धारा 3 (ब) )
- कोई भी व्यक्ति किसी भी व्यक्ति से भारत के बाहर किसी सम्पति को प्राप्त करने के अधिकार के हस्तान्तरण या सृजन या अधिप्राप्ति के सम्बन्ध में प्रतिफल के रूप में भारत में भी कोई वितीय लेन–देन नहीं करेगा। (धारा 3(क) )

2. **विदेशी विनिमय प्रतिभूति आदि को धारित करने से सम्बन्धित प्रावधान**–भारत का निवासी कोई भी व्यक्ति किसी भी विदेशी मुद्रा को; अथवा किसी भी विदेशी प्रतिभूति को; अथवा भारत के बाहर स्थित किसी भी अचल सम्पति को अधिप्राप्त धारित या अन्तरित नही कर सकेगा या अपने कब्जे में नही रख सकेगा। (धारा 4)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. **चालू खाते के लेन–देन सम्बंधी प्रावधान**–कोई भी व्यक्ति किसी भी अधिकृत व्यक्ति को विदेशी मुद्रा बेच सकता है या अधिकृत व्यक्ति से ही विदेशी मुद्रा निकाल सकता है। यदि ऐसा विक्रय या आहरण चालू खाते का लेन–देन हो।(धारा 5) चालू खाता लेन–देन के अतिरिक्त किसी लेन–देन से है।

4. **पूंजी खाते के लेन–देन सम्बंधी प्रावधान**–कोई भी व्यक्ति धारा 6(2) के अधीन पूंजी खाते के लेन–देन के लिए किसी भी अधिकृत व्यक्ति को विदेशी विनिमय बेच सकता है या आहरित कर सकता है। (धारा 6(1) )

उपरोक्त धारा से स्पष्ट है कि पूंजी खाते के लेन–देन पर सामान्यतः कोई प्रतिबन्ध नही है लेकिन धारा 6 (2) के प्रावधानों के अनुसार रिजर्व बैंक केन्द्रीय सरकार से परामर्श करके निम्नांकित से सम्बन्धित निर्देश दे सकता है या प्रतिबन्ध लगा सकता है–

- किसी श्रेणी या श्रेणियों के पूंजी खाते के ऐसे लेन–देन, जो अनुमति योग्य है।
- ऐसे लेन–देनों के लिए स्वीकृति योग्य विदेशी विनिमय की सीमा निर्धारित कर सकता है। (धारा 6(2) ) लेकिन रिजर्व बैंक व्यवसाय के सामान्य संचालन के दौरान प्रत्यक्ष निवेश के ह्रास अथवा ऋणों के परिशोधन के कारण देय भुगतानों हेतु विदेशी विनिमय के आहरण पर कोई प्रतिबन्ध नही लगाया जाएगा।

**रिजर्व बैंक द्वारा प्रतिबन्ध / निषेध**–

रिजर्व बैंक निम्नांकित लेन–देनों का नियमन कर सकता है अथवा उन पर प्रतिबन्ध या निषेध लगा सकता है–

- भारत में निवासी किसी व्यक्ति द्वारा विदेशी प्रतिभूति के अन्तरण या निर्गमन पर प्रतिबन्ध।
- भारत के बाहर के निवासी किसी व्यक्ति द्वारा किसी प्रतिभूति के अन्तरण या निर्गमन पर प्रतिबन्ध।
- विदेशी विनिमय में उधार लेने या देने पर, चाहे वह किसी रूप में हो।
- भारत के बाहर के निवासी किसी व्यक्ति की भारत में किसी शाखा एजेन्सी या कार्यालय द्वारा किसी भी व्यक्ति या विदेशी प्रतिभूति के अन्तरण या निर्गमन पर प्रतिबन्ध।
- भारत के निवासी व्यक्तियों तथा भारत के बाहर निवासी व्यक्तियों के बीच निक्षेपों पर प्रतिबन्ध।
- भारत के निवासी किसी व्यक्ति द्वारा भारत के बाहर स्थित किसी अचल सम्पति के अन्तरण पर प्रतिबन्ध।
- करेंसी या करेंसी नोटों के निर्यात, आयात अथवा धारण करने पर प्रतिबन्ध।
- भारत के बाहर निवासी किसी भी व्यक्ति द्वारा भारत में किसी अचल सम्पति की अधिप्राप्ति या अन्तरण पर प्रतिबन्ध। लेकिन पांच वर्ष तक की अवधि के लिए पटटे पर सम्पति के अन्तरण पर कोई प्रतिबन्ध या निषेध नही लगाया जाएगा।

**भारत के बाहर के निवासी व्यक्ति का भारतीय करेंसी, प्रतिभूति और अचल सम्पति रखने का अधिकार**–भारत के बाहर का निवासी कोई भी व्यक्ति भारतीय करेंसी, भारतीय प्रतिभूति अथवा भारत में स्थित किसी भी अचल सम्पति में निवेश कर सकता है या धारित कर सकता है या अपने स्वामित्व में रख सकता है या उसे अन्तरित कर सकता है। लेकिन ऐसा केवल तभी संभव है–

- यदि उसने वह करेंसी, प्रतिभूति या सम्पति तब प्राप्त की हो जब वह भारत में निवासी था अथवा
- यदि उसने उनको (करेंसी या प्रतिभूति को) भारत के निवासी किसी व्यक्ति से उतराधिकार में प्राप्त किया हो। (धारा 6 (5) )

**भारत के बाहर के निवासी पर शाखा, कार्यालय खोलने पर प्रतिबन्ध/निषेध लगाने का अधिकार**–भारतीय रिजर्व बैंक को यह अधिकार है कि वह नियम बनाकर भारत के बाहर के निवासी व्यक्ति द्वारा भारत में किसी भी कार्य हेतु शाखा, कार्यालय या व्यवसाय का अन्य कोई स्थान स्थापित करने पर निषेध लगा सकता है या प्रतिबन्ध लगा सकता है या नियमन कर सकता है। (धारा 6 (6) )

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**5. माल तथा सेवाओं के निर्यात सम्बंधी प्रावधान–** फेमा में माल तथा सेवाओं के निर्यात के सम्बंध में निम्नांकित प्रावधान किये गये है–

**(क) निर्यात से सम्बन्धित तथ्यों की घोषणा**– प्रत्येक निर्यातक का यह कर्तव्य है कि वह निम्नांकित से सम्बन्धित तथ्यों की निर्धारित अधिकारी के समक्ष एक घोषणा करेगा–

- माल के पूर्ण निर्यात मूल्य की राशि, अथवा
- यदि निर्यात के समय निर्यात मूल्य का निर्धारण करना संभव नही हो तो मूल्य की वह राशि जो वर्तमान परिस्थितियों में भारत के बाहर उस माल को बेचने से निर्यातक को प्राप्त होने की आशा हो।
- रिजर्व बैंक द्वारा अपेक्षित अन्य सूचनाएँ देना–निर्यातक को वे सभी सूचनाएँ उपलब्ध करवानी चाहिए जो रिजर्व बैंक निर्यात से प्राप्त होने वाली राशि की वसूली को सुनिश्चित करने हेतु आवश्यक समझता है (धारा 7 (1) )
- रिजर्व बैंक की निर्देश देने की शक्ति–रिजर्व बैंक किसी भी निर्यातक को उस सभी बातों के निर्देश देने की शक्ति रखता है जिसे माल का पूर्ण निर्यात मूल्य या रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित घटाया हुआ मूल्य बिना किसी विलम्ब के वसूल किया जा सके। (धारा 7 (2) ) सेवाओं के प्रत्येक निर्यातक का यह कर्तव्य बनता है कि वह रिजर्व बैंक या ऐसे ही किसी अन्य निर्धारित अधिकारी को निर्धारित प्रारूप में निर्यात की गई सेवाओं के भुगतान की सही–सही तथ्यात्मक घोषणा प्रस्तुत करेगा। (धारा 7 (3) )

**6. विदेशी विनिमय की वसूली एवं प्रत्यावर्तन सम्बन्धी प्रावधान–**

विदेशी विनिमय की वसूली एवं प्रत्यावर्तन हेतु कदम उठाना–**यदि भारत के निवासी किसी व्यक्ति को विदेशी विनिमय देय अथवा अर्जित हो गई है तो वह व्यक्ति रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित अवधि में निर्धारित विधि से उस राशि को वसूलने तथा उसका भारत में प्रत्यावर्तन करने हेतु सभी उचित कदम उठायेगा।**

**प्रश्नः– 1. चालू खाता लेन–देन किसे कहते है?**

**2. फेमा का विस्तार प्रभाव तथा इसके उद्धेश्य स्पष्ट कीजिए।**

3. **फेमा के मुख्य प्रावधानों का वर्णन कीजिए।**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

# खण्ड–स
# विनिमय साध्य विलेख
## (The Negotiable Instrument)

वर्तमान समय में व्यापार राष्ट्रीय सीमाओं को लांघ चुका है। व्यापार का क्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय अथवा भूमण्डलीय हो गया है। ऐसी स्थिति में व्यापार के समस्त लेन–देन मुद्रा में करना व्यावहारिक नही है इसलिए वर्तमान समय में विनिमय साध्य विलेखों जैसे चेक, बिल एवं प्रतिज्ञा पत्रों का प्रचलन बढ़ गया है।

**भारत में विनिमय साध्य विलेखों सम्बन्धी प्रावधान विनिमय साध्य विलेख अधिनियम 1881 में दिये गये है। यह अधिनियम 1 मार्च 1882 को लागू किया गया था। वर्तमान में इस अधिनियम में 142 धाराऐं है। यह अधिनियम सम्पूर्ण भारत में लागू होता है। इस अधिनियम के प्रावधान भारत के निवासी एवं गैर भारतीय व्यक्तियों पर भी लागू होते है।**

### विनिमय साध्य विलेख –अर्थ एवं परिभाषा

**विनिमय साध्य विलेख शब्द दो शब्दों के योग से बना है–'विनिमय साध्य' एवं 'विलेख'। विनिमय साध्य का आशय एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरण योग्य होने से है जबकि विलेख का तात्पर्य किसी ऐसी लिखित प्रलेख से है जो पक्षकारों के बीच अधिकारों एवं दायित्वों का सृजन करता है अर्थात् यदि विनिमय साध्य विलेख का शाब्दिक अर्थ स्पष्ट करें तो विनिमय साध्य विलेख ऐसे लिखित विलेख होते है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरणीय होते है और सम्बन्धित पक्षकारों के बीच अधिकार एवं दायित्व उत्पन करते है।**

**विनिमय साध्य विलेख अधिनियम 1881 की धारा 13 के अनुसार–**

''विनिमय साध्य विलेख से तात्पर्य वाहक को अथवा आदेशानुसार देय वचन पत्र,विनिमय पत्र या चैक से है।''

**न्यायाधीश विलिसः–**विनिमय साध्य विलेख वह है ''जिसका स्वामित्व उस किसी भी व्यक्ति को मिल जाता है जो सद्भावना से मूल्य (प्रतिफल) देकर प्राप्त करता है, भले ही जिस व्यक्ति ने उसे प्राप्त किया है उसके स्वामित्व में कोई दोष क्यों न हो।''

अधिनियम में दी गई परिभाषा एवं न्यायाधीश विलिस की परिभाषा के अध्ययन के पश्चात कहा जा सकता है कि विनिमय साध्य विलेख ऐसे लिखित एवं हस्ताक्षरयुक्त प्रलेख है जिसके धारक को उस प्रलेख में उल्लिखित धनराशि प्राप्त करने का अधिकार होता है तथा उसे सुपुर्दगी या पृष्ठाकंन एवं सुपुर्दगी द्धारा भी अन्तरित किया जा सकता है। जो हस्तान्तरिती इसे किसी प्रतिफल के बदले पूर्ण सद्विश्वास के साथ प्राप्त करता है उसे ऐसे विलेखों पर अच्छा स्वामित्व मिलता है, भले ही हस्तान्तरणकर्ता का स्वामित्व दोषमुक्त ही क्यों न हो।

### विशेषताऐं –

अधिनियम की धारा 13 एवं न्यायाधीशों द्धारा दी गई परिभाषाओं से विनिमय साध्य विलेखों की निम्नलिखित विशेषताऐं दृष्टिगोचर होती है–

1. **लिखित विलेख –** विनिमय साध्य विलेख या चैक या प्रतिज्ञा पत्र इन सभी का लिखित में होना अनिवार्य है। यह प्रलेख कभी भी मौखिक नही हो सकते है।
2. **आदेशानुसार देय –**विनिमय साध्य विलेख वाहक को या आदेशानुसार देय हो सकते है। इसमें भुगतान आदेशित व्यक्ति को मिलता है।
3. **हस्ताक्षरयुक्त–**इन विलेखों का हस्ताक्षरयुक्त होना आवश्यक है। हस्ताक्षर पेन, पेन्सिल , रबड़ की मोहर अथवा अंगुठा लगाकर किये जा सकते है। बिना हस्ताक्षर के यह वैध नही होते है। ( धारा 13 (1))
4. **शर्तरहित –** विनिमय साध्य विलेख शर्तरहित प्रतिज्ञा या शर्तरहित आदेश होता है। उदाहरण– एक्स वाई को विलेख लिखकर देता है– मैं वाई या उसके आदेशित व्यक्ति को 50,000रूपये विलेख की तिथी के तीन माह पश्चात देने का वचन देता हूँ यदि वाई माल आदेशानुसार भेज देगा यह शर्तयुक्त विलेख है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. **हस्तान्तरण योग्य या अन्तर योग्य** – विनिमय साध्य विलेखों में हस्तान्तरणीयता का गुण होता है अर्थात् यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरण योग्य होते है। जब ऐसे विलेख वाहक होते है तो मात्र सुपुर्दगी से एवं आदेशित होने पर पृष्ठाकंन एवं सुपुर्दगी से एक दूसरे को हस्तान्तरित किये जा सकते है। यदि किसी विलेख में हस्तान्तरण योग्यता समाप्त हो जाती है तो वह विनिमय साध्य विलेख नही रहता है।

6. **निश्चित धनराशि** – विनिमय साध्य के वैध होने के लिए यह जरूरी है कि यह एक निश्चित धनराशि का हो। यदि विनिमय साध्य विलेख निश्चित धनराशि के लिए नही लिखा गया है तो यह व्यर्थ माना जाता है।

7. **धनराशि का मुद्रा में होना** –विनिमय साध्य विलेख निश्चित धनराशि का तो होना ही चाहिए साथ ही ऐसी राशि मुद्रा में होनी अनिवार्य है। मुद्रा से तात्पर्य नकद प्रचलित मुद्रा से है। यदि ऐसे विलेखों का भुगतान मुद्रा के अलावा किसी अन्य वस्तु से करने का आदेश हो तो ऐसे विलेख को वैध नही माना जाएगा। जैसे – विलेख में भुगतान के रूप में सोना चांदी, गेंहू आदि देने के आदेश देना।

8. **असीमित संख्या में अन्तरण** – विनिमय साध्य विलेख अनेक व्यक्तियों को असीमित संख्या में हस्तान्तरित या पृष्ठाकिंत किये जा सकते है। अर्थात् विलेख का धारक किसी अन्य व्यक्ति को तथा वह अन्य व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को इसका अन्तरण कर सकता है। ऐसा अन्तरण तब तक किया जा सकता है जब तक कि ऐसा विलेख परिपक्व नही हो जाता है।

9. **अच्छा स्वामित्व** – विनिमय साध्य विलेख के अन्तरिती को अन्तरणकर्ता से अच्छा स्वामित्व मिलता है यदि वह ऐसा विलेख पूर्ण सद्भावना एवं प्रतिफल के बदले प्राप्त करता है।

10. **अन्तरण की सूचना आवश्यक नही** – विनिमय साध्य विलेख के किसी भी पक्षकार को अन्तरण की सूचना देने की आवश्यकता नही होती है।

11. **वाद प्रस्तुत करना** – विनिमय साध्य विलेख का धारक उस प्रत्येक पक्षकार के विरूद्ध वाद चलाने का अधिकार रखता है जो उस विलेख के भुगतान के लिए उतरदायी है। धारक उस विलेख के भुगतान के लिए अपने नाम से वाद प्रस्तुत कर सकता है जो उसने पूर्ण सद्विश्वास से प्राप्त किया है।

12. **वैधानिक मान्यताऐं** – कोई भी बात अन्यथा सिद्ध न होने की दशा में किसी भी विनिमय साध्य विलेख की दशा में कुछ वैधानिक मान्यताऐं लागू होती है जैसे–प्रतिफल सम्बन्धी धारणा, साक्ष्य सम्बन्धी, स्टाम्प सम्बन्धी धारणा आदि।

## विनिमय साध्य विलेखों सम्बन्धी मान्यताऐं अथवा धारणाऐं

कोई भी बात अन्यथा सिद्ध न होने की दशा में किसी भी विनिमय साध्य विलेख के सम्बन्ध में निम्नलिखित धारणाऐं या मान्यताऐं लागू होती है–

1. **प्रतिफल सम्बन्धी धारणा** – प्रत्येक विनिमय साध्य विलेख के सम्बन्ध में यह माना जाता है कि वह प्रतिफल के बदले ही लिखा गया होगा जब तक कि कोई बात अन्यथा सिद्ध नही कर दी जाती है। ( धारा 118() )

2. **तिथि सम्बन्धी धारणा** – जिस तिथि का उल्लेख विनिमय साध्य विलेख पर किया गया है वही तिथि विलेख लिखने की तिथि मानी जाएगी। (धारा 118(इ) )

3. **स्वीकृति के समय सम्बन्धी धारणा** – यह धारणा केवल विनिमय विपत्रों पर लागू होती है। प्रत्येक विनिमय–पत्र के सम्बन्ध में यह धारणा है कि उसकी स्वीकृति उस पर अंकित तिथि के बाद किन्तु परिपक्वता की तिथि से पूर्व उचित समय में दी गई हो। (धारा 118 (ब) )

4. **अन्तरण के समय सम्बन्धी धारणा** – अन्तरण के समय के सम्बन्ध में यह धारणा प्रचलित है कि विनिमय साध्य विलेख का प्रत्येक अन्तरण परिपक्व तिथि के पूर्व ही किया गया है। ( धारा 118 (क) )

5. **पृष्ठाकंन क्रम सम्बन्धी धारणा** – इस सम्बन्ध में यह धारणा प्रचलित है कि किसी विलेख का पृष्ठाकंन उसी क्रम में किया गया था, जिस क्रम में वह विलेख पत्र दिखाई देता है। ( धारा 118 (म) )

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6. **स्टाम्प सम्बन्धी धारणा** – एक कानूनी धारणा यह भी है कि प्रत्येक विनिमय साध्य विलेख चाहे वह प्रतिज्ञा पत्र हो या विनिमय विपत्र, पर उचित राशि के स्टाम्प लगे हुए हो। ( धारा 118(ि) )

7. **धारक सम्बन्धी धारणा** – धारक के सम्बन्ध में एक धारणा यह भी है कि प्रत्येक धारक विलेख का यथाविधि धारक होगा अर्थात् उसने वह विलेख पूर्ण सद्विश्वास एवं प्रतिफल के बदले प्राप्त किया होगा। ( धारा 118 (ह) )

8. **प्रसाक्ष्य के प्रमाण सम्बन्धी धारणा** – यह धारणा अनादृत विलेखों के सम्बन्ध में है। जब किसी विलेख के अनादरण पर कोई वाद प्रस्तुत किया जाता है तो न्यायालय की यह धारणा होती है कि प्रसाक्ष्य का प्रमाण ही अनादरण का प्रमाण है जब तक कि अन्यथा सिद्ध न कर दिया जाए।

**प्रश्नः–**

1. **विनिमय साध्य विलेख को परिभाषित कीजिए।**
2. **एक वैध विनिमय साध्य विलेख के आवश्यक तत्व कौन–कौन से होते है?**
3. **विनिमय साध्य विलेख सम्बन्धी धारणाओं को स्पष्ट कीजिए ।**

**विनिमय साध्य विलेखों के प्रकार**

वर्तमान समय में अनेक प्रकार के विनिमय साध्य विलेख प्रचलित है। अध्ययन में सुविधा के दृष्टिकोण से इन विलेखों को दो भागों में बांटा गया है–

1. वैधानिक आधार पर – वैधानिकता के आधार पर अर्थात् विनिमय साध्य विलेख अधिनियम के अनुसार विलेख के निम्नलिखित तीन प्रकार है–

1. प्रतिज्ञा पत्र या वचन पत्र
2. विनिमय पत्र या विनिमय बिल, तथा
3. चैक

2. प्रथाओं या परम्पराओं के आधार पर – कुछ विलेख ऐसे भी है जिन्हें स्थानीय प्रथाओं एवं परम्पराओं के अनुसार भी विनिमय साध्य विलेख माना जाता है। ऐसे विलेख निम्न हो सकते है –

1. सरकारी वचन पत्र
2. शाहजोगी हुण्डी
3. अंश अधिपत्र
4. लाभांश अधिपत्र
5. वाहक ऋणपत्र
6. राजकोषीय बिल
7. बैंक ड्राफ्ट आदि।

निम्नलिखित प्रलेखों को प्रथाओं और परम्पराओं के अनुसार विनिमय साध्य विलेख नही माना गया है–

1. माल का सुपुर्दगी आदेश
2. मेट की रसीद
3. लदान पत्र
4. डॉक वारन्ट
5. घाटपाल का प्रमाण पत्र
6. भण्डारगृह का प्रमाण पत्र
7. अंश प्रमाण पत्र
8. जमा या निक्षेप की रसीद
9. जीवन बीमा पत्र
10. पोस्टल ऑडर

उपरोक्त प्रलेख सुपुर्दगी सम्बन्धी प्रलेख है न कि धन के भुगतान सम्बन्धी प्रलेख। इसलिए इन्हें विनिमय साध्य विलेख नही माना गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

## वचन–पत्र अथवा प्रतिज्ञा–पत्र

'' प्रतिज्ञा–पत्र या वचन–पत्र एक ऐसा लिखित विलेख है जिस पर लेखक अपने हस्ताक्षर करके शर्तरहित यह वचन देता है कि वह एक निश्चित व्यक्ति को या उसके आदेशानुसार किसी व्यक्ति या उस विलेख के वाहक को एक निश्चित धनराशि का भुगतान कर देगा। ' (धारा 4)

उपरोक्त परिभाषा में प्रतिज्ञा–पत्र के बारे में यह कहा गया है कि यह वाहक को देय हो सकता है, लेकिन भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 31 के अनुसार केन्द्रीय सरकार अथवा रिजर्व बैंक के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति वाहक को देय प्रतिज्ञा–पत्र नही लिख सकता है। परिणामस्वरूप प्रतिज्ञा–पत्र की भाषा में ऐसे शब्द महत्वहीन माने जाते है जो प्रतिज्ञा–पत्र को वाहक को देय बनाते है।

इसलिए धारा 4 में रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 31 के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि प्रतिज्ञा–पत्र एक ऐसा लिखित हस्ताक्षरयुक्त वचन है जिसमें इसका लेखक एक निश्चित व्यक्ति या उसके आदेशानुसार किसी व्यक्ति को एक धनराशि के भुगतान का वचन देता है।

यह ध्यान देने योग्य है कि बैंक नोट या करेंसी नोट प्रतिज्ञा–पत्र में सम्मिलित नही किये जाते है।

### प्रतिज्ञा–पत्र के पक्षकार

प्रतिज्ञा–पत्र या वचन–पत्र के मुख्य पक्षकार दो होते है जो निम्नलिखित है–

1. **लेखक** – लेखक वह व्यक्ति होता है जो प्रतिज्ञा– पत्र या वचन–पत्र लिखता है।
2. **आदाता** – आदाता वह व्यक्ति होता है जिसे वचन–पत्र के भुगतान का वचन दिया जाता है। इसे भुगतान पाने वाला भी कहते है।

उदाहरण – मैं प्रवीण कुमार को या उसके आदेशानुसार 50000 रू अदा करने का वचन देता हूँ ।

### प्रतिज्ञा पत्र का नमूना

**जयपुर**

**1,सितम्बर, 2009**

**माँग पर मैं श्री तनिष्क या उनके द्वारा आदेशित व्यक्ति को 2,00,000 रूपये देने का वचन देता हूँ, जिसका प्रतिफल प्राप्त हो चुका है।**

**श्री प्रवीण कुमार सोलंकी**
**बी–4, व्यास कॉलोनी,**
**बीकानेर,(राज.)**

**हस्ताक्षर**

**स्टाम्प**

## प्रतिज्ञा–पत्र की विशेषताऐं

प्रतिज्ञा पत्र की विशेषताओ को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता हैं ।

1 **लिखित विलेख**–वचन पत्र की प्राथमिक विलेख के रूप में होना है । इस विलेख के लिखित में होने का आशय इसका हस्तलिखित होना नही है । बल्कि यह टाइप किया हुआ या कम्प्यूटर से बनाया या मुद्रित भी कराया जा सकता है । लेकिन वचन पत्र जहां तक हो पेन्सिल से नही लिखा जाना चाहियें क्योंकि पेन्सिल से लिखे विलेख में परिवर्तन आसानी से किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2 **भुगतान का स्पष्ट वचन**–वचन_पत्र धनराशि के भुगतान का स्पष्ट वचन होना चाहिए । यदि किसी वचन पत्र में ऋण स्वीकार करने अथवा ग्रहण के भुगतान की घोषणा मात्र की जाती है तो इसे वचन पत्रनही कहा जाएगा ।

3 **प्रारूप नही**–वचन पत्र या प्रतिज्ञा पत्रकिसी निर्धारित प्रारूप में नही लिखा जाता है । यह किसी भी प्रारूप या किसी भी भाषा में क्यों न लिखा जाये इसमें निश्चित धनराशि के भुगतान का वचन होना चाहियें ।

4 **निश्चित धनराशि**–वचन पत्र या प्रतिज्ञा निशचित राशि के लिए लिखा जाना चाहिए । किसी घटना के कारण वचन पत्र की राशि में कमी या वृद्धि नहीं होनी चाहिए और न ही कोई अनिश्चितता होनी चाहिए। यदि वचन–पत्र अनिश्चित राशि के लिए है तों यह वैध नही माना जाएगा ।

5 **शर्त रहित वचन**–वचन–पत्र में शर्त रहित भुगतान का वचन होना चाहिए । यदि भुगतान का वचन किसी शर्त के साथं दिया जाता है तो ऐसा वचन–पत्र वैध नही माना जाएगा ।

**जैसे**–मैं प्रकाश को माल की सुपुर्दगी देने के बाद 20000 रू चुकाने या भुगतान करने का वचन देता हूँ ।

6 **मुद्रा में भुगतान का वचन**–वचन–पत्र वैध तभी माना जाएगा जब इसका भुगतान मुद्रा में किया जाये । मुद्रा से आशय चलन योंग्य मुद्रा से है। यह महत्वपूर्ण है कि वचन–पत्र भारतीय मुद्रा में लिखा जा सकता है लेकिन भुगतान विदेशी मुद्रा में करने या वचन दिया जा सकता है।

7 **हस्ताक्षरयुक्त**–वचन–पत्र की वैधता के लिए यह आवश्यक है कि यह लेखक के हस्ताक्षरयुक्त होना चाहिए । अन्य शब्दों में वचन–पत्र पर भुगतान का वचन देने वाले के हस्ताक्षर होने चाहिए । बिना हस्ताक्षर का प्रतिज्ञा–पत्र कोई दायित्व उत्पन्न नही करता है। हस्ताक्षर पेन पेन्सिल रबर की मोहर या अंगूठे के निशान द्वारा किये जा सकते है ।

8 **निश्चित पक्षकार**– वचन–पत्र के पक्षकार निशचित होने चाहिए । वचन–पत्र के दो पक्षकार होते है लेखक और अदाता। लेखक और अदाता अर्थात भुगतान प्राप्त करने वाला दोनो ही निशचित होने चाहिए ।

9 **उचित स्टाम्प**– वचन–पत्र पर भारतीय स्टाम्प अधिनियम के अनुसार उचित स्टाम्प लगे हुए होने चाहिए । यदि वचन–पत्र पर उचित राशि के स्टाम्प नही लगे हुए है तो इसे प्रवर्तित नही माना जाएगा ।

10 **भुगतान**– वचन–पत्र का भुगतान एक मुश्त या किश्तों में किया जा सकता है । इसके साथ ही वचन–पत्र दर्शन पर तत्काल या एक निर्धारित अवधि के बाद देय हो सकता है । अर्थात यह दर्शनी या मुदति हो सकता है ।

11 **सुपुर्दगी**– वचन–पत्र लिखने मात्र से ही पूरा नही हो जाता है वरन तभी पूर्ण माना जाता है जब इसे लिखकर इस पर हस्ताक्षर करके इसकी सुपुर्दगी अदाता को कर दी जाती है। सुपुर्दगी के बिना वचन–पत्र के लेखक का दायित्व उत्पन्न नही होता है । इसलिए इसकी सुपुर्दगी अनिवार्य है ।

12 **वाहक को मॉग पर देय नही**– रिजर्व बैंक या केन्द्रीय सरकार के अलावा कोई भी व्यक्ति वाहक को मांग पर देय वचन–पत्र नही लिख सकता है ।

13 **अन्य औपचारिकताऐं**– उपरोक्त के अतिरिक्त प्रतिज्ञा–पत्रमें प्रतिफल भुगतान के स्थान एवं लिखने की तिथी आदि का उल्लेख होना जरूरी है ।

**प्रश्नः–**

1. **प्रतिज्ञा–पत्र किसे कहते है?**
2. **प्रतिज्ञा–पत्र का नमुना दीजिए।**
3. **प्रतिज्ञा–पत्र की विशेषताऐं स्पष्ट कीजिए।**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

## विनिमय–पत्र / विनिमय बिल

धारा–5

विनिमय –पत्र या विनिमय बिल भी विनिमय साध्य विलेख के रूप में काफी प्रचलित है। **विनिमय साध्य विलेख अधिनियम 1881 की धारा 5 के अनुसार** " विनिमय –पत्र एक ऐसा लिखित एवं इसके लेखक द्वारा हस्ताक्षरित प्रलेख है जिसमें एक शर्तरहित आज्ञा होती है जिसके अनुसार लेखक एक निश्चित व्यक्ति को यह निर्देश देता है कि वह एक निशचित धनराशि किसी व्यक्ति को अथवा उसके द्वारा आदेशित व्यक्ति को अथवा लेख–पत्र के वाहक को भुगतान करें । "

रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम के अनुसार रिजर्व बैंक या सरकार को छोडकर कोई भी व्यक्ति ऐसा विनिमय पत्र नही लिख सकता है जो वाहक को मॉग पर देय हों ।

**विनिमय –पत्र के पक्षकार**

विनिमय पत्र के तीन पक्षकार होते है–

**लेखक–** इसे आहर्ती भी कहते है जो व्यक्ति विनिमय पत्र लिखता है वह लेखक कहलाता है

**देनदार अथवा स्वीकर्ता–** जिस पर विनिमय लिखा जाता है उसे देनदार कहते है। यह स्वीकर्ता भी हो सकता है।

**लेनदार अथवा आदाता अथवा प्राप्तकर्ता–** जिसे बिल की धनराशि का भुगतान करना होता है कभी–कभी लेखक और लेनदार एक ही व्यक्ति होता है **धारा–7**

**विनिमय –पत्र के आवश्यक तत्व अथवा विशेषताऐं**

एक वैध विनिमय–पत्र में निम्नलिखित विशेषताएं होती है–

1. **लिखित** –विनिमय–पत्र का लिखित में होना अनिवार्य है। यह मौखिक नही हो सकता है।

2. **पक्षकार** –विनिमय–पत्र के मुख्य पक्षकार तीन होते है। लेखक, लेनदार, और देनदार।

3. **शर्तरहित आदेश–**विनिमय–पत्र में धन के भुगतान का आदेश शर्तरहित होना चाहिए। यदि भुगतान के आदेश के साथ किसी शर्त का उल्लेख होता है तो उसे वैध विनिमय–पत्र नही माना जाएगा।

4. **भुगतान का आदेश–**विनिमय–पत्र में भुगतान की प्रार्थना नही भुगतान का आदेश होना चाहिए।

5. **निश्चित धनराशि–**विनिमय–पत्र निश्चित धनराशि के भुगतान के लिए होने चाहिए। अन्य शब्दों में विनिमय–पत्र में लिखी जाने वाली राशि निश्चित होनी चाहिए।

6. **निश्चित व्यक्ति–**विनिमय–पत्र लिखने वाला और उसे स्वीकार करने वाला निश्चित होना आवश्यक है।

7. **हस्ताक्षर–**विनिमय–पत्र पर लेखक के हस्ताक्षर होने आवश्यक है। हस्ताक्षर पेन, पेन्सिल, अंगुठे के रूप में या रबड़ मोहर के रूप में भी हो सकते है।

8. **भुगतान प्रचलित मुद्रा में–**विनिमय–पत्र का भुगतान देश की प्रचलित मुद्रा में होना आवश्यक है। यदि भुगतान किसी अन्य रूप में देने का आदेश है तो यह विनिमय–पत्र नही माना जाएगा।

9. **स्टाम्प–**विनिमय–पत्र पर भारतीय मुद्रांक अधिनियम के अनुसार आवश्यक स्टाम्प लगाए जाने चाहिए।

10. **तिथी स्थान तथा प्रतिफल–**विनिमय–पत्र पर क्रम संख्या तिथी स्थान तथा प्रतिफल सम्बन्धी औपचारिकताऐं व्यवहार में पाई जाती है लेकिन अधिनियम के अनुसार आवश्यक नही है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

## विनिमय–पत्रों के नमूने

सामान्य विनिमय–पत्र

50ए000रूपये

जयपुर

जुलाई 10, 2009

आज की तिथी से दो माह पश्चात् महेश या उसके आदेशानुसार 50,000 रूपये का भुगतान कीजिए जिसका मूल्य मैने प्राप्त कर लिया है।

सेवामें,

श्रीमान महेश कुमार

न्यू सांगानेर रोड़ ,जयपुर।

स्टाम्प

हस्ताक्षर

50,000 रूपये

जयपुर

जुलाई 10, 2009

आज की तिथी से दो माह पश्चात् महेश या उसके आदेशानुसार 50,000 रूपये का भुगतान कीजिए जिसका मूल्य मैंने प्राप्त कर लिया है।

सेवामें,

श्रीमान महेश कुमार

न्यू सांगानेर रोड़, जयपुर।

स्टाम्प

हस्ताक्षर

## विनिमय–पत्र एवं प्रतिज्ञा–पत्र में अन्तर

| अन्तर का आधार | विनिमय–पत्र | प्रतिज्ञा–पत्र |
|---|---|---|
| 1. परिभाषा की धारा | विनिमय–पत्र की परिभाषा इस अधिनियम की धारा 5 में दी गई है। | प्रतिज्ञा–पत्र की परिभाषा इस अधिनियम की धारा 4 में दी गई है। |
| 2. पक्षकार | विनिमय–पत्र मेंतीन पक्षकार होते है–लेखक,देनदार तथा लेनदार। | प्रतिज्ञा–पत्र में केवल दो पक्षकार होते है–लेखक और लेनदार। |
| 3. प्राप्तकर्ता | विनिमय–पत्र में लेखक और लेनदार दोनों एक ही हो सकते है। | प्रतिज्ञा–पत्र में लेखक और लेनदार दोनों एक ही नही हो सकते है। |

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

| | | |
|---|---|---|
| 4. स्वीकृति | विनिमय–पत्र में लेनदार द्वारा स्वीकृति देनी आवश्यक है। | प्रतिज्ञा–पत्र में स्वीकृति की आवश्यकता नही होती है। |
| 5. भुगतान की प्रकृति | विनिमय–पत्र में भुगतान का शर्तरहित आदेश होता है। | प्रतिज्ञा–पत्र में भुगतान का शर्तरहित वचन होता है। |
| 6. सम्बन्ध | इसमें लिखने वाले का सम्बन्ध देनदार (स्वीकृर्ता) से होता है। | इसमें लिखने वाले का सीधा सम्बन्ध लेनदार (आदाता) से होता है। |
| 7. दायित्व | विनिमय–पत्र में स्वीकृति के बाद लेखक का दायित्व द्वितीयक या गौण होता है। | प्रतिज्ञा–पत्र में लेखक का दायित्व प्राथमिक होता है। |
| 8. प्रतियॉ | विनिमय–पत्र प्रतियों में भी लिखे जा सकते है। | प्रतिज्ञा–पत्र प्रतियों में नही लिखे जा सकते है। |
| 9. अनादरण की सूचना | विनिमय–पत्र में धारक का यह कर्तव्य होता है कि वह अनादरण सम्बन्धी सूचना लेखक को दे। | प्रतिज्ञा–पत्र में अनादरण की सूचना देने की आवश्यकता नही होती है। |
| 10. वाहक को देय | विनिमय–पत्र वाहक को देय हो सकता है। | प्रतिज्ञा–पत्र वाहक को देय नही लिखा जा सकता है। |
| 11. प्रसाक्ष्य | विनिमय–पत्र अनादरित होने पर उसका प्रसाक्ष्य करवाना आवश्यक है। | प्रतिज्ञा–पत्र के अनादरित होने पर प्रसाक्ष्य करवाने की आवश्यकता नही है। |

## विनिमय–पत्रों के प्रकार

विनिमय–पत्र निम्न प्रकार के हो सकते है–

1. **देशी विनिमय–पत्र** –ऐसा विनिमय–पत्र जो देश की सीमाओं के भीतर लिखा जाता है और जिसका भुगतान भी देश की सीमाओं के भीतर होता है उसे देशी विनिमय–पत्र कहते है। अन्य शब्दों ऐसा विनिमय–पत्र जो देश में ही लिखा जाता है और जिसका भुगतान भी देश में ही होता है उसे देशी विनिमय–पत्र कहा जाता है। (धारा 11) जैसे – जोधपुर के व्यापारी द्वारा कोलकाता के व्यापारी पर विनिमय–पत्र लिखना।
2. **विदेशी विनिमय–पत्र** – विदेशी विनिमय–पत्र ऐसे विपत्र होते है जो देशी नही होते है। अन्य शब्दों में विदेशी विनिमय–पत्र वे होते है जो–
    1. भारत के बाहर लिखे गये हो और भारत में देय हो।
    2. भारत के बाहर लिखे गये हो और भारत के बाहर ही देय हो।
    3. भारत के निवासी व्यक्ति पर भारत के बाहर लिखा गया हो।
    4. भारत के बाहर ही लिखा गया विपत्र जो भारत के बाहर के व्यक्ति पर हो।
    5. किसी अनिवासी पर भारत में लिखा गया विपत्र जिसका भुगतान भारत के बाहर किया गया हो।
3. **प्रतियों वाले विनिमय–पत्र**– विदेशी विनिमय–पत्र सामान्यतः तीन प्रतियों में बनाए जाते है। इस प्रत्येक प्रति को वीया कहा जाता है। इन तीनों प्रतियों को एक विनिमय–पत्र माना जाता है। विनिमय–पत्र पहॅुचने में देर न हो इसलिए प्रत्येक प्रति को अलग–अलग तरीके से भेजा जाता है। जैसे ही एक प्रति स्वीकार कर ली जाती है शेष दो प्रतियां प्रभावहीन हो जाती है।

**प्रतियों वाले विनिमय–पत्र से सम्बन्धित नियम**

विनिमय साध्य विलेख अधिनियम धारा 132 और 133 में प्रतियों वाले विनिमय पत्र के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम दिये गये है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. विदेशी विनिमय–पत्र प्रतियों में लिखा जाता है, इन प्रतियों की संख्या तीन होती है जिन्हे सामूहिक रूप से सेट कहा जाता है। इस पूरे सेट को एक विनिमय–पत्र माना जाता है।

**2.** सभी प्रतियों पर संख्या लिखी होनी चाहिए और यह भी उल्लेख होना चाहिए कि अन्य प्रतियों के अदत रहने तक यह देय होगा।

**3.** विनिमय–पत्र का लेखक प्रत्येक प्रति पर अपने हस्ताक्षर करता है, लेकिन स्वीकृति केवल एक पर ही दी जाती है।

**4.** यदि एक व्यक्ति अलग–अलग प्रतियों को अलग–अलग व्यक्तियों के लिए स्वीकार या बेचान करता है तो वह प्रत्येक व्यक्ति के लिए ठीक उसी प्रकार से उत्तरदायी होगा मानो वे सभी प्रतियां अलग–अलग विपत्र हों।

**5.** एक व्यक्ति जिसने अपनी प्रति या भाग का स्वत्वाधिकार भिन्न–भिन्न प्रतियों या भागों के बीच सबसे पहले प्राप्त किया था, दूसरी प्रतियों तथा विनिमय–पत्र को प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है।

**6.** यदि एक प्रति या भाग का भुगतान कर दिया जाता है तो सम्पूर्ण विनिमय–पत्र का भुगतान मान लिया जाता है और अन्य प्रति नष्ट हो जाती है।

4. **व्यापारिक विनिमय–पत्र** –व्यापारिक विनिमय–पत्र हम उसे कहते है जो शुद्ध रूप से व्यापारिक व्यवहारों के लिए लिखा जाता है एवं स्वीकार किया जाता है। व्यापारिक वर्ग सामान्यतः अपने व्यापार सम्बन्धी क्रिया–कलापों व व्यवहारों का निष्पादन अर्थात् भुगतान या लेन–देन सम्बन्धी सभी व्यवहारों का निपटारा करने के लिए व्यापारिक विनिमय–पत्रों का ही उपयोग करते है।

**5. अनुग्रह विनिमय–पत्र** –ऐसा विनिमय–पत्र जो बिना किसी प्रतिफल के किसी दूसरे व्यक्ति को सहायता करने के उद्धेश्य से लिखा, स्वीकार या बेचान किया जाता है उसे अनुग्रह या सहायतार्थ विनिमय–पत्र कहा जाता है। ऐसा व्यक्ति जो दूसरे व्यक्ति की सहायता करने के उद्धेश्य से अपना नाम देता है उसे अनुग्रहकर्ता पक्ष तथा ऐसा व्यक्ति जो इस प्रकार की सहायता प्राप्त करता है, अनुग्रहीत पक्ष कहा जाता है।

**अनुग्रह विनिमय–पत्र से सम्बन्धित नियम**

- अनुग्रहकर्ता पक्ष विनिमय–पत्र पर अनुग्रहीत पक्ष के प्रति उतरदायी नही होता है क्योंकि इन दोनों के बीच प्रतिफल का अभाव रहता है।
- अनुग्रहीत पक्ष ने यदि विपत्र की राशि को चुका दिया है तो वह उस व्यक्ति से जो ऐसे विनिमय–पत्र का अनुग्रह के लिए पक्षकार हो गया है ऐसी राशि को वापस प्राप्त नही कर सकता। (धारा 43 प्रथम अपवाद)
- एक प्रतिफल जनित–धारी अनुग्रहकर्ता पक्ष पर वाद प्रस्तुत कर सकता है। चाहे विनिमय–पत्र प्राप्त करते समय उसे इस बात की जानकारी हो कि यह अनुग्रह विपत्र है तथा अनुग्रहकर्ता पक्ष भी अनुग्रहीत पक्ष से उस धनराशि की क्षतिपूर्ति करा सकता है, जो उसे प्रतिफल जनित–धारी को देना पड़े। (धारा 59)
- अनुग्रह विपत्र के स्वीकृता के पास भुगतान के लिए प्रस्तुत करने पर लेखक का दायित्व समाप्त नही होता है। (धारा 76 )
- अनुग्रह विपत्र के अनादरित होने पर यदि अनादरण की सूचना नही दी जाती है तो पूर्व पक्षकारों का दायित्व समाप्त नही होता। (धारा 98)

6. **संदिग्ध विनिमय–पत्र** –जब कोई विनिमय–पत्र इस प्रकार से लिखा गया है कि उसे विनिमय–पत्र या प्रतिज्ञा–पत्र दोनों ही समझा जा सकता है, तो ऐसी दशा में यह धारक की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह उस विलेख को प्रतिज्ञा –पत्र माने या विनिमय–विपत्र। इसी प्रकार यदि प्रतिज्ञा –पत्र के रूप में एक विलेख लिखा जाता है और उसकी अतिरिक्त उसे एक तीसरे व्यक्ति के नाम से भी सम्बन्धित कर दिया जाता है, जो इसे स्वीकार कर लेता है तो ऐसी दशा में यह पूर्ण रूप से तीसरे पक्षकार पर निर्भर करता है कि वह उसे प्रतिज्ञा–पत्र मानता है या विनिमय–पत्र।

7. **अपूर्ण विलेख**–जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को विधि के अनुसार स्टाम्प लगाकर और हस्ताक्षर करके विलेख सुपुर्द करता है लेकिन वह या तो इसे खाली छोड़ देता है या उस पर अपूर्ण विनिमय साध्य विलेख के रूप में कुछ लिखकर दे देता है, तो ऐसी स्थिति में उस विलेख के धारक को मूल रूप से यह अधिकार होता है कि वह स्टाम्प लगे हुवे विलेख पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति द्वारा निर्धारित किसी राशि के लिए एक विनिमय–पत्र लिख ले, लेकिन विलेख में लिखी जाने वाली राशि स्टाम्प द्वारा निर्धारित राशि से अधिक नही होनी चाहिए। इस तरह के विलेख अपूर्ण विलेख कहे जाते है। (धारा 20)

Jai Vishwa Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. **बनावटी विनिमय–पत्र**–जब विनिमय–पत्र पर लेखक अथवा आदाता अथवा दोनों का नाम बनावटी हो, तो इसे बनावटी विनिमय–पत्र कहते है। ऐसे विपत्र में स्वीकर्ता यथाविधिधारी के प्रति उतरदायी हो जाता है यदि यथाविधिधारी यह सिद्ध कर दे कि लेखक तथा प्रथम बेचानकर्ता (आदाता) का हस्ताक्षर एक ही है। (धारा 42 )

9. **प्रमाण विषयक तथा बिना प्रमाण विषयक विनिमय–पत्र**–जब किसी विनिमय–पत्र के साथ माल के स्वामित्व सम्बन्धी प्रमाण जैसे–समुद्री बीमा पॉलिसी, बीजक आदि संलग्न कर दिये जाते है तो ऐसे विपत्र प्रमाण विषयक विपत्र कहलाते है।

इसके विपरीत जब विनिमय–पत्र के साथ माल के स्वामित्व सम्बन्धी प्रमाण संलग्न नही किये जाते है, तो उसे बिना प्रमाण विषयक विनिमय–पत्र कहा जाता है ।

10. **धारक विलेख**–जब किसी विलेख का भुगतान उस व्यक्ति को किया जाता है जिसके पास वह विलेख है तो उसे धारक विलेख कहा जाता है। यह जरूरी नही है कि धारक विलेख में धारक का नाम लिखा हुआ हो लेकिन ऐसे विलेख का भुगतान प्राप्त करने के लिए उस विलेख पर उसका कब्जा होना चाहिए।

11. **मांग पर देय विलेख**–यदि विलेख में भुगतान के समय का उल्लेख नही किया जाता है, तो उसका भुगतान मांग पर देय होगा। ऐसे विलेख को किसी भी समय भुगतान हेतु प्रस्तुत किया जा सकता है । चैक का भुगतान मांग पर ही किया जाता है। विनिमय–पत्र और प्रतिज्ञा–पत्र में लिखे गये प्रस्तुत करने पर शब्दों का आश्य मांग पर भुगतान ही है। (धारा 19)

12. **आदेश विलेख**–ऐसे विनिमय साध्य विलेख जिनका भुगतान या तो लेखक द्वारा आदेशित व्यक्ति को या विलेख के मूल प्राप्तकर्ता द्वारा आदेशित व्यक्ति को किया जाए, उन्हे आदेश विलेख कहते है।

13. **सामयिक विनिमय–पत्र**–ऐसा विनिमय–पत्र जो निश्चित समय बाद देय हो, उसे सामयिक विनिमय–पत्र कहा जाता है।

14. **बिना तिथि के विलेख**–कोई भी विनिमय साध्य विलेख जो अन्य सभी औपचारिकताओं की पूर्ति करता हो तो इसका भुगतान प्राप्त करने की तिथि को मौखिक रूप से या अन्य प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। यदि किसी विनिमय साध्य विलेख पर तिथि अंकित नही की गई है तो इस आधार पर उसे अवैधानिक नही माना जा सकता।

15. **प्रस्तुत करने पर विलेख का भुगतान**–प्रस्तुति पर या दर्शन पर बनाए गए प्रतिज्ञा–पत्र अथवा विनिमय–पत्र मांगपर देय होते है। दर्शनोंपरान्त का आशय प्रतिज्ञा–पत्र में दर्शन के लिए प्रस्तुति के बाद एवं विनिमय–पत्र में स्वीकृति के बाद होता है। दर्शन पर देय प्रतिज्ञा–पत्र की दशा में परिसीमा की अवधि विलेख की प्रस्तुति की तिथि से तीन वर्ष गिनी जाती है जबकि मांग पर देय विलेखों की स्थिति में यह अवधि विलेख की तिथि से तीन वर्ष गिनी जाती है।

16. **मांग प्रपत्र या बैंक ड्राफ्ट**–यह एक प्रकार का विनिमय–पत्र है जो एक बैंक द्वारा किसी दूसरे बैंक पर लिखा जाता है। इसमें एक बैंक अपनी दूसरी शाखा को इसमें लिखित एक निश्चित व्यक्ति को जिसका नाम इसमें लिखा रहता है अथवा उसके द्वारा आदेशित व्यक्ति को भुगतान करने का निर्देश देता है।

**प्रश्नः–**

1. **विनिमय–पत्र को परिभाषित कीजिए।**
2. **विनिमय–पत्र के पक्षकार कितने होते है?**
3. **अनुग्रह विलेख क्या है?**
4. **अपूर्ण विलेख से क्या तात्पर्य है?**

## हुण्डी

हुण्डी विनिमय–पत्र के समान ही मानी जाती है। यह भारत में विभिन्न भाषाओं और प्राचीन शैली में लिखी जाती है। इसका नियमन और नियन्त्रण क्षेत्रिय रीति–रिवाजों के आधार पर होता है। हुण्डी पर भी मुद्रांक लगाया जाता है, स्वीकृति प्रदान की जाती है और इसका पृष्ठांकन भी किया जाता है।

**हुण्डी के उद्धेश्य** –

- व्यापारिक क्रियाओं को बेहतर ढंग से संचालित करने के लिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- भुगतान करने के लिए प्रयोग करने हेतु।
- ऋण देने के उद्धेश्य से।
- धनराशि का स्थानान्तरण करने के लिए।

**हुण्डी के प्रकार** –हुण्डी के प्रकारों को निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **दर्शनी हुण्डी** – ऐसी हुण्डी जो प्रस्तुत करते ही देय होती है उसे दर्शनी हुण्डी कहते है। यह मांग–पत्र के समान ही होती है।
2. **मियादी हुण्डी**–ऐसी हुण्डी जो एक निश्चित समय या निर्धारित अवधि के बाद देय होती है उसे मियादी हुण्डी कहते है। उपरोक्त

दोनों प्रकार की हुण्डियाँ निम्न प्रकार की हो सकती है–

a. नामजोग हुण्डी – ऐसी हुण्डी जिस पर जिस व्यक्ति का नाम लिखा गया है उसका भुगतान उसी व्यक्ति को या उसके आदेशानुसार किया जाता है तो उसे नामजोग हुण्डी कहते है।

b. शाहजोग हुण्डी – यह हुण्डी ऐसी होती है जिसका भुगतान उसी व्यक्ति अर्थात् शाह को किया जाता है जिसकी साख, प्रतिष्ठा उच्च स्तर की है। शाह के अन्तर्गत व्यक्ति, फर्म या कम्पनी आदि हो सकते है।

c. देखनहार हुण्डी – इसे धनोजोग हुण्डी भी कहते है। इसका भुगतान प्रस्तुत करने या दिखाने पर किया जाता है इसलिए इसे देखनहार हुण्डी कहते है।

d. फर्मानजोग हुण्डी – ऐसी हुण्डी जिसका भुगतान केवल आदेशित व्यक्ति को ही किया जाता है फर्मानजोग हुण्डी कहलाती है।

e. जवाबी हुण्डी – इस हुण्डी का प्रयोग बैंक के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर धनराशि भेजने के लिए किया जाता है इसमें धनराशि को प्राप्त करने वाला व्यक्ति, धन भेजने वाले को धन प्राप्त करने का जवाब देता है इसलिए इसे जवाबी हुण्डी कहते है।

f. जोखिम हुण्डी – इसका तात्पर्य ऐसी हुण्डी से है जिसके द्वारा माल का विक्रेता, क्रेता को यह आदेश देता है कि वह हुण्डी के धारक को माल का मूल्य चुका दे। माल को प्राप्त करने से पूर्व क्रेता ऐसी हुण्डी पर अपनी स्वीकृति देता है कि माल प्राप्त होने पर भुगतान कर दिया जाएगा। माल के सुरक्षित पहुंचनें पर ही क्रेता भुगतान के लिए उतरदायी है। यदि क्रेता के पास माल नही पहुंचे तो वह भुगतान के लिए उतरदायी नही होगा।

**हुण्डी के सम्बन्ध में प्रचलित शब्द**

1. **खोखा** – खोखा का आशय, जब हुण्डी का भुगतान कर दिया जाता है या उसे निरस्त कर दिया जाता है तो उसे खोखा कहते है।
2. **जिकरी चिट** – जब हुण्डी अनादरित हो जाती है या अनादरित होने की आशंका होती है तो इस दशा में इसका लेखक अथवा अन्य पक्षकार हुण्डी के धारक को एक सुरक्षा पत्र देता है यह सुरक्षा पत्र किसी ख्यातिप्राप्त, धनी, प्रतिष्ठित व्यक्ति के नाम लिखा जाता है जिसमें आदेश होता है कि वह हुण्डी के अनादरित होने पर उसका भुगतान कर दे। इसी सुरक्षा पत्र को जिकरी चिट कहते है।
3. **पुर्जा** – यह एक ऐसा पत्र है जिसे ऋण प्राप्त करने वाला व्यक्ति ऋण प्राप्त करने के लिए महाजन को लिखता है ।
4. **पैठ तथा परपैठ** – जब कोई हुण्डी खो जाती है तो इसकी जो प्रतिलिपि दी जाती है उसे पैठ कहते है। यदि पैठ भी खो जाती है और जो दूसरी प्रतिलिपि दी जाती है उसे परपैठ कहते है।

**विनिमय–पत्र की स्वीकृति सम्बन्धी प्रावधान**

1. **स्वीकर्ता द्वारा ही स्वीकृति** – विनिमय–पत्र की स्वीकृति केवल स्वीकर्ता द्वारा ही दी जा सकती है। यदि स्वीकर्ता एक से अधिक है तो उन सभी के द्वारा स्वीकृति दी जा सकती है
2. **स्वीकृति का अधिकार** – जब विनिमय विपत्र के स्वीकर्ता एक से अधिक होते है जो साझेदार नही होते तो उनमें से प्रत्येक स्वीकर्ता अपने अंश के लिए ही स्वीकृति प्रदान करता है। एक साझेदार अपनी फर्म का एजेन्ट होता है इसलिए वह एजेन्ट के रूप में फर्म के स्थान पर स्वीकृति प्रदान कर सकता है।

**प्रश्नः–**

1. **हुण्डी किसे कहते हैं?**
2. **हुण्डी कितने प्रकार की होती हैं?**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**3. पैठ तथा पर पैठ क्या है?**

**चैक**

" चैक किसी विनिर्दिष्ट बैंकर (बैंक) पर लिखा गया विनिमय–पत्र है और मांग पर देय अन्यथा नही है और इसमें खण्डित चैक का इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप भी शामिल है।''

**2002 में संशोधित अधिनियम की धारा 6 के अनुसार**

उपरोक्त धारा से स्पष्ट होता है कि चैक से तात्पर्य, चैक किसी बैंक पर लिखा गया हस्ताक्षरयुक्त विनिमय–पत्र है जिसमें उसका लेखक बैंक को यह आदेश देता है कि उसमें उल्लेखित व्यक्ति या उसके वाहक को उसमें उल्लेखित राशि का भुगतान मांगने पर कर दे। इसमें खण्डित चैक की इलेक्ट्रिक छवि तथा इलेक्ट्रिक प्रारूप का चैक भी शामिल है।

खण्डित चैक से तात्पर्य ऐसे चैक से है जो प्रेषण के लिए इलेक्ट्रॉनिक प्रतिकृति प्राप्त होते ही तुरन्त लिखित चैक के अतिरिक्त भौतिक संचालन को प्रतिस्थापित करते हुए समाशोधन चक्र के दौरान समाशोधन गृह द्वारा अथवा बैंक द्वारा भुगतान करते हुए खण्डित किया गया हो।

इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में चैक से आशय ऐसे चैक से है जिसमें कागजी चैक की छवि या यथावत प्रतिकृति शामिल हो, लिखित व हस्ताक्षरित हो तथा विषम, गुप्त या अदृश्य प्रणाली के प्रयोग के न्यूनतम सुरक्षा माप दण्डों को सुरक्षित कर लिया गया है।

**चैक की विशेषताए या लक्षण**

चैक की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है–

1. चैक लिखित होना चाहिए
2. चैक कागज पर लिखा हुआ एवं इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में भी हो सकता है।
3. चैक पर लेखक के हस्ताक्षर होने चाहिए।
4. चैक पर हस्ताक्षर स्याही से अथवा आंकिक (डिजीटल) हो सकते है।
5. चैक एक शर्तरहित आदेश होता है।
6. चैक के द्वारा बैंक को एक निश्चित धनराशि के भुगतान का आदेश दिया जाता है।
7. चैक मांग पर देय होता है।
8. चैक की स्वीकृति की आवश्यकता नही होती है।
9. चैक पर मुद्रांक नही लगाया जाता है।
10. चैक के तीन पक्षकार होते है। लेखक, आदेशिति (बैंक) तथा आदाता।
11. चैक वाहक, आदेशित अथवा रेखांकित हो सकते है।
12. चैक किसी बैंक पर ही लिखा जाता है। चैक पर तिथि अंकित होनी आवश्यक है।

***चैक का नमूना***

Pay.....
..... **या धारक का**
OR BEARER रूपये Rupees.....
Rs. ..... **अदा करें।**

**खाता सं.....ब.प.....**

| **A/c No.** | | **L.F.** | | **INTLS** | |
|---|---|---|---|---|---|

**बैंक ऑफ बड़ौदा, बीकानेर (राजस्थान) 302001**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

## चैक तथा विनिमय पत्र में अन्तर

| अन्तर का आधार | चैक | विनिमय–पत्र |
|---|---|---|
| 1. लिखना | चैक हमेशा किसी बैंक पर लिखा जाता है। | विनिमय–पत्र हमेशा किसी व्यक्ति पर लिखा जाता है। |
| 2. स्वीकृति | चैक की स्वीकृति आवश्यक नही है। | विनिमय–पत्र की स्वीकृति आवश्यक है। |
| 3. अवधि | चैक का भुगतान मांग पर देय होता है। | विनिमय–पत्र का भुगतान मांग या निश्चित अवधि के बाद देय होता है। |
| 4. प्रस्तुति | धारक द्वारा चैक को भुगतान के लिए प्रस्तुत न करने के लिए लेखक अपने दायित्व से मुक्त नही हो जाता है। | धारक द्वारा विपत्र भुगतान के लिए यथाविधि प्रस्तुत नही किया जाता है तो लेखक अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है। |
| 5. अनुग्रह दिवस | चैक के भुगतान में अनुग्रह दिवस नही दिये जाते है। | विनिमय–विपत्र के भुगतान में तीन दिन अनुग्रह के दिये जाते है। |
| 6. रेखांकन | चैक का रेखांकन किया जा सकता है। | विपत्र का रेखांकन नही किया जा सकता है। |
| 7. अनादरण की सूचना | चैक के अनादरण की सूचना आवश्यक नही होती है। | विपत्र के अनादरण की सूचना देनी आवश्यक होती है। |
| 8. रेखाकंन | चैक पर रेखांकन किया जा सकता है। | विपत्र का रेखांकन नही किया जा सकता है। |
| 9. स्टाम्प/मुद्रांक | चैक पर स्टाम्प नहीं लगते हैं। | मियादी विनिमय–पत्र पर स्टाम्प लगाया जाना आवश्यक होता है। |
| 10. आज्ञा का खण्डन | चैक के भुगतान को लिखने वालो द्वारा प्रत्यादेशित किया जा सकता है अर्थात भुगतान प्रतिकूल आदेश देकर रूकवाया जा सकता है। | विपत्र का भुगतान लेखक द्वारा प्रतिकूल आदेश देकर रोका नहीं जा सकता है। |
| 11. भुगतान | चैक का भुगतान सदैव देशो की प्रचलित मुद्रा में ही किया जा सकता है। | जबकि इसका भुगतान विदेशी मुद्रा में भी किया जा सकता है। |
| 12. नोटिंग | चैक के अनादरण एवं प्रमाणन की कोई आवश्यकता नहीं होती है। | जबकि विपत्र का अनादरण हो जाने की दशा में नोटिंग प्रोटोस्टिंग अर्थात आलोकन एवं प्रमाणन की आवश्यकता हैं। |

## चैकों का प्रमाणन

चैक किसी विशिष्ट बैंक पर लिखा गया तथा माँग पर देय विनिमय–पत्र है। विदेशो में कुछ बैक चैक को अदायगी योग्य घोषित करने के लिए प्रमाण चिन्ह लगाते हैं। प्रमाण–चिन्ह लगाने का अर्थ यह नही है कि बैंक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

द्वारा चैक की स्वीकृति दे दी गई हैं। सामान्य रूप से हम यह कह सकते हैं कि प्रमाण–चिन्ह द्वारा बैंक यह प्रमाणित करता है कि चैक अदायगी योग्य है। ऐसा कर देने से चैक की साख तथा विनिमय साध्यता में वृद्धि हो जाती है तथा चैक की वैधानिक भी प्रमाणित हो जाती है। चैक पर प्रमाण–चिन्ह निम्न परिस्थतियों में लगाया जाता है। **(धारा 6)**

**लेखक की प्रार्थना पर–**चैक के लेखक द्वारा प्रार्थना करने पर बैंक चैक को चिनहित कर सकता है। चैक को चिन्हित करने से पहले बैंक इस बात की जाँच आवश्यक रूप से करता है कि लेखक के खाते में पर्याप्त धनराशि जमा है या नही । यदि बैंक यह जानकारी प्राप्त कर लेता है कि लेखक के खाते में पर्याप्त धनराशि जमा है तो वह उतना धन, बैंक का भुगतान करने के लिए अलग रख लेता है जितने धन के लिए चैंक को चिन्हित किया गया है।

**धारक की प्रार्थना पर–**धारक की प्रार्थना पर भी बैंक चैक को निश्चित कर सकता है। धारक ऐसी प्रार्थना इस उदेश्य से करता है कि वह यह जानकारी प्राप्त कर सके कि लेखक के खाते में उस चैक के भुगतान के लिए पर्याप्त धनराशि बैंक में जमा है या नहीं। यदि बैंक चैक को चिन्हित कर देता है तो इसका सीधा अर्थ यह है कि लेखक के खाते में उस चैक के भुगतान करने के लिए पर्याप्त धनराशि बैंक में जमा है। लेकिन यदि बाद में ग्राहक द्वारा जमा की गई धनराशि को निकाल लिया जाता है तो चिन्हित चैक के भुगतान के सम्बन्ध में बैंक का कोई उतरदायित्व नहीं होगा।

**संग्रहकर्ता बैंक की प्रार्थना पर–**जब बैंक में लिखित धनराशि को वसूल करने के लिए चैक को देनदार बैंक के पास चिन्हित करने के लिए भेज देता है। ऐसी दशा में यदि चैक के लेखक के खाते में पर्याप्त धनराशि जमा है तो देनदार बैंक चैक पर ''शुद्ध'' शब्द लिखकर एवं चैक को चिन्हित करके हस्ताक्षर कर देता है। दूसरे दिन लेनदार बैंक चैक का भुगतान, संग्रहकर्ता बैंक को कर देता है।

**प्रश्नः–**

**चैक से क्या आशय है?**
**चैक का नमूना दीजिए।**
**चैकों का प्रमाणन किसे कहते है?**
**चैक व विनिमय पत्र में अन्तर बताओं।**

## विनिमय साध्य विलेख की परिपक्वता

**परिभाषा–** किसी प्रतिज्ञा–पत्र अथवा विनिमय पत्र की परिपक्वता से तात्पर्य उस तिथि से है, जिस पर वह देय होता है।

कोई भी प्रतिभा–पत्र या विनिमय–पत्र या तो माँग पर देय होता है अथवा एक निशचित तिथि पर अथवा एक निश्चित अवधि के पश्चात। माँग पर देय विलेख का भुगतान तिथि उस निश्चित तिथि को करना आवश्यक होता है और ऐसे विलेख में परिपक्वता का प्रश्न ही नही उठता है। लेकिन ऐसा विलेख जो एक निश्चित तिथि के पश्चात अथवा किसी निश्चित घटना के पश्चात देय होता है तो उसके सम्बन्ध में परिपक्वता का नियम लागू होता है। चैक के सम्बन्ध में परिपक्वता का नियम लागू नहीं होता है क्योकि चैक सदैव माँग पर ही लिखा जाता है।

### परिपक्वता से सम्बन्धित नियम

**अनुग्रह दिवस–** जब विनिमय–पत्र अथवा प्रतिज्ञा–पत्र दर्शन या प्रस्तुति या माँग पर देय हो तो उनकी परिपक्वता की तिथि की गणना करने के लिए उसकी भुगतान की तिथि में तीन दिन और जोड़ दिए जाते है। इन तीन दिनों को ही हम अनुग्रह दिन के रूप में जानते हैं। प्रत्येक प्रतिज्ञा–पत्र को लेखक तथा विनिमय–पत्र का स्वीकर्ता इनका अधिकारी होता है। **(धारा 22)**

जब विलेख किश्तो में देय हो तो ऐसी दशा में प्रत्येक किश्त की देय तिथि में तीन दिन अनुग्रह के जोड़ने के पश्चात परिपक्वता तिथि आएगी। इसके विपरित यदि किश्त माँग पर देय है तो भुगतान की तिथि में अनुग्रह दिवस नहीं जोड़े जायेंगे।

**तिथि के बाद या स्वीकृति के पश्चात–**ऐसे विलेख की परिपक्वता तिथि की गणना करने के लिए जो उसकी तिथि से कुछ माह बाद अथवा उसकी स्वीकृति के पश्चात कुछ माह बाद देय होता है, उसकी अवधि माह के उस दिन समाप्त हुई मानी जाएगी जो उस दिन से मिलता है जिस दिन विलेख को प्रस्तुत किया गया था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(धारा 23)

**उदाहरण–** 30 जनवरी, 2009 को लिखा गया एक विनिमय साध्य विलेख तिथि से एक माह पश्चात देय है तो ऐसे विलेख का भुगतान फरवरी की अन्तिम तिथि 28 फरवरी में तीन अनुग्रह दिवस के जोड़ने के पश्चात अर्थात 3 मार्च, 2009 को देय होगा क्योंकि फरवरी में 28 दिन ही होते हैं।

**तिथि की गणना**–परिपक्वता की तिथि की गणना अग्रेंजी कलैण्डर के अनुसार की जाती है, देशी महीनों अथवा तिथियों के आधार पर नहीं की जाती हैं।

**प्रतिष्ठा के लिए विनिमय–पत्र**–यदि कोई विनिमय–पत्र प्रतिष्ठा के लिए स्वीकार किया गया है तो उसकी अवधि की गणना न के उस दिन से जिस दिन अस्वीकृति के लिए उसका नोटिंग कराया गया है।

**विशेष दशा में गणना**–किसी ऐसे विलेख की परिपक्वता की तिथि की गणना जो उसकी तिथि के पश्चात अथवा उसकी स्वीकृति के उपरान्त अथवा किसी घटना के पश्चात कुछ दिवस के व्यतीत हो जाते पर देय है, उस तिथि को छोड़कर की जाएगी जिस दिन विलेख लिखा अथवा स्वीकार किया गया है।

**परिपक्वता की तिथि पर सार्वजनिक अवकाश**–यदि विलेख के परिपक्वता के दिन सार्वजनिक अवकाश हो तो उसके एक दिन पूर्व कार्य दिवस को देय होगा। इस प्रकार यदि कोई विलेख रविवार के दिन देय है तो वह शनिवार के दिन देय होगा न कि सोमवार के दिन।

**सार्वजनिक अवकाश**–भारतीय विनिमय साध्य विलेख अधिनियम के अनुसार, सार्वजनिक अवकाश के अन्तर्गत प्रत्येक रविवार एवं ऐसा कोई भी दिन जिसे केन्द्रीय सरकार द्वारा सरकारी राजपत्र में अधिसूचना के द्वारा सार्वजनिक अवकाश घोषित किया गया है।

**प्रश्नः–**

**1. परिपक्वता तिथि की गणना से सम्बनधित नियम क्या है?**

**2. अनुग्रह दिवस क्या है?**

**3. विनिमय साध्य विलेख की परिपक्वता से आप क्या समझते है?**

**यथाविधि भुगतान**

**परिभाषा**–उचित रीति या यथाविधि भुगतान से आशय उस भुगतान से है जो लेखपत्र की स्पष्ट अवधि के अनुसार सदभावना तथा बिना लापरवाही किए लेखपत्र पर अधिकार रखने वाले किसी भी व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियों में किया जए जिससे यह सन्देह न हो कि वह व्यक्ति भुगतान प्राप्त करने का अधिकारी नहीं हैं। **धारा–10**

**आवश्यक तत्व–**

**1. स्पष्ट अवधि के अनुसार भुगतान**–भुगतान के लिए यह एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक तत्व है कि वह देय तिथि के अनुसार हो। यदि भुगतान देय तिथि से पहले कर दिया गया है तो यह उचित रीति से भुगतान नही माना जाएगा। इस प्रकार उतरदायी पक्षकार अपने दायित्व से युक्त नहीं होगा।

**2. भुगतान सदभावना से**–विनिमय साध्य विलेख अधिनियम एवं व्यापारिक रीति–रिवाजों एवं परम्पराओं के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि ऐसे विलेखों के सन्दर्भ में पूर्ण सदभावना एवं विश्वास का विघमान होना अतिआवश्यक है। अतः भुगतान इस विश्वास एवं सदभावना के साथ किया जाना चाहिए कि भुगतान माँगने वाला ही वास्तव में उसे प्राप्त करने का अधिकारी है।

**3. भुगतान लापरवाही से नही**–अधिनियमों में यह स्पष्ट प्रावधान किया गया है कि भुगतान में किसी भी प्रकार की लापरवाही नहीं होनी चाहिए। यदि भुगतान में किसी भी प्रकार की लापरवाही है तो वह उचित रीति से भुगतान नही माना जाएगा।

**4. भुगतान धारक को**–विपत्र का भुगतान उसी व्यक्ति को किया जाना चाहिए जिसके अधिकार में हैं लेकिन यदि विपत्र आदेश पर देय है तथा वह उस व्यक्ति द्वारा पृष्ठांकित नहीं किया गया है तो अधिकार या कब्जा रखने वाले व्यक्ति को किया गया भुगतान यथाविधि भुगतान या उचित रीति से किया गया भुगतान नही माना जाएगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**5. अधिकृत व्यक्ति द्वारा भुगतान**–भुगतान उसी दशा में यथाविधि भुगतान माना जाएगा कि जब भुगतान उसी व्यक्ति द्वारा किया जाए जो टस भुगतान करने के लिए अधिकृत है या उतरदायी है अथवा उसकी ओर से अन्य अधिकृत व्यक्ति द्वारा भुगतान किया जाए, उसे यथाविधि भुगतान माना जाएगा। यदि किसी अजनबी व्यक्ति द्वारा विपत्र का भुगतान किया जाता है तो ऐसे भुगतान को यथाविधि भुगतान नहीं माना जाएगा।

**6. मुद्रा में भुगतान**–सामान्य रूप से या वैधानिक नियमों के अन्तर्गत यह स्पष्ट प्रावधान है कि यथाविधि भुगतान के लिए यह आवश्यक है कि भुगतान नगद में अर्थात केवल प्रचलित मुद्रा में ही किया जाना चाहिए। यदि कोई अन्य प्रकार का समझौता हुआ है तो उसके अनुसार भी भुगतान किया जा सकता है। इस प्रकार कोई भी पक्षकार विलेख के भुगतान में किसी अन्य प्रकार का विलेख स्वीकार नहीं करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है।

**7. सन्देह का अभाव**–विलेख का भुगतान ऐसी परिस्थितियों में किया जाना आवश्यक है जिनमें सन्देह करने का कोई यथोचित आधार न रहे कि वह विलेख का भुगतान करने का अधिकारी नहीं है। यदि सन्देहात्मक परिस्थिति विधमान है और भुगतान करने वाला इस प्रकार की पूछताछ न करके भुगतान कर देता है तो वह यथाविधि भुगतान नहीं होगा।

**8. स्पष्ट निर्देशानुसार भुगतान**–विलेख पत्र में निर्दिष्ट धनराशि के अनुसार ही भुगतान किया जाना आवश्यक होता है। इस प्रकार विलेख में निर्दिष्ट धनराशि से कम या अधिक भुगतान किया जाता है अथवा किसी अन्य रूप में किया जाता है तो वह यथाविधि भुगतान नहीं माना जाएगा।

## विनिमय साध्य विलेख के पक्षकार (Parties to Negotiable Instrument)

### विनिमय–पत्र के पक्षकार

**1. आहर्ता या लेखक**–वह व्यक्ति जो विनिमय पत्र का लेखक अर्थात लिखने वाला तथा इस पर हस्ताक्षर करता है। **(धारा 7)**

**ऋणी या आहार्यी**–जिस व्यक्ति पर विलेख लिखा गया है तथा लेखक जिस व्यक्ति को धनराशि भुगतान करने का वचन देता है, उस व्यक्ति को देनदार, आहार्यी, ऋणी अथवा भुगतान करने वाला कहते है। **(धारा 7)**

**स्वीकर्ता**–वह व्यक्ति जो विनिमय पत्र को स्वीकार करता है अर्थात देय तिथि पर विपत्र के भुगतान की जिम्मेदारी लेता है, उसे स्वीकर्ता कहते है सामान्यतः ऋणी या देनदार ही स्वीकर्ता होता है, लेकिन दूसरा व्यक्ति भी ऋणी की ओर से स्वीकृति दे सकता है अर्थात अपने आप को ऋण का भुगतान करने के दायित्व को उठाने के लिए स्वयं को प्रस्तुत कर सकता है। **(धारा 7)**

**प्राप्तकर्ता या आहार्ता**–जिस व्यक्ति का नाम विलेख में लिखा हुआ है तथा जिसको/जिसके आदेशानुसार भुगतान किया जाना है उसे प्राप्तकर्ता या आदाता कहते हैं, ऐसे ही व्यक्ति को विलेख का वास्तविक लाभ प्राप्त होता है। प्राप्तकर्ता जब अपने हस्ताक्षर करके विलेख का भुगतान किसी अन्य व्यक्ति को करने का आदेश देता है तो वह अन्य व्यक्ति आदाता या प्राप्तकर्ता हो जाता है। **(धारा 7)**

**पृष्ठांकनकर्ता**–विलेख को किसी अन्य व्यक्ति के नाम पृष्ठांकित करने वाले को पृष्ठांकनकर्ता कहते है ।

**पृष्ठांकिती**–जिस व्यक्ति के नाम विलेख का पृष्ठांकन या बेचान किया जाता है, उसे पृष्ठांकिती कहते है।

**धारक**–किसी प्रतिज्ञा–पत्र, विनिमय पत्र. अथवा चैक का धारी वह व्यक्ति है जो अपने नाम से उसे रखने तथा सम्बन्धित पक्षकार से देय धन प्राप्त करने का अधिकारी है। जब कोई प्रतिज्ञा–पत्र विनिमय पत्र अथवा चैक खो जाता है अथवा नष्ट हो जाता है तो उसका धारी वह व्यक्ति होता है जो ऐसी हानि अथवा विनाश के समय उसका अधिकारी था। **(धारा 8)**

**प्रतिष्ठा के लिए स्वीकर्ता**–जब कोई व्यक्ति मूल आहार्यी या ऋणी द्वारा विनिमय पत्र को स्वीकार करने से इन्कार करने पर अथवा नोटेरी पब्लिक द्वारा अच्छी जमानत माँगने पर ऐसी जमानत देने से इन्कार कर देने पर आहर्ता या पृष्ठांकिती की प्रतिष्ठा के लिए उसे स्वीकार कर लेता है तो उसे प्रतिष्ठा के लिए स्वीकर्ता कहते हैं। **(धारा 7, 4)**

**आवश्यकता की दशा मे ऋणी, आहर्यी या देनदार**–उपर्युक्त पक्षकारों के अतिरिक्त आहत्र की इच्छा पर एक अन्य व्यक्ति भी सम्मिलित किया जा सकता है जिसे "आवश्यकता की दशा में आहार्यी " कहतें है। ऐसे व्यक्ति का नाम

Jai Vishva Bharati Institute (Deemed University), Latnun

आहर्ता द्वारा या किसी भी पृष्ठांकन द्वारा बिल में इसलिए लिख दिया जाता है कि आवश्यकता पड़ने पर उस पर पहुॅचा जा सके अर्थात जबकि विनिमय पत्र मूल आहार्यी द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता या उसका भुगतान नही किया जाता। यदि विनिमय पत्र में ऐसे व्यक्ति का नाम लिखा होता है जो जब तक ऐसा व्यक्ति भी अनादरण न कर दें तब तक विनिमय पत्र अनादरित नहीं समझा जाता।

**प्रतिज्ञा–पत्र के पक्षकार**

**लेखक–** वह व्यक्ति जो प्रतिज्ञा–पत्र का निर्माण करता हे तथा एक निश्चित धनराशि के भुगतान करने की प्रतिज्ञा करता है।

**लेनदार**–वह व्यक्ति जिसे प्रतिज्ञा–पत्र में लिखे गये धन का भुगतान प्राप्त करना है, अर्थात जिसे भुगतान देय हों।

**लेनदार–**यह या तो आदाता अथवा लेनदार होता है या कोई अन्य व्यक्ति जिसे प्रतिज्ञा–पत्र का पृष्ठांकन किया गया है।

**पृष्ठांकनकर्ता–**वह व्यक्ति प्रतिज्ञा पत्र पृष्ठांकित किया जाता है।

चैक के पक्षकार

**लेखक–**वह व्यक्ति जो चैक को लिखता है एवं उस पर हस्ताक्षरकर्ता है।

**देनदार–**वह बैंक जिस पर चैक लिखा जाता है।

**लेनदार–**वह व्यक्ति जिसे चैक की धनराशि प्राप्त करने का अधिकार है।

**धारक–** वह व्यक्ति जिसके अधिकार में चैक है।

**पृष्ठांकनकर्ता–**वह व्यक्ति जो चैक का पृष्ठांकन या बेचान करता है।

**पृष्ठांकिति–** वह व्यक्ति जिसके नाम चैक का पृष्ठांकन किया जाता है।

**प्रश्नः–**

**विनिमय पत्र के कितने पक्षकार होते है?**

**पृष्ठांकिती व पृष्ठांकनकर्ता किसे कहते है?**

**प्रतिज्ञा–पत्र के कौन–कौन से पक्षकार होते है?**

**धारक**

**परिभाषा–**किसी प्रतिज्ञा–पत्र विनिमय–पत्र अथवा चैक या धारक अथवा धारी वह व्यक्ति जो अपने नाम से उसे रखने तथा सम्बन्धित पक्षकारों से धन प्राप्त करने का अधिकारी है। जब काई प्रतिज्ञा–पत्र , विनिमय–पत्र अथवा चैक के खो जाता है अथवा नष्ट हो जाता है तो उसका धारक वह व्यक्ति होता है जो ऐसी हानि अथवा विनाश के समय उसका अधिकारी था।

**धारक कौन?**

किसी भी व्यक्ति को धारक होन के लिये निम्न में से दो अधिकारी होना आवश्यक है।

**विलेख को अपने नाम में रखना–** किसी भी व्यक्ति को धारक होने के लिए उसके पास वह अधिकार होना चाहिये कि उसे विलेख को अपने नाम से ही रखने का अधिकार होना चाहिये। कोई एजेन्ट जिसके पास उसके नियोक्ता का कोई विलेख सुरक्षित रखने के लिए है, तो वह उसको अपने नाम में रखने का अधिकारी नहीं है।

**धनराशि प्राप्त करने का अधिकारी–**धारक वहीं व्यक्ति होगा जिसे अपने नाम में ही धनराशि प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिये। इस प्रकार वह व्यक्ति धारक नही होगा जिसके पास यघपि कोई विनिमय साध्य विलेख है लेकिन वह

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उसका रूपया या धनराशि प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है, जैसे एक चोर अथवा खोये हुए विलेख को पाने वाला व्यक्ति।

**खोने या नष्ट होते समय अधिकारी होना**–यदि कोई विनिमय साध्य विलेख खो जाता है तो ऐसी दशा में उस विलेख के खोने या नष्ट होते समय जो भी उसका अधिकारी था, उस व्यक्ति को ही धारक माना जायेगा।

**यथाविधिधारी**

**परिभाषा**– ऐसा व्यक्ति जो प्रतिफल के बदले में विलेख में लिखित धनराशि में देय होने से पूर्व और इस विश्वास के लिए पर्याप्त कारण न रखते हुए कि जिस व्यक्ति से उसने अपना अधिकार या स्वत्व प्राप्त किया था उसके अधिकार में कोई दोष विघमान था, किसी प्रतिज्ञा–पत्र, विनिमय–पत्र अथवा जनादेश का अधिकारी हो जाता है, जो वाहक अथवा उसके आदेशानुसार देय हो तो उसका आदाता अथवा प्राप्तकर्ता अथवा उसका पृष्ठांकिती यथाविधिधारी हो जाता है। **(धारा–9)**

**अनिवार्य तत्व–**

**1. धारक होना**– यथाविधिधारी होने के लिये प्रथम एवं महत्वपूर्ण तत्व है कि वह व्यक्ति उस विलेख का धारक होना चाहिये। इस प्रकार उस व्यक्ति को विलेख अपने नाम से रखने तथा उसकी देय राशि को प्राप्त करने का उसे अधिकार प्राप्त होना चाहिए। इस प्रकार कोई भी व्यक्ति या पक्षकार धारक हुए बिना यथाविधिधारी नहीं हो सकता है।

**2. प्रतिफल के बदल में**– यदि विलेख वाहक को देय है अथवा उसके आदेशानुसार किसी व्यक्ति को देय है और ऐसे विलेख बिना प्रतिफल के बदल प्राप्त किया गया है, जैसे कि विलेख को किसी दान के रूप में प्राप्त करने वाला व्यक्ति यथाविधिधारी नहीं बन सकता है अर्थात यथाविधिधारी होने के लिये विलेख को प्रतिफल के बदल में प्राप्त होना अति–आपवश्यक तत्व है।

**3. परिपक्वता की तिथि अथवा देय तिथि से पूर्व**–यथाविधिधारी होने के लिये भी यह एक आवश्यक शर्त है कि विलेख की भुगतान होने वाली धनराशि की देय तिथि के पूर्व वह व्यक्ति विलेख का धारी होना चाहियें। यदि वह विलेख को देय होने के पश्चात प्राप्त करता है, चाहे वह अन्य सभी शर्तो पूरी करता हो, वह विलेख का यथाविधिधारी नहीं होगा।

**4. अच्छा स्वत्व**–यथाविधिधारी होने के लिये विलेख पर उस व्यक्ति का अच्छा स्वत्व का होना आवश्यक हैं। अतः ऐसा विलेख उसने सदविश्वास से प्राप्त किया हो लेकिन उसे प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसे ऐसा विश्वास करने का कोई पर्याप्त कारण नहीं होना चाहियें अर्थात उसे थोड़ा भी विश्वास नहीं होना चाहिये कि उस व्यक्ति के स्वत्व में जिससे उसने अपना स्वत्व प्राप्त किया है कोई दोष था। इस प्रकार सदविश्वास अथवा अच्छे स्वत्व की जानकारी दो प्रकार से की जा सकती है। प्रथम, क्या धारक ने ईमानदारी से विलेख लिया था, द्वितीय, क्या उसने विलेख लेते समय उचित सावधानी रखी थी।

**5. पूर्ण एवं नियमित**–यथाविधिधारी होने के लिये विलेख की पूर्ण एवं नियमित होना आवश्यक है। अर्थात यदि विलेख टुकड़े–टुकड़े होने के बाद चिपका दिया गया है अथवा विलेख पर कुछ लिख दिया गया है अथवा मिटा दिया गया है अथवा विलेख में कोई महत्वपूर्ण दोष रह जाता है तो ऐसी परिस्थिति में ऐसे विलेख का धारक या धारी यथाविधिधारी नहीं होगा।

**धारा 118** के अनुसार, जब तक यह सिद्ध न कर दिया जाए कि किसी लेख पत्र का अधिकारी यथाविधिधारी नहीं है। न्यायालय उसे यथाविधिधारी ही मानता है, लेकिन यदि कोई विलेख किसी कपट अथवा किसी अवैधानिक प्रतिफल के बदले में प्राप्त किया गया है या अपूर्ण स्टाम्पयुक्त है तो यह सिद्ध करने का भार कि धारक ही यथाविधिधारी है उसी के उपर होगा अर्थात धारक को ही यह सिद्ध करना होगा कि वह यथाविधिधारी है।

**धारक तथा यथाविधिधारी में अन्तर**

| अन्तर–आधार | धारक | यथाविधिधारक |
|---|---|---|
| 1. आशय | ऐसा व्यक्ति जो विलेख को अपने नाम से रखने तथा सम्बन्धित पक्षकारों से देय धन प्राप्त करने का | ऐसा व्यक्ति जो प्रतिफल के बदले विलेख पर कब्जा करता है या आदेश प्रलेख का |

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

| | | |
|---|---|---|
| | अधिकारी हैं। | आदाता या पृष्ठांकिती प्रतिफल, सदविश्वास के बदल प्राप्त किया है। |
| 2. परिभाषा | इसकी परिभाषा धारा–8 में दी गई हैं। | इसकी परिभाषा धारा–9 में दी गई हैं। |
| 3. प्रतिफल | धारक के लिये प्रतिफल का होना अनिवार्य नही हैं। | यथाविधिधारी के लिये प्रतिफल होना ही अनिवार्य है। |
| 4. परिपक्वता | धारक बनने के लिये यह आवश्यक नही कि लेख–पत्र को परिपक्वता से पूर्व प्राप्त करें। | यथाविधिधारी बनने के लिए यह आवश्यक है कि लेख पत्र को परिपक्वता से पूर्व प्राप्त किया जाये। |
| 5. आवश्यकता | इसमें धारक के लिये यथाविधिधारक होना आवश्यक नहीं है। | इसमें धारक के लिये यथाविधिधारक होना अति–आवश्यक है। |
| 6. स्वत्त्वाधिकार | इसमें मूल्य के लिये धारक का स्वत्व लेख–पत्र के हस्ताक्षरकर्ता के समान ही रहता है। | इसमें यथाविधिधारी अपने हस्ताक्षरकर्ता की उपेक्षा अच्छा स्वत्व प्राप्त करता है। |
| 7. सदभावना | धारक बनने के लिए सदभावना आवश्यक नही है। | यथाविधिधारक बनने के लिए सदभावना अति–आवश्यक है। |
| 8. विशेषाधिकार | धारक को वे सब विशेषाधिकार प्राप्त नही होते है जो एक यथाविधिधारी को प्राप्त होते है। | जबकि एक यथाविधिधारी को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त होते है। |
| 9.कलपित विलेख की दशा में | धारक कल्पित विलेख की दशा में विलेख की धनराशि को वसूल नही कर सकता है। | यह कल्पित की धनराशि को वसूल कर सकता है। |
| 10.अवैधानिक तरीके से प्राप्त विलेख | धारक विलेख के पूर्व पक्षकारों के विरूद्ध अपने अधिकरों को प्रवर्तित नहीं करवा सकता है। | यह विलेख के सभी पूर्व पक्षकार के विरूद्ध अपने अधिकरों को प्रवर्तित करवा सकता है। |

**प्रश्नः–**

**1. धारक कौन होता है?**

**2. यथाविधिधारक किसे कहते है?**

**3. धारक और यथाविधिधारक में अन्तर स्पष्ट करों।**

**'' मूल्य के लिए धारक ''**

जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे विनिमय साध्य विलेख का धारक है, जिसका मूल्य पहले किसी समय दिया जा चुका है तो वह मूल्य के लिए धारक कहलाता है, क्योंकि ऐसा धारक मूल्य के बदले में उसे प्राप्त नहीं करता। उसे विलेख से सम्बन्धित पूर्ण पक्षकारों के विरूद्ध उनको छोड़कर जिससे कि उसने प्राप्त किया है। वे सभी अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जो कि उस व्यक्ति को प्राप्त थे जिससे उसने प्राप्त किया हैं।

**मूल्य के लिए धारी की विशेषताएँ–**

1. ऐसा धारक किसी भी विलेख का धारक हो सकता है।

2. ऐसा धारक विलेख का मूल्य नहीं चुकाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. ऐसे विलेख का मूल्य पूर्व पक्षकारों में से किसी एक पक्षकार द्वारा चुकाया गया होता है।

4. ऐसे धारक को विलेख के पूर्व पक्षकरों के प्रति वे सभी अधिकार प्राप्त होते हैं जो

5. अधिकार उस व्यक्ति को प्राप्त थे जिसने उसके ऐसे विलेख को प्राप्त किया था।

## यथाविधिधारी तथा मूल्य के लिये धारी में अन्तर

**1. मूल्य भुगतान**–यथाविधिधारी विलेख के बदले में मूल्य स्वयं चुकाता है लेकिन मूल्य के लिये धारी के लिये ऐसा होना आवश्यक नहीं है।

**2. स्वत्त्वाधिकार**–यथाविधिधारी अपने हस्तान्तरणकर्ता की अपेक्षा अच्छा स्वत्व प्राप्त करता है अर्थात यदि हस्तान्तरणकर्ता का अधिकार दूषित होने पर भी उसे अच्छा स्वत्व प्राप्त हो जाता है जबकि मूल्य के लिये धारी का स्वत्व विलेख के हस्तान्तरणकर्ता के समान ही रहता है।

**3. वाद प्रस्तुत करना**–यथाविधिधारी विलेख के अनादरित होने की दशा में हस्तान्तरणकर्ता के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है जबकि मूल्य के लिये धारी हस्तान्तरणकर्ता के विरूद्ध वाद प्रस्तुत नही कर सकता है।

### पक्षकारों के दायित्व

**4. एजेन्ट का दायित्व**–एक एजेन्ट जो किसी प्रतिज्ञा–पत्र, विनिमय पत्र या चैक पर यह प्रकट किये बिना कि वह एजेन्ट है या एजेन्ट के रूप में कार्य कर रहा है या इसके सम्बन्ध में उसका व्यक्तिगत दायित्व लेने का विचार नहीं हैं, हस्ताक्षर करता है तो वह उसके सम्बन्ध में उन व्यक्तियों के अतिरिक्त जिन्होंने उसे इस विश्वास पर कि केवल नियोक्ता का दायित्व है हस्ताक्षर करने के लिये प्रेरित किया, अन्य सभी के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा **(धारा–28)**

**5. वैधानिक प्रतिनिधि का दायित्व**–जिस प्रकार धारक की मृत्यु के बाद उसका वैधानिक उतराधिकारी सभी लेख–पत्रों का अधिकारी होा है उसी प्रकार किसी मृतक व्यक्ति का वैधानिक प्रतिनिधि जो किसी प्रतिज्ञा–पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक पर अपने नाम के हस्ताक्षर करता है तो वह उसके लिये व्यक्तिगत रूप से उतरदायी होता है जब तक कि वह स्पष्ट रूप से अपने दायित्व की प्राप्त की गई सम्पति तक सीमित कर लें। **(धारा–29)**

**6. आहर्ता का दायित्व**–यदि किसी चैक का आहार्थी अथवा विनिमय पत्र का स्वीकर्ता चैक अथवा विनिमय पत्र को अस्वीकार अथवा अनादरित कर देता है तो उसका आहर्ती धारक के प्रति उतरदायी होता है, बशर्ते उसे इस आशय की सूचना दे दी गई हो और उसने प्राप्त कर ली हो। यह ध्यान देने योग्य बात है कि चैक के आहर्ता का दायित्व मुख्य होता है जबकि एक विनिमय पत्र की स्वीकृति हो जाने पर आहार्ता का दायित्व गौण हो जाता है। **(धारा–30)**

**7. बैंक के आहार्थी का दायित्व**–एक चैक का आहार्थी सदैव एक बैंकर होता है जो अपने ग्राहकों द्वारा लिखे गये चैकों का भुगतान करता है। यदि कोई बैंक चैक का भुगतान करने से इन्कार कर देता है तो धारक को बैंक के विरूद्ध कोई अधिकार प्राप्त नही होंता है, वह केवल अपने ग्राहक के प्रति उतरदायी होता है। चैक के आहार्थी अथवा देनदार को जिसके पास आहार्ता का पर्याप्त धन है और जो चैक के भुगतान में प्रयोग में लाया जा सकता है, चैक के प्रस्तुत होने पर चैक का भुगतान उसे आवश्यक रूप से कर देना चाहिये। **(धारा–31)**

**8. प्रतिज्ञा–पत्र के लेखक का दायित्व**–प्रतिज्ञा–पत्र का लेखक परिपक्वता की तिथि पर वाहक को अथवा एक विशेष व्यक्ति को या उसके आदेशित व्यक्ति को भुगतान करने के लिए बाध्य है। भुगतान नहीं करने की दशा में लेखक किसी भी पक्षकार के प्रति जिसने ऐसी त्रुटि के कारण हानि उठाई हो। क्षतिपूर्ति करने के लिए उतरदायी है। **(धारा–32)**

**9. विनिमय पक्ष के स्वीकर्ता का दायितव**– एक विनिमय पत्र का स्वीकर्ता इसकी परिपक्वता की तिथि पर इसकी धनराशि को या परिपक्वता के पश्चात उसके धारक को माँग पर चुकाने के लिये बाध्य हैं। यदि ऐसा भुगतान करने में त्रुटि रहने पर वह विनिमय–पत्र के किसी भी पक्षकार को हुई ऐसी हानि की पूर्ति के लिये बाध्य है। **(धारा–32)**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**10. पृष्ठांकिती का दायित्व**–जब कोई व्यक्ति विनिमय साध्य लेख पत्र की परिपक्वता से पूर्व पृष्ठांकन करता है और सुपुर्द करता है और अपने दायित्व को सीमित नहीं करता है तो ऐसी दशा में वह प्रत्येक अगले धारी को अनादरण से हुई हानि की पूर्ति करने के लिए बाध्य होगा, बशर्ते कि उसे अनादरण होने की सूचना दे दी गई हो अथवा उसे प्राप्त हो गई हो।

## लेख पत्र के पूर्व पक्षकारों का दायित्व

**1. यथाविधिधारी के प्रति**–साध्य लेख पत्र का प्रत्येक पूर्व पक्षकार यथाविधिधारी के प्रति उस समय तक उतरदायी रहता है जब तक कि लेख पत्र यथोचित रूप से सन्तुष्ट न कर दिया जाए अथवा भुगतान न कर दिया जाए। **(धारा–36)**

**2. लेखक, आहर्ता एवं स्वीकर्ता के मूल दायित्व**–प्रतिज्ञा–पत्र अथवा चैक का लेखक स्वीकृति तक, विनिमय पत्र का आहार्ता तथा बाद में विनिमय पत्र का स्वीकर्ता किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में मूल ऋणी की भॉति उतरदायी होते हैं और अन्य पक्षकार लेखक, आहर्ता अथवा स्वीकर्ता के लिये प्रतिभूतियों के रूप में उतरदायी होते है। **(धारा–37)**

**3. एक–दूसरे के प्रति दायित्व**–प्रतिभूतियों के रूप में उतरदायी पक्षकारों के बीच प्रत्येक पूर्व पक्षकार प्रत्येक बाद वाले पक्षकार के प्रति मूल ऋणी के रूप में उतरदायी होता है। **(धारा–38)**

**4. पृष्ठांकनकर्ता का दायित्व से मुक्त होना**–यदि किसी विनिमय साध्य लेख पत्र का धारक पृष्ठांकनकर्ता की बिना सहमति के किसी पूर्व पक्षकार के विरूद्ध पृष्ठांकनकर्ता के अधिकार को नष्ट कर देता है अथवा क्षति पहुँचाता है तो पृष्ठांकनकर्ता धारक के प्रति अपने दायित्व से उस सीमा तक मुक्त हो जाता है मानो कि परिपक्वता पर लेख पत्र का भुगतान हो जाता है। **(धारा–40)**

**5. जाली पृष्ठांकन की दशा में**–किसी पूर्व पृष्ठांकित विनिमय पत्र का स्वीकर्ता अपने दायित्व से इस आधार पर मुक्त नही हो सकता कि पृष्ठांकन जाली है, बशर्ते विनिमय पत्र को स्वीकार करते समय उसे पृष्ठांकन के जाली होने का ज्ञान था, अथवा ऐसा विश्वास करने के लिये आधार था। **(धारा–41)**

**6. कलपित नाम में आहरित बिल की स्वीकृति** –जब कोई विनिमय पत्र किसी कल्पित नाम से आहर्ता की आज्ञा पर देय हो और उसी व्यक्ति के द्वारा आहार्ता के हस्ताक्षर के रूप में पृष्ठांकित किया गया हो तो स्वीकर्ता यथाविधिधारी के प्रति यह नही कह सकता कि उक्त नाम कल्पित है। **(धारा–41)**

**7. बिना प्रतिफल के विलेखो के लिये दायित्व**– बिना प्रतिफल के अथवा ऐसे प्रतिफल जो बाद में निष्फल हो गया हो कोई विनिमय साध्य विलेख यदि लिखा, आहरित, स्वीकृति , पृष्ठांकित अथवा हस्तान्तरित किया गया हो तो वह उस व्यवहार के लिये कोई दायित्व उत्पन्न नहीं करता।

लेकिन यदि ऐसे किसी पक्षकार ने मूल्य के बदले में विलेख को हस्तान्तरित कर दिया हो तो मूल्यार्थधारी तथा उससे स्वत्वाधिकार वाले बाद के धारक विलेख की राशि हस्तान्तरक अथवा किसी पूर्व पक्षकार से वसूल करने के अधिकारी होते है। **(धारा–43)**

**प्रश्नः–**

**1. मूल्य के लिए धारक किसे कहते है?**

**2. चैक के देनदार का दायित्व क्या है?**

**3. पृष्ठांकक का दायित्व क्या है?**

**4. लेखपत्र के पूर्व पक्षकारों का दायित्व स्पष्ट कीजिए।**

## विनिमय साध्य विलेखों की परक्रामण

### पराक्रामण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**अर्थ**–सामान्य शब्दों में पराक्रामण का आशय, जब कोई व्यक्ति या पक्षकार किसी अन्य व्यक्ति या पक्षकार को प्रतिज्ञा–पत्र, बिल या चैक के ऐसे हस्तान्तरण से होता है जिससे अन्तर्गत वह व्यक्ति या पक्षकार उसका धारक हो जाए। एक वाहक लेख पत्र केवल सुपुर्दगी द्वारा हस्तान्तरित किया जा सकता है, लेकिन एक आदेशित लेख पत्र के हस्तान्तरण के लिये बेचान तथा सुपुर्दगी दोनों की ही आवश्यकता होती है। विनिमय साध्य विलेखों का यह हस्तान्तरण अत्यधिक सरल एवं प्रभावशाली ढंग है।

**परिभाषा**–विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 14 के अनुसार , जब कोई व्यक्ति प्रतिज्ञा–पत्र , विनिमय–पत्र, या चैक किसी व्यक्ति को इस प्रकार हस्तान्तरित कर देता है कि जिस व्यक्ति को वह हस्तान्तरित किया जाता है वह उस विलेख का धारक बन जाता है तो ऐसा विलेख पराक्रमित अथवा हस्तान्तरित हुआ कहा जाता है।

**पराक्रामण या हस्तान्तरण कौन कर सकता है?**

1. लेखक
2. आहर्ता
3. आदाता
4. पृष्ठांकिती

उसका पृष्ठांकन एवं पराक्रामण कर सकते हैं, जब किसी विलेख के सयुंक्त लेखक, आहर्ता, आदाता या पृष्ठांकिती हो तो उन सभी के द्वारा ऐसा किया जा सकता है।

लेकिन पृष्ठांकन अर्थात हस्तान्तरण के लिये विलेख हस्तान्तरणकर्ता के वैधानिक अधिकार में होना चाहिये। जब तक लेखक, आहर्ता, आदाता, या पृष्ठांकिती के पास विलेख वैधानिक अधिकार में नही होंगे तब तक ये पृष्ठांकन नहीं कर सकते।

**परकाम्यता की विशेषताएँ**

**1. दो पक्षकार**–परक्राम्यता में मुख्य रूप से दो पक्षकार–हस्तान्तरणकर्ता या पृष्ठांकन तथा हस्तान्तरिती या पृष्ठांकिती होते है।

**2. हस्तान्तरण**–परक्रम्यता के अन्तर्गत एक पक्षकार को विलेख का हस्तान्तरण करता है।

**3. सुपुर्दगी**–परक्राम्यता के अन्तर्गत एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को विलेख की सुपुर्दगी देता है जो परक्राम्यता की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

**4. वास्तविक एवं रचनात्मक सुपुर्दगी**– परक्राम्यता के अन्तर्गत विलेख की सुपुर्दगी वास्तविक एवं रचनात्मक सुपुर्दगी हो सकती है, लेकिन सुपुर्दगी अवश्य होनी चाहिये।

**5. धारक बनाना**– परक्राम्यता के अन्तर्गत जो विलेख की सुपुर्दगी दी जाती है, उसका मुख्य उददेश्य हस्तान्तरिती को धारक बनाना होता है।

**अभिहस्तांकन**

अभिहस्तांकन से हमारा आशय यह है कि सम्पति हस्तान्तरण अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार लिखित एवं पंजीकृत विलेख द्वारा किसी वस्तु का स्वामित्व एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित करना होता है।

विनिमय साध्य विलेख विधि प्राप्य वस्तु होती है। इसलिए विनिमय साध्य विलेख का हस्तान्तरण अभिहस्तांकन के द्वारा होता हैं। इस प्रकार हस्तान्तरण को पृथक संलेख लिखकर भी दिया जा सकता है। इस प्रकार के अभिहस्तान्तरिती को एक अभ्हिस्ताक्षरकर्ता के अधिकारों एवं स्वत्वाधिकार से अधिक कुछ प्राप्त नहीं होता है। उसे यथाविधिधारी के अधिकार प्राप्त नहीं हो सकते ।

इस प्रकार अभिहस्तांकन के अन्तर्गत एक पक्षकार दूसरे पक्षकार को किसी विलेख का ऐसी प्रकृति का हस्तान्तरण करता है जिस पर देय राशि को प्राप्त करने या वसूल करने के अधिकार को किसी दूसरे व्यक्ति या पक्षकार को हस्तान्तरित करता है। ऐसा व्यक्ति जो अधिकार को हस्तान्तरित करता है, उसे अभिहस्ताक्षरकर्ता कहते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**अभिहस्तांकन की विशेषताएँ–**

1. अभिहस्ताकंन केवल लिखित में ही होता है।
2. यह अभिहस्तांकन किसी कागज पर भी दिया जा सकता है।
3. अभिहस्तांकन विलेख पर भी दिया जा सकता है।
4. अभिहस्तांकन में हस्तान्तरणकर्ता के हस्ताक्षर आवश्यक रूप से होने चाहिये।
5. धनराशि प्राप्त करने का अधिकार होता है।
6. धनराशि वसूल करने के अधिकार का हस्तान्तरण होता है।

**अभिहस्तांकन और परक्राम्यता में अन्तर**

| अन्तर–आधार | अभिहस्तांकन | परक्राम्यता |
|---|---|---|
| 1. आशय | सम्पति हस्तान्तरण अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत लिखित एवं पंजीकृत विलेख द्वारा किसी वस्तु का स्वामित्व एक व्यक्ति से दुसरे व्यक्ति को हस्तान्तरित करना होता है। | किसी व्यक्ति को प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र या चैक के ऐसे हस्तान्तरण से है जिससे वह व्यक्ति उसका धारक हो जाता है। |
| 2. विधि | अभिहस्तांकन एक नया ठहराव या लेखपत्र द्वारा किया जाता है। इसमें अन्य की अपेक्षा अधिक औपचारिकताएँ पूरी करनी होती है। | परक्रामण केवल सुपुर्दगी द्वारा पृष्ठांकन सहित या बिना पृष्ठांकन सहित या बिना पृष्ठांकन के किया जाता है। |
| 3. सूचना | अभिहस्तांकिती तथा ऋणी के बीच अभिहस्तांकन पूरा करने के लिये ऋणी को सूचना देना आवश्यक है। | किसी भी प्रतिज्ञा–पत्र या विनिमय बिल के सम्बन्ध में इसके लेखक या स्वीकर्ता को सूचना देना आवश्यक नही है। |
| 4. वाद प्रस्तुत करना | अभिहस्तांकिती अपने नाम से वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है। | विनिमय साध्य विलेख का धारक अपने नाम से वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है। |
| 5. प्रतिफल की विधमानता | प्रतिफल की विधमानता या उपस्थित रहने की बात को सिद्ध करना होता है। | जबकि परक्रामण में प्रतिफल की विधमानता को मान लिया जाता है और इसे सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती है। |

**प्रश्नः–**

**1.विनिमय साध्य विलेख की विनिमय साध्यता (परक्रामण) किसे कहते है?**

**2.अभिहस्तांकन क्या है?**

**3.परक्रामण तथा अभिहस्तांकन में क्या अन्तर है?**

**परक्रामण की विधियाँ**

जब कोई विलेख वाहक देय होता है तो उसका परक्रामण केवल सुपुर्दगी द्वारा ही किया जाता है। लेकिन जब किसी व्यक्ति के आदेशानुसार देय है तो उसका परक्रामण उसके धारक द्वारा पृष्ठांकन एवं सुपुर्दगी द्वारा पूर्ण होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**1. सुपुर्दगी–** किसी विलेख का परक्रामण करने के लिये विलेख की सुपुर्दगी दोनों ही दशाओं में आवश्यक होती है। सुपुर्दगी से हमारा तात्पर्य विलेख का स्वेच्छापूर्वक हस्तान्तरण से है। सुपुर्दगी वास्तविक अथवा रचनात्मक हो सकती है।

वास्तविक सुपुर्दगी का आशय अधिकार के वास्तविक हस्तान्तरण से है, जैसे कि विलेख उसके अदाता या पृष्ठांकिती को सुपुर्द कर दिया जाये। इसके विपरित रचनात्मक सुपुर्दगी उस समय मानी जाती है जबकि राजनियम ऐसी सुपुर्दगी होना मानता है, जैसे कि जबकि विलेख आदाता या पृष्ठांकिती को सुपुर्द कर दिया जाये। इसके विपरीत रचनात्मक सुपुर्दगी उस समय मानी जाती है जबकि राजनियम ऐसी सुपुर्दगी होना मानता है, जैसे कि जबकि विलेख उसके अदाता या पृष्ठांकिती के किसी एजेन्ट को सुपुर्द कर दिया जाये। सुपुर्दगी के प्रभावशील होने के लिये यह आवश्यक है कि सुपुर्दगी विलेख के लेखक, स्वीकर्ता अथवा पृष्ठांकक अथवा इन पक्षकारों द्वारा इस कार्य के लिये अधिकृत व्यक्ति द्वारा ही हो। (धारा 46)

**केवल सुपुर्दगी द्वारा परक्रामण**

जब कोई प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक वाहक को देय हो तो उसका परक्रामण केवल सुपुर्दगी द्वारा हो जाता है। यदि कोई विलेख इस शर्त पर सुपुर्द किया गया हो कि एक निश्चित घटना के घटित होने पर ही प्रभावशाली हो सकेगा, तो वह उस समय तक परक्रामण किया हुआ नही माना जायेगा जब तक कि उक्त घटना घटित न हो किसी यथाविधिधारी के सम्बन्ध में यह नियम लागू नहीं होगा । (धारा 47)

2. **पृष्ठांकन द्वारा परक्रामण**–कपटमय अथवा दोषपूर्ण विलेखों के अतिरिक्त कोई दूसरा विलेख जब किसी व्यक्ति या पक्षकार को आदेशानुसार देय है तो इसके पराक्रमण के लिए पृष्ठांकन तथा सुपुर्दगी दोनों ही आवश्यक होती है जब विलेख की धनराशि किसी विशेष व्यक्ति या पक्षकार की देय होती है तो इसे आदेशित विलेख कहते है। इस प्रकार के विलेख को केवल पृष्ठांकन द्वारा ही हस्तान्तरित किया जाता है। **(धारा 48)**

**पृष्ठांकन**

**परिभाषा**–जब किसी विनिमय साध्य विलेख का लेखक या धारक, लेखक के रूप में नही बल्कि परक्रामण के आशय से उसकी पीठ या उसके पीछे के भाग पर या मुख पर या संलग्न कागज की चिट पर अपने हस्ताक्षर करता है अथवा उसी उददेश्य से किसी स्टाम्प लगे हुए ऐसे कागज पर हस्ताक्षर करता है जो कि बाद में एक विनिमय साध्य विलेख के रूप में पूरा किया जाता हो, तो वह पृष्ठांकन करता है और उसे विलेख का पृष्ठांकन कहते है। **(धारा 15)**

**वह व्यक्ति जिसके पक्ष में पृष्ठांकन किया जाता है, उसे पृष्ठांकिती कहते है। (धारा 16)**

**पृष्ठांकन सुपुर्दगी द्वारा पूर्ण किया जाता है। (धारा 46)**

**विलेख का पृष्ठांकनकर्ता**

निम्न पक्षकारों में से कोई भी व्यक्ति या पक्षकार विनिमय साध्य विलेख का पृष्ठांकन कर सकता है। ये पक्षकार पृष्ठांकन केवल उसी दशा में कर सकते है जबकि विलेख का पृष्ठांकन वर्जित या प्रतिबन्धित नही है।

**विलेख या आदाता**–प्रत्येक विलेख का आदाता पृष्ठांकन कर सकता है। **(धारा 50)**

**2. विलेख का लेखक**–विलेख का लेखक उसका पृष्ठांकन कर सकता है लेकिन वह हस्ताक्षर लेखक के रूप में न करके अन्य किसी रूप में या हैसियत से करने चाहिये। **(धारा 15)**

**विलेख का पृष्ठांकन**–विलेख का पृष्ठांकन विलेख का पृष्ठांकन कर सकता है। **(धारा 51)**

**विलेख के सयुंक्त आदेशक**–विलेख का पृष्ठांकन विलेख के संयुक्त आदेशक कर सकते है। इसमें विलेख का लेखक, आदाता या पृष्ठांकिती सभी उसका पृष्ठांकन कर सकते है। **(धारा 50)**

**साझेदार**–कोई भी साझेदार किसी विपरित ठहराव के अभाव में साझेदारी की ओर से विलेख का पृष्ठांकन कर सकता है।

**वैध पृष्ठांकन के लक्षण**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**पृष्ठांकन करने वाले पक्षकार**–किसी भी विलेख का पृष्ठांकन उसका लेखक या धारक आहर्ता या आदात या पृष्ठांकिती द्वारा किया जाना चाहियें।

**पृष्ठांकन का स्थान/जगह**–विलेख का पृष्ठांकन उसकी पीठ पर या मुख पर अथवा उसके साथ संलग्न किसी कागज या चिट पर किया जाना चाहिए।

**विलेख पर हस्ताक्षर**–विलेख पर पृष्ठांकनकर्ता के हस्ताक्षर होना आवश्यक है। हस्ताक्षर विलेख में किये गये हस्ताक्षर से मेल खाना आवश्यक है। यदि हस्ताक्षर मेल नहीं खाते है तो पृष्ठांकन नहीं हो सकेगा या अन्य वैधानिक कार्यवाही करनी होगी।

**लेखक द्वारा पृष्ठांकन**–यदि किसी विलेख के लेखक द्वारा पृष्ठांकन किया जाता है तो यह वैधानिक रूप से तभी पूर्ण माना जायेगा जबकि उसमें लेखक के रूप में हस्ताक्षर करने के अतिरिक्त पृष्ठांकनकर्ता के रूप में भी हस्ताक्षर अनिवार्य रूप से होने चाहियें।

**विलेख पूर्ण या अपूर्ण होना**–सुपुर्दगी से पूर्व विलेख का पूर्ण होना आवश्यक है, लेकिन विनिमय साध्य विलेख की धारा 20 के अनुसार एक अपूर्ण विलेख का लेखक अथवा धारक उसका पृष्ठांकन कर सकता है, साथ ही विलेख पर मुद्रांक अधिनियम के अनुसार, आवश्यक स्टाम्प लगे हुए होने चाहिये।

**पृष्ठांकन की संख्या**–विनिमय साध्य विलेख अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि पृष्ठांकन करने की कोई सीमा नहीं है अर्थात पृष्ठांकन की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नही है, इस प्रकार एक पृष्ठांकित विलेख का कितनी भी संख्या में पृष्ठांकन किया जा सकता है।

**प्रश्नः–**

**1.परक्रामण किस प्रकार किया जा सकता है?**

**2.सुपुर्दगी द्वारा परक्रामण किसे कहते है?**

**3.पृष्ठांकन क्या है?**

**4.पृष्ठांकन कौन कर सकता है?**

**पृष्ठांकन के प्रकार**

पृष्ठांकन निम्न प्रकार के हो सकते है–

1. **कोरा, रिक्त या साधारण पृष्ठांकन**–जब पृष्ठांकन लेख पत्र पर केवल अपना हस्ताक्षर कर देता है और जिस व्यक्ति के पक्ष में पृष्ठांकन करना है उसका नाम नहीं लिखत है, तो उसे रिक्त या साधारण पृष्ठांकन कहते है। **(धारा 16)**

**2. विशेष या पूर्ण पृष्ठांकन**–यदि रिक्त पृष्ठांकन कोई लेख पत्र बाद में पूर्ण पृष्ठांकित कर दिया जाता है तो पूर्ण पृष्ठांकन करने वाले से इसका धन उस व्यक्ति के अतिरिक्त जिसके प्रति यह पूर्ण पृष्ठांकित किया गया है या उसके द्वारा अधिकार प्राप्त करने वाले व्यक्ति के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति नहीं माँग सकता है। **(धारा 16)**

**3. प्रतिबन्धित पृष्ठांकन**–जब पृष्ठांकनकर्ता किसी विनिमय साध्य विलेख पर अपने हस्ताक्षर के उपर उस व्यक्ति का नाम लिख देता है जिसको वह पृष्ठांकन करता है तथा साथ ही कुछ ऐसे शब्द भी जोड़ देता है जिससे उस विलेख को आगे पृष्ठांकन करने पर प्रतिबन्ध हो जाए तो वह प्रतिबन्ध युक्त अथवा सीमित पृष्ठांकन कहलाता है।

**शर्त सहित पृष्ठांकन**– कोई पृष्ठांकिक पृष्ठांकन में स्पष्ट शब्दों द्वारा अपने दायित्वों को मुक्त कर देता है अथवा अपने दायित्व को अथवा पृष्ठांकिती के देय धन को प्राप्त करने के अधिकार को किसी निर्दिष्ट घटना के होने पर निर्भर कर देता है तो ऐसे पृष्ठांकन को शर्त सहित पृष्ठाकन कहते हे।

निम्न रूपों में पृष्ठांकक अपने दायित्व को मुक्त अथवा सीमित कर सकता है।

**दायित्व रहित पृष्ठांकन**

**व्यय रहित पृष्ठांकन**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**ऐच्छिक पृष्ठांकन**

**घटना के घटित होने पर दायित्व पृष्ठांकन**

**आंशिक पृष्ठांकन**

**पृष्ठांकन रदद करना**

**वापसी पृष्ठाकन**

**जाली पृष्ठांकन**

**प्रश्नः–**

**रिक्त पृष्ठांकन किसे कहते है?**

**विशेष पृष्ठांकन किसे कहते है?**

**जाली पृष्ठांकन क्या है?**

## प्रस्तुतिकरण
## Presentment

किसी भी विनिमय साध्य विलेख का वैधानिक रूप से तभी अस्तित्व होता है जब उसे नियमानुसार स्वीकृत एवं भुगतान प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता है। अतः इसके लिए विनिमय साध्य विलेख को उसके आदाता अथवा धारक को उसका भुगतान माँगने से पूर्व कुछ प्रारम्भिक कार्यवाहियाँ करती होती है और उनमें से अत्यधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण कार्यवाही होती है विनिमय साध्य विलेख की प्रस्तुति।

इस प्रकार प्रस्तुतिकरा का शाब्दिक अर्थ होता है '' विलेख या प्रपत्र को भुगतान या स्वीकृति के लिये उचित समय एवं स्थान पर प्रस्तुत करना।'' विनिमय साध्य विलेख के अन्तर्गत प्रस्तुतिकरण की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी गई है, लेकिन विनिमय साध्य विलेख के अन्तर्गत प्रस्तुतिकरण की कोई निश्चित परिभाषा नहीं दी गई है, लेकिन विनिमय साध्य विलेख अधिनियम के अनुसार, प्रस्तुतिकरण के मुख्य रूप से तीन महत्वपूर्ण एवं आधारभूत उददेश्य होते हे–

1. विनिमय विलेख या विपत्र का स्वीकृति के लिये प्रस्तुतिकरण।
2. प्रतिज्ञा पत्र का दर्शनार्थ प्रस्तुतिकरण।
3. विनिमय साध्य विलेख या विपत्र का भुगतान के लिये प्रस्तुतिकरण।

### स्वीकृति के लिये प्रस्तुतिकरण

विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 61 में यह प्रावधान किया गया है कि दर्शन पर भुगतान योग्य विनिमय विपत्र स्वीकृति के लिये प्रस्तुति के लिये कोई निश्चित या निर्धारित समय अथवा स्थान नहीं दिया गया है, स्वीकृति माँगन का अधिकार रखने वाले पक्षकार या व्यक्ति द्वारा उसके आहरित होने के पश्चात उचित समय के भीतर अथवा व्यापार या कारोबार के कार्य समय में उसमें आहार्थी के समक्ष स्वीकृति के लिये प्रस्तुत किया जाना चाहिये, यदि वह उचित खोजबीन के पश्चात मिल जाता है। ऐसी प्रस्तुति न करने पर त्रुटि करने वाले व्यक्ति के प्रति उससे सम्बन्धित कोई भी व्यक्ति या पक्षकार उतरदायी नहीं होगा।

इस प्रकार स्वीकृति के लिये प्रस्तुति के सम्बन्ध में निम्न बाते अति महत्वपूर्ण हैं–

1. **स्वीकृति के लिये प्रस्तुति 'दर्शन के पश्चात देय ' विनिमय के सम्बन्ध में**–स्वीकृति के लिये प्रस्तुत अन्य विलेखो के सम्बन्ध में यह आवश्यक नहीं है, केवल विनिमय पत्रों के सम्बन्ध में ऐसी आवश्यकता होती है और यह भी केवल उन्हीं विनिमय पत्रों के लिये होती है जो दर्शन के पश्चात देय होते है, ऐसे विनिमय पत्रों को

a. जो कि माँगने पर देय है, अथवा

b. उसकी तिथि से निर्धारित दिनों के बाद देय है, अथवा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

c. किसी निश्चित तिथि पर देय है।

2. **प्रस्तुति किसके द्वारा तथा किसको**–स्वीकृति की प्रस्तुति स्वीकृति माँगने का अधिकर रखने वाले व्यक्ति द्वारा की जानी आवश्यक है। वह स्वयं उसके द्वारा की जा सकती है अथवा इसके वैधानिक अधिकृत एजेन्ट द्वारा की जा सकती है।

यह महत्वपूर्ण प्रश्न है कि प्रस्तुति किसको की जाये, ऐसी प्रस्तुति–

a. आहार्थी अथवा उसके एजेन्ट को, अथवा

b. यदि आहार्थी की मृत्यु हो जाती है तो उसके वैधानिक उतराधिकारी, अथवा

c. यदि आहार्थी दिवालिया घोषित कर दिया गया है तो राजकीय प्रापक को की जानी चाहियें।

**3. प्रस्तुति का समय**–यदि विनिमय पत्र में प्रसतुति की अवधि निशचित कर दी गई है तो उस समय के भीतर होनी चाहिये। चाहे ऐसी कोई अवधि निश्चित नहीं की गई है तो प्रस्तुति उचित समय के भीतर अथवा अनुचित देरी के बिना होनी चाहिये। यही नहीं प्रस्तुति कारोबार के दिन तथा कारोबार के कार्य समय या घण्टों में होनी चाहिए **(धारा 61)**

**4. प्रस्तुति का स्थान**–यदि प्रस्तुति का स्थान विनिमय पत्र में निर्दिष्ट कर दिया गया हो , तो प्रस्तुति उस निर्दिष्ट स्थान पर होनी चाहिये, अन्यथा यह कारोबार के स्थान पर या आहार्थी के निवास स्थान पर की जानी चाहिये, अथवा यह कारोबार के स्थान पर या आहार्थी के निवास स्थान पर की जानी चाहिये। यदि आहार्थी का कोई जाना–पहचाना हुआ कारोबार का स्थान अथवा निश्चित निवास स्थान नहीं है तथा विलेख में ऐसी प्रस्तुति के लिये कोई स्थान निर्दिष्ट नहीं है, ऐसी प्रस्तुति उसे व्यक्तिगत रूप से जहॉ कहीं भी वह पाया जाता है, की जा सकती है। **(धारा 71)**

**5. डाक द्वारा प्रस्तुति**– यदि ठहराव के द्वारा ऐसा अधिकार प्रदान किया गया हो अथवा रीति–रिवाज द्वारा ऐसा किया जा सकता हो तो स्वीकृति के लिए प्रस्तुति डाक द्वारा की जा सकती है, परन्तु वह एक पंजीकृत पत्र द्वारा की जानी चाहिये।

6. **स्वीकृति के लिये समय**–आहार्थी को यह अधिकार प्राप्त है कि वह 48 घण्टों के समय तक विनिमय पत्र की स्वीकृति के विषय में निश्चित कर सके। उस समय के व्यतीत या पूरा हो जाने के पश्चात धारी विनिमय पत्र को अस्वीकृत समझ सकता है। **(धारा 64)**

**वैध स्वीकृति की आवश्यकताएँ**

वैध स्वीकृति के लिये एक स्वीकृति में निम्न तत्वों या विशेषताओं का होना आवश्यक है–

a. स्वीकृति लिखित होनी आवश्यक है,

b. स्वीकृति आहार्थी अथवा उसके एजेन्ट द्वारा हस्तान्तरित होनी चाहिये,

c. स्वीकृति विनिमय पत्र के उपर होनी चाहिये, तथा

d. स्वीकृति तब तक पूर्ण नहीं समझी जाती है जब तक कि स्वीकृति विनिमय पत्र की सुपुर्दगी अथवा इस प्रकार की स्वीकृति की सूचना धारक या उसके एजेन्ट को न दे दी जाए।

**स्वीकृति साधारण अथवा मर्यादित हो सकती है।**

1. **साधारण स्वीकृति**– जब आहार्थी बिना किसी मर्यादा या शर्त के आहर्ता के आदेश का पूर्ण अनुमोदन करता है तो उसे साधारण स्वीकृति कहते है। ऐसी स्वीकृति आहार्थी द्वारा विनिमय पत्र पर हस्ताक्षर करके अथवा हस्ताक्षर के बाद स्वीकृति शब्द लिखकर की जाती है। कभी–कभी आहार्थी भुगतान का स्थान भी लिख देता है।

2. **मर्यादित स्वीकृति**–जब तक कि आहार्थी विनिमय पत्र के आदेश कापूर्ण अनुमोदन नहीं करता बल्कि उसे कुछ शर्तों या मर्यादाओं के साथ स्वीकृत करता है तो उसे मर्यादित स्वीकृति कहते है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

धारा 86 के अनुसार निम्न प्रकार से स्वीकृति मर्यादित होती है।

**(A) शर्तयुक्त स्वीकृति**–ऐसी स्वीकृति जो भुगतान को किसी लिखित घटना के घटित होने पर निर्भर कर देती है, शर्त युक्त स्वीकृति कहलाती है।

**(B) आंशिक स्वीकृति**–ऐसी स्वीकृति जो कि विनिमय पत्र में लिखित धन के किसी भाग का भुगतान करने के लिए की जाती है, आंशिक स्वीकृति कहलाती है।

**(C) स्थानीय स्वीकृति**– ऐसी स्वीकृति जो कि भुगतान के लिये कोई निर्दिष्ट स्थान निश्चित करती है, स्थानीय स्वीकृति कहलाती है।

**(D) समय से मर्यादित स्वीकृति**–जब किसी विनिमय पत्र के एक से अधिक आहार्थी हों और वे आपस में देनदार न हों तो उनमें से कुछ के द्वारा ही स्वीकृति भी मर्यादित स्वीकृति होती है।

**प्रभाव–**

विनिमय पत्र का धारक मर्यादित स्वीकृति को लेने से इनकार कर सकता है अथवार उसे स्वीकार कर सकता है। यदि वह उसे लेने से इन्कार कर देता है, तो वह विनिमय पत्र को अस्वीकृति द्वारा अनादरित हुआ समझ सकता है और उसके लिए आहर्ता पर वाद प्रस्तुत कर सकता है, परन्तु यदि वह मर्यादित स्वीकृति को स्वीकार कर लेता है तो उससे वह एवं स्वीकर्ता बाध्य हो जाते हैं लेकिन अन्य पक्षकार जिन्होनें उसके लिये सहमति नहीं दी है उससे बाध्य नहीं होते।

**क्षमा योग्य कब?**

जब एक आहार्थी का कल्पित व्यक्ति होना,

आहार्थी अनुबन्ध होने के योग्य न हो,

जब आहार्थी का पता न लग सका हो,

जब प्रस्तुतिकरण अनियमित हो,

जब आहार्थी की मृत्यु हो गयी हो। **(धारा 75)**

**प्रतिष्ठा के लिये स्वीकृत**

प्रतिष्ठा के लिये स्वीकृति उन दशाओं में की जाती है, जबकि मूल देनदार के

द्वारा विलेख को अस्वीकृत कर दिया जाता है। अथवा नोटेरी पब्लिक अच्छी जमाता माँगता, पर ऐसी जमानत देने से मना कर दिया जाता है। प्रतिष्ठा के लिये कोई भी अन्य पक्षकार या व्यक्ति, जिस पर विले,ा से सम्बन्धित कोई दायित्व विधमान नहीं है, धारक की सहमति से विलेख के भुगतान के लिये उतरदायी किसी भी पक्षकार या व्यक्ति की प्रतिष्ठा को बचाने के लिए या उसकी रक्षा करने के लिये स्वीकृति दे सकता है। ऐसी स्वीकृति एक अजनबी व्यक्ति या पक्षकार भी दे सकता है। यघपि घारक प्रतिष्ठा के लिये स्वीकृति को मानने के लिए बाध्य नहीं है।

ऐसी स्वीकृति के लिये आवश्यक तथ्य इस प्रकार है–

1. जब विलेख की नोटिंग या प्रोटेस्टिंग की गई हो,
2. धारक की सहमति के द्वारा की जाती चाहिए
3. ऐसी स्वीकृति प्रतिष्ठा के लिये दी जानी चाहिए।
4. विलेख लिखित रूप में दी जाए
5. सम्पूर्ण राशि के सम्बन्ध में हों

**प्रतिष्ठा के लिये स्वीकृति के अधिकार एवं दायित्व**–जब विलेख से सम्बन्धित धनराशि का नियमानुसार भुगतान नहीं किया जाता है तो ऐसी दशा में जिस पक्ष की प्रतिष्ठा के लिए स्वीकृति दी गई है उसके बाद के आने वाले सभी पक्षों के प्रति ''प्रतिष्ठा के लिए स्वीकर्ता '' उतरदायी होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**प्रतिष्ठा के लिये स्वीकर्ता**–उसका दायित्व शर्त युक्त होता है। प्रतिष्ठा के लिये स्वीकत्र्र को उतरदायी ठहराने के लिये निम्नलिखित शर्तों को पूरा करना आवश्यक है–

**(1). विलेख की परिपक्वता पर भुगतान के लिये देनदार को प्रस्तुत किया जाना चाहिये।**

(2.) अनादरण की दशा में गैर–अदायगी हेतु उसकी निकराई तथा सिकराई की जानी आवश्यक है।

(3) परिपक्वता के दूसरे दिन विलेख को ''प्रतिष्ठा के लिए स्वीकर्ता '' के पास प्रस्तुत किया जाना चाहिये।

**भुगतान के लिये प्रस्तुति**

**1. भुगतान के लिए प्रस्तुति**

विनिमय साध्य विलेख अधिनियम के अन्तर्गत विभिन्न धाराओं के अन्तर्गत अनेक प्रावधान किये गये है। जो इस प्रकार है–

–सभी प्रतिज्ञा–पत्र, विनिमय पत्र तथा चैक भुगतान के लिये धारक द्वारा अथवा उसकी ओर से क्रमशः उसके लेखक, स्वीकर्ता अथवा आहार्थी के समक्ष प्रस्तुत किये जाने चाहिये। ऐसी प्रस्तुति में त्रुटि होने पर विलेख के अन्य पक्षकार ऐसे धारक के प्रति उतरदायी नही रहेते हैं। ऐसी प्रस्तुति लेखक, व्यक्तियों में से किसी की मृत्यु होने पर, उसके वैधानिक उतराधिकारी को तथा किसी पक्षकार के दिवालिया घोषित होने पर उसके राजकीय प्रापक को की जा सकती है। **(धारा 64)**

–जब कोई प्रतिज्ञा–पत्र किश्तों में देय हो, तो यह प्रत्येक किश्त के भुगतान की निश्चित तिथि बाद तीसरे दिन भुगतान के लिये प्रस्तुत किया जाना चाहिये ऐसी प्रस्तुति पर भुगतान न होने पर, वही प्रभाव होगा जो कि किसी प्रतिज्ञा–पत्र की परिपक्वता पर भुगतान नहीं हाने का होता है। **(धारा 67)**

–जब कोई विनिमय साध्य विलेख माँग पर देय होता हो तो उसे धारक द्वारा प्राप्त करने के बाद उचित समय के भीतर भुगतान के लिये प्रस्तुत करना चाहिये। **(धारा 74)**

**2. चैक की प्रस्तुति**

चैक के आहार्ता को दायी बनाने के लिये यह आवश्यक है कि चैक बैंक में उसके आहत्र्र तथा बैंकर के परस्पर सम्बन्ध में, किसी ऐसे परिवर्तन के होने से पहले भुगतान के लिये प्रस्तुत करना चाहिये जो कि आहर्ता की हानि के लिये हो। यदि धारक चैक को और बैंक का सम्बन्ध इस प्रकार परिवर्तित हो जाता है कि इसके आहर्ता को हानि होती है तो आहर्ता उतरदायी नहीं होगा, यदि बैंक उस चैक का भुगतान नहीं कर पाता। **(धारा 72)**

**3. डाक द्वारा प्रस्तुति**–यदि ठहराव के द्वारा ऐसा अधिकार प्रदान किया गया हो अथवा रीति–रिवाज द्वारा ऐसा किया जा सकता हो तो स्वीकृति के लिए प्रस्तुति डाक द्वारा की जा सकती है, परन्तु वह एक पंजीकृत पत्र द्वारा की जानी चाहिये। **(धारा 64)**

**4...प्रस्तुति के घण्टे**–सामान्यतः भुगतान के लिये प्रस्तुति कारोबार के कार्य करने वाले घण्टों या समय के भीतर ही की जाती है। अतः भुगतान के लिये प्रस्तुति कारोबार के घण्टों में ही की जानी चाहिये और यदि प्रस्तुति किसी बैंक को की जानी है तो वह बैंक में लेन–देन के समय में ही की जानी चाहिये। **(धारा 65)**

**5. प्रस्तुति का स्थान**–प्रस्तुति के स्थान के सम्बन्ध में विनिमय साध्य विलेख अधिनियम में निम्न प्रावधान किये गये है–

1. जब कोई प्रतिज्ञा–पत्र, विनिमय पत्र और चैक किसी निर्दिष्ट स्थान पर देय होने के लिये लिखा, आहरित अथवा स्वीकार किया गया हो तो उनके किसी भी पक्षकार को दायी ठहराने के लिये वह भुगतान के लिये उसी स्थान पर प्रस्तुत किया जाना चाहिए। **(धारा 68)**

2. जब कोई प्रतिज्ञा–पत्र अथवा विनिमय पत्र किसी निर्दिष्ट स्थान पर देय होने के लिये लिखा, आहरित अथवा स्वीकृत किया गया हो तो उनके लेखक अथवा आहत्र्र को दायी ठहराने के लिये वह भुगतान के लिये उसी स्थान पर प्रस्तुत किया जाना चाहिए। **(धारा 69)**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. जब किसी प्रतिज्ञा–पत्र या विनिमय पत्र के भुगतान के लिये विशेष स्थान निर्दिष्ट न किया गया हो तो उन्हें उसके लेखक आहार्थी अथवा स्वीकर्ता की जैसी भी परिस्थिति हो, कारोबार के स्थान पर अथवा उनके निवास स्थान पर भुगतान करने के लिये प्रस्तुत किया जाना चाहिये। **(धारा 70)**

4. यदि विनिमय साध्य विलेख के लेखक आहार्थी अथवा स्वीकर्ता का कारोबार कोई स्थान अथवा कोई निश्चित निवास नहीं है और भुगतान में विलेख की प्रस्तुति के लिये कोई स्थान निश्चित नहीं है तो प्रस्तुति, जहाँ कहीं भी वह मिले उसे व्यक्तिगत रूप में की जा सकती है। **(धारा 71)**

**6. भुगतान में देरी होने के लिये क्षमा**–भुगतान के लिये प्रस्तुति करने में देरी हो जाने के लिये क्षमा किया जा सकता है, यदि देरी किन्हीं ऐसे कारणों से हुई है जो कि धारक के अधिकार के बाहर थे तथा उसके स्वयं के दोष, दुराचरण अथवा उपस्थिति केकारण नहीं। देरी के ऐसे कारण के रहने पर प्रस्तुति उचित समय के भीतर की जानी चाहिए। **(धारा 75)**

**भुगतान के लिये प्रस्तुति**

1. यदि लेखक आहार्थी अथवा स्वीकर्ता इसी आशय से विलेख की प्रस्तुति को रोकता है अर्थात ऐसा कोई कार्य करता है जिससे ऐसी प्रस्तुति न हो सके, जैसे विलेख से धारक से लेता है और परिपक्वता के पश्चात तक अपने पास रखता है।
2. यदि विलेख आहार्थी अथवा स्वीकर्ता के कारोबार के स्थान पर देय हो और वह ऐसे स्थान को कारोबार के दिन एवं कारोबार के साधारण समय में बन्द रखता है।
3. यदि विलेख किसी निर्दिष्ट स्थान पर देय हो और विलेख का लेखक आहार्थी अथवा स्वीकर्ता अथवा उनका एजेन्ट उक्त स्थान पर कारोबार में साधारण समय में उपस्थित न हो।
4. यदि विलेख किसी निर्दिष्ट स्थान पर देय न हो और उचित खोजबीन के पश्चात भी लेखक, आहार्थी अथवा स्वीकर्ता का पता न लगे।
5. यदि प्रस्तुति माँगने का अधिकारी पक्ष प्रस्तुति न होने पर भी भुगतान देने के लिये सहमत हो जाता है।
6. यदि प्रस्तुति न कर देने से आहत्र को कोई क्षति न पहुँचती हो तो कोई भी धारक बिना प्रस्तुति के ही आहर्ता को उतरदायी ठहरा सकता है।
7. जब अस्वीकृति के कारण विनिमय पत्र अस्वीकृत हो गया हो।
8. जब आहार्थी और अदाता दोनों एक ही व्यक्ति हों।
9. जब आहार्थी एक काल्पनिक व्यक्ति थें।
10. जब एक आहार्थी अनुबन्ध करने के अयोग्य हो।

**भुगतान के लिए प्रस्तुत विनिमय पत्र की लापरवाही पर बैंक का दायित्व**

जब किसी विशेष बैंक को देय विनिमय पत्र स्वीकार किया गया है और उस बैंक के पास भुगतान के लिये उचित रूप से प्रस्तुत किया गया है तो विपत्र के सम्बन्ध में बैंक का दायित्व एक विक्षेपग्रहीता के रूप में होता है। यदि बैंक उस विपत्र को आहरित कर देता है, तो ऐसी दशा में बैंक का यह कर्तव्य है कि वह विपत्र को सुरक्षित रखें और धारक को वापस कर दें। **(धारा 77)**

**प्रतिष्ठा के लिये भुगतान**

जब किसी स्वीकृत विनिमय पत्र का भुगतान नहीं होता है जिसके परिणामस्वरूप विनिमय पत्र का अनादरण हो जाता है तथा ऐसे अनादरण की नोटिंग तथा प्रोटेस्टिंग करा ली जाती है तो ऐसी दशा में कोई भी पक्षकार किसी ऐसे पक्षकार की प्रतिष्ठा के लिये, जो भुगतान करने के लिए उतरदायी है, उसका भुगतान कर सकता है।

**नियम**

1. अनादरण भुगतान न होने के परिणामस्वरूप हुआ हो।
2. भुगतान नहीं होने की दशा में विलेख की निमराई तथा सिकराई की गई हो।
3. भुगतन करने वाले व्यक्ति द्वारा लेखा प्रमाणन करने वाले के समक्ष घोषणा की गई हो।
4. लेखा प्रमाणक द्वारा घोषणा रजिस्टर में दर्ज करना।
5. भुगतान विलेख के उतरदायी पक्ष के प्रतिष्टा के लिये ही किया गया हो।
6. ऐसा भुगतान किसी भी व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रतिष्ठा के लिये भुगतान करने वाले व्यक्ति को सभी अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जो अधिकार भुगतान के समय विलेख के धारक को प्राप्त थे तथा वह उस पक्षकार से जिसकी प्रतिष्ठा के लिए भुगतान किया गया है, भुगतान की गई राशि उस पर ब्याज तथा भुगतान से सम्बन्धित व्ययों को प्राप्त करने का अधिकारी है। इस प्रकार से प्रतिवर्ष स्वीकर्ता को वे सभी अयोग्यताएँ भी प्राप्त होती हैं जो विलेख के धारक की होती हैं।

**प्रश्नः–**

1. **प्रस्तुतिकरण से क्या तात्पर्य है?**
2. **प्रतिष्ठा के लिए भुगतान किसे कहते हे?**
3. **प्रस्तुति कब अनावश्यक है, समझाइए।**
4. **क्या विनिमय साध्य विलेख का प्रस्तुतिकरण सभी परिस्थितियों में आवश्यक है?**

## चैकों का रेखांकन
## (Crossing of Cheque)

**सामान्यतः चैक दो प्रकार के होते है–**

**(A) खुला चैक**

**(B) रेखांकित चैक**

**(A) खुला चैक** ऐसे चैक को वाहक चैक भी कहते है। सामान्यतः ऐसे चैक का भुगतान वाहक को देय होता है। इस प्रकार के चैक का भुगतान उसी व्यक्ति को प्राप्त होता है जो उसे सम्बन्धित बैंक में प्रस्तुत करता हैं। ऐसे चैक के भुगतान में जोखिम होता है क्योंकि इसके खो जाने पर या अन्य किसी कारण से चैक अन्य को प्राप्त हो जाए तो वह उसका भुगतान प्राप्त कर सकता है। अतः ऐसे चैक के खो जाने पर तुरन्त सम्बन्धित बैंक को इसकी सूचना दी जानी आवश्यक है जिसेसे बैक उसके भुगतान को रोक सकें।

**(B) रेखांकित चैक** जब किसी चैक के मुख पर बायीं ओर दो टेडी समान्तर रेखायें खींच दी जाती है। तो उसे चैक का रेखांकन कहते है। इन रेखाओं के बीच में कभी–कभी कुछ विचित्र शब्द लिख दिये जाते हैं कभी–कभी केवल रेखाएँ खीच दी जाती है। ऐसे चैक का भुगतान किसी बैक या किसी व्यक्ति विशेष को ही मिल सकता है। जैसे–

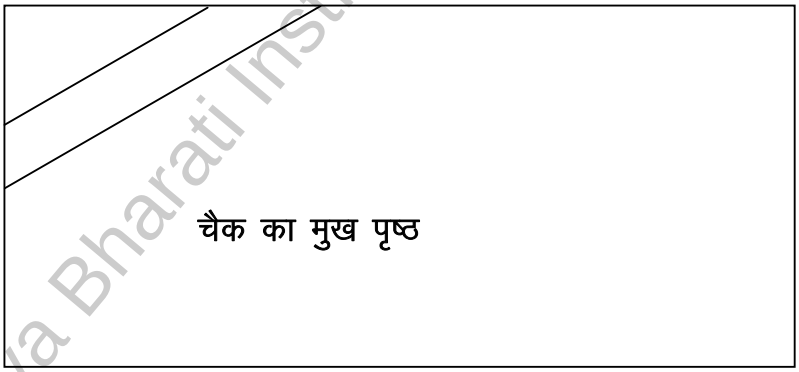


**चैक रेखांकन के उददेश्य–**

चैक को रेखांकित करने के निम्नलिखित उददेश्य है।

1. चैक के भुगतान को सुरक्षित बनाना।
2. ऐसे चैक का भुगतान किसी विशेष बैंक या विशेष व्यक्ति के खाते में ही जमा होता हे।
3. बैक काउण्टर पर नगद भुगतान प्राप्त न होना सुरक्षा का एक विशेष ढंग है।
4. काउण्टर पर भुगतान करने पर सम्पूर्ण जोखिम बैंक ही होती है त्रुटि की दशा में पुनः भुगतान करना होगा।
5. रेखांकित चैक चोरी हो जाने पर कोई हानि या क्षति नहीं होती है।
6. रेखांकित चैक के खो जाने पर भी कोई जोखिम नहीं होती है अर्थात हानि नहीं है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. चैक भुगतान के लिये प्रस्तुत करने पर प्रस्तुतकर्ता के खाते में ही जमा होा है।
8. सामान्य व्यक्ति एवं व्यापारी वर्ग को जोखिमों के विरूद्ध महत्वपूर्ण सुरक्षा कवच की प्राप्ति होती है।
9. आज का भुगतान रेखांकित चैक के माध्यम से ही सामान्यतः किया जाता है जिससे व्यापार सुरक्षा प्राप्त होती है।

**रेखांकन के प्रकार**

**(A) साधारण एवं सामान्य लेखांकन**
**(B) विशेष रेखांकन**
**(C) प्रतिबन्धित रेखांकन**
**(D) अपरक्राम्य रेखांकन**

**;।द्ध साधारण एवं सामान्य लेखांकन**

विनिमय साध्य विलेख की धारा 123 के अनुसार, सामान्य रेखांकन का तात्पर्य, किसी चैक के मुख पर बायीं ओर दो समान्तर तिरछी रेखायें खींचकर उनके बीच के स्थान को खाली भी छोड़ा जा सकता है या उन रेखाओं के बीच वाले स्थान पर कुछ विशेष शब्द लिख दिया जाता है। जैसे–

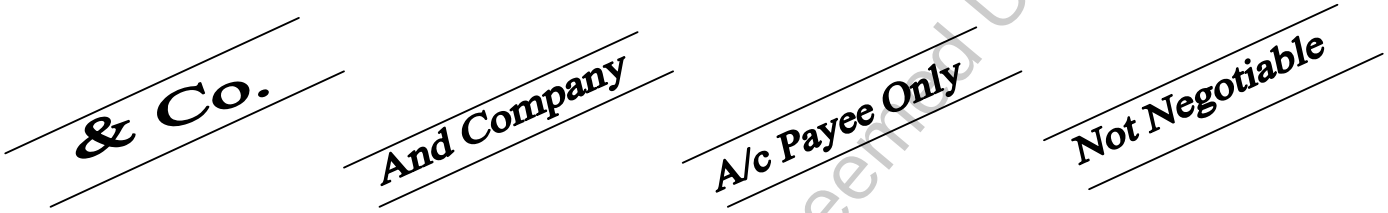


**(B)** विशेष रेखांकन

**प्रश्नः–**

1. चैक का रेखांकन क्यों किया जाता है?
2. चैक के रेखांकन के प्रकार बताइए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

# पक्षकारो की दायित्व से मुक्ति

(Discharge of party from liability)

**1. विलोपन द्वारा मुक्ति–** जब किसी विलेख का धारक विलेख पर स्वीकर्ता या किसी पष्ठांकक का नाम उसे मुक्त करने के इरादे से या दृष्टि से करने के इदादे से या दृषटि से विलोपित कर देता है या काट देता है तो ऐसी दशा में वह धारक के प्रति अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है तथा धारक के अधीन अधिकार रखने वाले पक्षकारों के प्रति भी वह अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है । **(धारा 82())**

**2. छुटकारे द्वारा मुक्ति–** जब किसी विलेख का धारक विलोपन (निरस्तीकरण) के अलावा अन्य किसी विधि से उसके लेखक स्वीकर्ता या पष्ठांकानकर्ता को दायित्व से मुक्त कर देता है तो, इस प्रकार मुक्त पक्षकार को धारक तथा दायित्व से मुक्ति प्राप्त हो जाती है **(धारा 82(इ))**

**3. भुगतान द्वारा–** जब परिपक्वता तिथि पर वितिमय साध्य विलेख का भुगतान कर दिया जाता है तो विलेख के पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त हो जाते है । **(धारा 82(ब))**

**4. स्वीकति हेतु प्रस्तुत करना–**जब किसी विनिमय साध्य विलेख को धारा 41 के अधीन स्वीकति के लिए प्रस्तुत नही किया गया है तो ऐसे धारक के प्रति विलेख से सम्बन्धित पक्षकार उतरदायी नही होगे।**(धारा 61)**

**5. भुगतान के लिए प्रस्तुत न करने पर–** जब धारक उचित समय के भीतर विलेख को भुगतान के लिए प्रस्तुत नही करता है और ऐसी प्रस्तुति नियमानुसार क्षमायोग्य नही है तो विलेख के अन्य पक्षकार धारक के प्रति उतरदायी नही होंगे **(धारा 64)**

**6. आहर्ता को स्वीकति के लिए 48 घण्टे से अधिक समय देने पर–** विनिमय साध्य विलेख अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत बताया गया है कि यदि किसी विलेख का धारक उसके आहार्थी देनदार को स्वीकति के लिए 48 घण्टे से अधिक समय देता है तो ऐसी दशा में ऐसे सभी पक्षकार जो ऐसी छूट से सहमत नही है धारक के प्रति अपने दायित्व से मुक्त हो जाते है । **(धारा 83)**

**7. चैक को उचित समय पर प्रस्तुत न करने पर –** जब चैक का धारक बैंक और आहर्ता के बीच के सम्बन्धो में आहर्ता के हित के विरूद्ध परिवर्तन होने से पूर्व चैक को भुगतान के लिए प्रस्तुत नही करता है तो ऐसी दशा में उक्त विलम्ब के आहर्ता ऐसे धारक के प्रति अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है । **(धारा 84)**

**8. मर्यादित स्वीकृति को मान लेने पर–**जब किसी विनिमय–पत्र का धारक मर्यादित स्वीकति को मान लेता है, तो ऐसी दशा में वे सभी पक्षकार जो ऐसी स्वीकृति को मानने के लिए तैयार नही है, तो ऐसे धारक और धारक के अधीन अधिकार पाने वाले सभी पक्षकार दायित्व मुक्त हो जाते हैं । **(धारा 86)**

**9. अनादरण की सूचना न देने पर –**जब किसी विलेख का धारक इसके अनादरण की सूचना सभी पूर्ण पक्षकारों को नही देता है तो ऐसी दशा में वे सभी पक्षकार ऐसे धारक के प्रति अपने दायित्व से मुक्त हो जाते है । **(धारा 93)**

**10 कानून के लागू होने पर –** जब किसी विनिमय साध्य विलेख पर सम्बन्धित देश का राजनियम लागू हो जाता है तो पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त हो जाते है । जैसे पक्षकार की मृत्यु या दिवालिया हो जाना ।

**11 स्वीकृर्ता के अधिकार में विनिमय–**पत्र आने पर–जब कोई विनिमय–पत्र परिपक्वता पर या उसके बाद स्वीकृर्ता के पास उसके अपने अधिकार में आ गया है तो उस विपत्र पर सभी पक्षकारों के दायित्व समाप्त हो जाते हैं । **(धारा 90)**

**12 आदेश पर देय चैक का भुगतान न होने पर–** जब चैक आदेश पर देय है तथा चैक प्राप्त करने वाले पक्षकार द्वारा या उसकी ओर से पृष्ठांकित कर दिया गया है तथा आहार्थी (बैंक) ने व्यवसाय की सामान्य प्रगति के अन्तर्गत उस चैक का भुगतान कर दिया है तो वह (आहार्थी) अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है।**(धारा 85 (1) )**

**13 बैंक ड्राफ्ट के सम्बन्ध में–** जब एक बैंक द्वारा अपनी दूसरी शाखा पर मांग पर आदेशानुसार धनराशि के भुगतान के लिए किसी व्यक्ति कों बैंक ड्राफ्ट दिया जाता है, और प्राप्तकर्ता या उसकी ओर से बैंक ड्राफ्ट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पृष्ठांकित होने पर यदि बैंक ने व्यवसाय की सामान्य प्रगति में उसका भुगतान कर दिया है तो ऐसी दशा में वह दायित्व से मुक्त हो जाता हैं । **(धारा 85 ())**

**14 महत्वपूर्ण परिवर्तन करने पर –** जब विनिमय साध्य विलेख में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया जाता है तो परिवर्तन के समय विलेख पर उतरदायी ऐसे सभी पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त हो जाते है जिनकी सहमति के बिना ऐसे परिवर्तन किये गये है **(धारा 87)**

**15 परिवर्तित विलेख के भुगतान द्वारा–** जब परिवर्तित विलेख को देखने से यह पता नही चलता है कि उसमें किसी तरह का मूलभूत परिवर्तन किया गया है तो ऐसे विलेख का भुगतान कर देने पर पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त हो जाते है । **(धारा 89)**

**महत्वपूर्ण परिवर्तन**

महत्वूपर्ण परिवर्तन ऐसे परिवर्तन है जिनमे किसी विलेख के अंश या उसके पक्षकारों के दायित्व में परिवर्तन कर दिया जाता है म ऐसे परिवर्तन होने से विलेख का वैधानिक रूप ही बदल जाता है एवं उसके व्यापारिक एवं वैधानिक प्रभाव में अन्तर आ जाता है । महत्वपूर्ण परिवर्तन में निम्नलिखित परिवर्तनों को शामिल किया जाता है–

(1) भुगतान के स्थान में परिवर्तन

(2) विलेख की तिथि में परिवर्तन

(3) विलेख के भुगतान के समय में परिवर्तन

(4) विलेख की देय राशि में परिवर्तन

(5) ब्याज की दर में परिवर्तन

(6) विनिमय दर में परिवर्तन

(7) भुगतान के माध्यम में परिवर्तन

(8) पक्षकारों में परिवर्तन

कुछ परिवर्तन ऐसे होते है जिन्हे महत्वपूर्ण नहीं माना जाता है ऐसे परिवर्तन निम्नलिखित हो सकते है–

(1) पक्षकारों की सहमति से किया गया परिवर्तन

(2) विलेख निर्गमित करने सें पूर्ण किया गया परिवर्तन

(3) किसी त्रुटि को सुधारने हेतु किया गया परिवर्तन

(4) पक्षकारों की सामान्य इच्छा की पूर्ति के लिए किया गया परिवर्तन

(5) किसी अपूर्ण विलेख को पूरा करने के लिए किया गया परिवर्तन (धारा 20)

(6) रिक्त पृष्ठांकन को पूर्ण पृष्ठांकन में परिवर्तित करना (धारा 49)

(7) किसी स्वीकृति को मर्यादित करना (धारा 86)

(8) चैकों को रेंखाकित करना (धारा 125)

(9) वाहक चैक आदेशित चैक में परिवर्तित करना

**महत्वपूर्ण परिवर्तन का प्रभाव**

विलेख महत्वपूर्ण परिवर्तन होने पर केवल वे पक्षकार ही दायित्व मुक्त होते है जो परिवर्तन से पूर्ण पक्षकार थे। जो परिवर्तन विलेख को स्वीकार करते है वे दायित्व मुक्त नही होते है। **(धारा 88)**

परिवर्तित विलेख का भुगतान– जब विलेख में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये जाते है और ऐसे परिवर्तन दिखाई नही देने के परिणामस्वरूप विलेख का भुगतान हो जाता है तो सामान्य प्रगति में भुगतान करने वाला पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त हो जाता है । **(धारा 89)**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विनिमय पत्र स्वीकत्र्र से पास लौटना– जब कोई विनिमय–पत्र जिसका परक्रामण हो चुका है, परिपक्वता तिथि पर या उसके पश्चात स्वीकार करने वाले पक्षकार के पास पहुॅच जाए तो उस विलेख से सम्बन्धित सारे अधिकार समाप्त हो जाते है । **(धारा 90)**

**प्रश्न–**

**(1) विलेख के पक्षकार की दायित्व मुक्ति से क्या आशय है**

**(2) भुगतान द्वारा मुक्ति से आप क्या समझते हैं**

**(3) मूलभूत परिवर्तन से क्या तात्पर्य हैं**

**(4) विनिमय साध्य विलेख के प्रभावही परिवर्तनों को स्पष्ट कीजिए**

# विनिमय साध्य विलेख का अनादरण

## (Dishonour of Negotiable Instrument)

अनादरण से आशय विनिमय साध्य विलेखो के भुगतान न होने से है । अर्थात जब किसी विनिमय साध्य या स्वीकृति के लिए विलेख को भुगतान के लिए प्रस्तुत किया जाता है और इसका भुगतान एवं स्वीकृति नही की जाती है या भुगतान करने से इन्कार कर दिया जाता है तो इसे विनिमय साध्य विलेखों का अनादरण कहते है । यदि विलेख अनादरित होता है तो इसके धारक का यह कर्तव्य बनता है कि वह इसके लेखक (आहर्ता) एवं सभी सम्बन्धित पक्षकारों को अनादरण की सूचना दें ताकि उन्हे उतरदायी ठहराया जा सकें । यदि धारक ऐसा नही करता है तो शेष पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त हो जाते है ।

**:: अनादरण या अप्रतिष्ठित होने की स्थितियां ::**

विनिमय साध्य विलेख अधिनियम के अनुसार किसी भी विनिमय साध्य विलेख का अनादरण निम्न प्रकार से हो सकता है–

अस्वीकृति द्वारा अनादरण

भुगतान ने करने पर

### अस्वीकृति द्वारा अनादरण

अस्वीकृति द्वारा अनादरण केवल विनिमय–पत्र का ही हो सकता है क्योंकि विनिमय–पत्र ही एक ऐसा विलेख है जिसके लिए स्वीकृति की आवश्यकता होती है । प्रतिज्ञा–पत्र एवं चैक के लिए स्वीकृति आवश्यक नहीं होती है । एक विनिमय–पत्र निम्नलिखित दशाओं में अस्वीकृति द्वारा अनादरित माना जाता है –

**(1) देनदार का काल्पनिक होना–** जब देनदार एक काल्पनिक व्यक्ति होता है या पर्याप्त खोजे के बाद भी उसका पता नही चलता है तो विनिमय द्वारा अस्वीकृति द्वारा अनादृत माना जाता है ।

**(2) समय सीमा–** जब देनदार विनिमय पत्र प्रस्तुत करने के 48 घण्टे के भीतर उसे स्वीकार नहीं करता है तो ऐसी दशा में विनिमय–पत्र अस्वीकृत माना जाता है ।

**(3) शर्तयुक्त स्वीकृति–**जब स्वीकर्ता विनिमय–पत्र पर अपनी स्वीकृति किसी शर्त के साथ देता है तो विनिमय–पत्र अनादरित माना जाता है ।

**(4) देनदार अनुबन्ध करने योग्य न हो–** भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 1 के अनुसार यदि देनदार अनुबन्ध करने की योग्यता नही रखना है तो विपत्र अनादरित हो जाता है ।

**(5) देनदार की मृत्यु होने पर–** जब विनिमय–पत्र के देनदार की मुत्यु हो जाती है तो विनिमय–पत्र अनादरित माना जाता है ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**(6) देनदार का दिवालिया होना–** जब विनिमय–पत्र का देनदार दिवालिया घोषित कर दिया जाता है तो विपत्र अनादरित हुआ माना जाता है ।

**(7) प्रस्तुतिकरण हेतु क्षमा–** जब विनिमय के लिए प्रस्तुतिकरण को माफ कर दिया गया है तो विपत्र अनादृत माना जाता है ।

**(8) त्रुटि करना–** जब किसी विनिमय साध्य विलेख के या विनिमय–पत्र के एक या एक से अधिक देनदार जो साझेदार नही है विनिमय–पत्र की स्वीकृति प्रदान में त्रुटि करता है या करते है। **(धारा 91)**

## भुगतान न करने पर अनादरण

विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 92 के अनुसार निम्न दशाओं में भुगतान नही के परिणामस्वरूप या कारण से अनादरण हुआ माना जाता है–

(1) जब प्रतिज्ञा–पत्र का लेखक, विनिमय–पत्र का स्वीकर्ता या चैक का आहार्थी भुगतान की यथाविधि या उचित तरीके से मॉग किये जाने के बाद भी देय धनराशि का भुगतान करने में असफल रहता है अथवा किसी भी प्रकार की त्रुटि करता है।

(2) जब विलेख का भुगतान प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत किया जाना आवश्यक रहा हो या उचित समय पर भुगतान हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया हो और विलेख की परिपक्वता पर या उसके पश्चात या बाद में अहत रहा हो ।

यदि विलेख को देनदार के समक्ष स्वीकृति हेतु प्रस्तुत करना क्षमा या माफ कर दिया गया हो, तथा विलेख के भुगतान की तिथि समाप्त हो गयी हो और इसका भुगतान न हुआ हो तो ऐसी दशा में भी विलेख का अनादरण हो जाता है ।

### आवश्यकता की दशा में आहार्थी द्वारा अनादरण

विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 115 के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि जब किसी विनिमय–पत्र पर अथवा पृष्ठांकन पर आवश्यकता की दशा में आहार्थी का नाम लिखा हुआ हो तो ऐसा विनिमय–पत्र तब तक अनादरित हुआ नही माना जायेगा जब तक कि ऐसा आहार्थी उसे अनादरित घोषित न कर दें ।

### स्वीकृति द्वारा अनादरण तथा भुगतान न करने के अनादरण में अन्तर

**1** उपरोक्त दोनो ही दशाओं में धारक आहर्ता तथा समस्त पूर्व धारकों को दायी ठहरा सकते हैं यदि उन्हे अनादरण की सूचना दे दी हैं ।

**2** जबकी अस्वीकृति द्वारा अनादरण की दशा में आहार्थी के विरूद्ध धारक का कोई अधिकार नहीं हैं क्योंकि ऐसी दशा में आहार्थी विनिमय–पत्र का कोई पक्षकार नही होता है । धारक केवल आहर्ता एवं समस्त पूर्व धारकों के विरूद्ध अधिकार रखता है ।

**3** भुगतान न करने पर अनादरण की दशा में धारक आहार्थी के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है क्योंकि स्वीकृति द्वारा वह विनिमय–पत्र का पक्षकार हो जाता हैं ।

### अनादरण का प्रभाव

जब कोई विनिमय पत्र अस्वीकृति द्वारा या भुगतान न होने के कारण, अनादरित हो जाता है, तो ऐसी दशा में इसके लेखक तथा अन्य पृष्ठांकन धारक द्वारा उचित समय के अन्तर्गत उसकी सूचना देने पर धारक के प्रति उतरदायी होते हैं, लेकिन देनदार को धारक केवल भुगतान न होने पर ही दायी बना सकता हैं ।

### अनादरण की सूचना

सूचना किसके द्वारा–जब कोई विनिमय साध्य विलेख अस्वीकृति द्वारा या भुगतान न करने पर अनादरित हो जाता है तो उसके धारक का यह कर्तव्य है कि कि वह उन सभी पक्षकारों को जिन्हे वह दायी कहलाना चाहता है, यह सूचना दें कि विलेख अस्वीकृत कर दिया गया है इसी सूचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनादरित

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रतिज्ञा–पत्र के लेखक, अथवा अनादरित विनिमय–पत्र या चैक के आहार्थी अथवा स्वीकर्त्र को ऐसी कोई सूचना देने की आवश्यकता नहीं है । (धारा 93)

**अनादरण की सूचना कौन दे?** –अनादरण की सूचना प्राप्त करने वाले किसी भी पक्षकार का पूर्व पक्षकारो को अपने प्रति दायी ठहराने के लिए यह कर्तव्य है कि उन्हें उचित समय के भीतर अनादरण की सूचना दे । **(धारा 93)**

**उदाहरण** – प्रवीण, निखिल पर 25,000 रूपये का एक विनिमय–पत्र आहरित करता है, प्रवीण उसे तनिष्क को पृष्ठांकित कर देता है, तनिष्क, मोहित को तथा मोहित, विक्रम को, विक्रम विनिमय–पत्र को स्वीकृति के लिए निखिल के समक्ष प्रस्तुत करता है और निखिल उसे स्वीकार करने से इन्कार कर देता है, विक्रम को चाहिए कि वह प्रवीण, तनिष्क और मोहित को अनादरण की सूचना दे ।

यदि वह उन सभी को दायी ठहराना चाहता है, यदि वह केवल मोहित को दायी ठहराना चाहता है तो उसे केवल मोहित को सूचित करना चाहिये, अनादरण की सूचना देना इतना आवश्यक है कि इसके न देने से लेखक और स्वीकृर्ता के अतिरिक्त सभी पक्षकार अपने दायित्व से मुक्त हो जाते है ।

यदि कोई विनिमय साध्य विलेख के धारक के एजेन्ट के द्वारा प्रस्तुत करने पर अनादरित हो जाता है तो ऐसी दशा में अनादरण की सूचना या तो धारक द्वारा या उसके एजेन्ट द्वारा प्रदान की जा सकती है । एजेन्ट द्वारा उचित समय के भीतर अनादरण से सम्बन्धित सूचना धारक का दी जानी चाहिए तथा धारक का यह कर्तव्य है कि वह इस सूचना को उचित समय के भीतर अपने पूर्व पक्षकारों को दे देवे, जिन्हे वह दायी बनाना चाहता है। **(धारा 96)**

### सूचना किसको दी जाए?

अनादरण की सूचना उन सभी पक्षकारों को दी जानी आवश्यक है जिन्हें धारक दायी बनाना चाहता है, लेकिन एक अनादरित प्रतिज्ञा–पत्र के लेखक या निर्माता विनिमय–पत्र के आहार्थी या स्वीकर्ता तथा चैक के देनदार बैंक को इस प्रकार की सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं होती है ।

अनादरण की सूचना जिन्हें दी जानी आवश्यक है उनमें अधिकृत एजेन्ट अथवा मृतक व्यक्ति के वैधानिक प्रतिनिधि को अथवा दिवालिया घोषित व्यक्ति के सरकारी प्रापक को दी जानी आवश्यक है।

जिस पक्षकार को सूचना भेजी गई है यदि उसकी मृत्यु हो चुकी है और सूचना भेजने वाले को इसकी जानकारी नहीं है तो ऐसी सूचना को पर्याप्त माना जाता है। (धारा 97)

यदि किसी अनादरित विलेख के एक से अधिक या सयुक्त आहर्ता या पृष्ठांकनकर्ता हैं, तो उनमें से किसी एक के पास सूचना देना ही पर्याप्त माना जाता है ।

### सूचना देने की विधि या ढंग

**1. लिखित या मौखित**– विनिमय साध्य विलेख के अनादरण की सूचना लिखित अथवा मौखिक हो सकती हैं। यदि लिखित स्वीकृति हो तो ऐसी दशा में स्वीकृति को पंजीकृत डाक से भेजा जा सकता हैं।

**2. विलेख के अनादरित होने के कारणो की सूचना** –अनादरण की सूचना में यह विशेष रूप से स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि विनिमय साध्य विलेख का अनादरण किन कारणो से हुआ है और वह अनादरण के लिए उतरदायी होगा। इनकी पर्याप्त सूचना उचित तरीके से दी जानी आवश्यक हैं।

**3. अधिकृत व्यक्ति को ही सूचना**–जिन पक्षकारों को सूचना दी जानी है उनके अन्तर्गत उसके अधिकृत एजेन्ट को, मृतक व्यक्ति के वैधानिक प्रतिनिधि को और दिवालिया व्यक्ति के राजकीय प्रापक को सूचना दी जानी आवश्यक है ।

**4. व्यापार से स्थान या निवास पर सूचना**–यह सूचना विनिमय साध्य विलेख के अनादरण के पश्चात उचित समय के भीतर सूचना पाने वाले पक्षकार के व्यापार या कारोबार करने के स्थान पर या उसके व्यापार या कारोबार करने या कोई निश्चित स्थान नहीं है तो उसके निवास स्थान पर ऐसी सूचना दी जा सकती हैं।

### सूचना के लिए उचित रूप

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उचित समय क्या हो इसके लिए विलेख की प्रकृति एवं प्रचलित प्रथा या रीति–रिवाज के अनुसार निर्धारित या निश्चित किया जा सकता है और ऐसे समय की गणना करते समय सार्वजनिक अवकाश को ध्यान में नही रखा जाता है । **(धारा 105)**

**पृथक–पृथक स्थानों पर व्यापार एवं निवास स्थान**

जब विलेख का धारक तथा जिसे अनादरण की सूचना देना आवश्यक है या देनी है, यदि दोनो ही अलग–अलग स्थानों पर व्यापार करते हैं या निवास स्थान अलग–अलग स्थानों पर है तो ऐसी दशा में उचित समय की सूचना तभी मानी जाती है जबकि उसे अनादरण के दिन की अगली डाक से उसी दिन या दूसरे दिन की डाक से भेज दी जाए ।

जब दोनों पक्षकार एक ही स्थान पर निवास करते हों अथवा व्यापार करते हों तो ऐसी दशा में उचित समय की सूचना तब मानी जाती हैं जबकि वह ऐसे समय के भीतर भेज दी जाए कि सूचना अनादरण की तिथि के बाद अगले दिन उसके गन्तव्य स्थान पर पहुॅच जाए। **(धारा 107)**

**अनादरण की सूचना देना कब अनावश्यक हैं?**

विनिमय साध्य विलेख अधिनियम की धारा 98 के अन्तर्गत उन दशाओं को स्पष्ट किया गया है जिनमें अनादरण की सूचना देना आवश्यक होता है जो निम्नलिखित है–

**1. अधिकार को त्याग दें–**सूचना प्राप्त करने वाला व्यक्ति या पक्षकार यदि ऐसे अधिकार का त्याग कर देता है या उसे छोड़ देता है।

**2. स्वयं आहर्ता पक्षकार हो–**जब आहर्ता ने स्वयं ही भुगतान को रोक दिया हो तो ऐसी दशा में उसे अनावरण की सूचना देना आवश्यक नहीं हैं।

**3. दावा करने वाले को हानि न हो–**ऐसे विनिमय साध्य विलेख के पक्षकार या व्यक्ति को जिसे दावा करना है उसे सूचना न मिलने की दशा में उसे किसी प्रकार की कोई हानि नही होती हो।

**4. खोजबीन के पश्चात भी न मिलना–**जब ऐसे पक्षकार को सूचना दी जानी है और वह उचित खोजबीन या तलाश के पश्चात भी नही मिल पाता है।

**5. सूचना देने का दायित्व–**जिस पक्षकार पर सूचना देने का वैधानिक दायित्व है और वह पक्ष ऐसी सूचना विशेष दशाओं या परिस्थितियों के कारण न दे पाया हो। जैसे धारक या उसके एजेण्ट की मृत्यु हो जाना, दुर्घटना, या जानलेवा बीमारी का हो जाना।

जब आहर्ताओं में से एक व्यक्ति या पक्षकार स्वयं स्वीकर्ता भी हो।

अपक्राम्य की दशा–जब कोई ऐसा प्रतिज्ञा–पत्र हो जो अपक्राम्य हो ।

भुगतान का शर्तहीन वचन–जिस व्यक्ति को सूचना मिलती है यदि वह अनादरण की बात जानते हुए भी भुगतान करने का शर्तहीन वचन देता है।

**प्रश्नः–**

**1.विनिमय साध्य विलेखो के अनादरण से क्या तात्पर्य है?**

**2.विनिमय साध्य विलेख किन परिस्थितियों में अनादरित हो जाता है?**

**3.विनिमय साध्य विलेख का अनादरित होने का क्या प्रभाव होता है?**

**4.अनादरण की सूचना देना कब आवश्यक है?**

## आलोकन तथा प्रमाणन

## (Noting and Protesting)

**आलोकन/निकराई/टिप्पण/नोटिंग**

**आलोकन का अर्थ**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सामान्य शब्दों में आलोकन का अर्थ होता है जब किसी प्रतिज्ञा–पत्र या विनिमय–पत्र स्वीकृत या भुगतान नहीं होने के कारण अनादरित हो जाए, तो नोटेरी पब्लिक के यहॉ आलोकन करा देना चाहिए जिससे भविष्य में उसे प्रस्तुत करने में सुविधा हो।

आलोकन का मुख्य उद्देश्य विलेख के अनादरित होने से तथ्य को प्रमाणित करवाना होता है। आलोकन अनादरित होने के पश्चात उचित समय के भीतर होना आवश्यक होता है। आलोकन के लिए निम्न बातें महत्वपूर्ण होती हैं–

1. अनादरण की तिथि,

2. अनादरण का कारण,

3. स्पष्ट अनादरण न होने की दशा में, उस कारण को स्पष्ट किया जाये जिस कारण से धारक उसे अनादरित मानता है,

4. लेखा प्रमाणक या शुल्क,

5. लेखा प्रमाणक के हस्ताक्षर, एवं

6. लेखा प्रमाणक के रजिस्टर की सन्दर्भ संख्या। **(धारा 99)**

इस प्रकार नोटरी पब्लिक या लेखा प्रमाणक से उचित समय सीमा के भीतर अनादरित विलेख का आलोकन या नोटिंग करवा लेना चाहिए, यघपि किसी अनादरित विलेख का आलोकन एवं प्रमाणन करवाया जाना अनिवार्य नहीं है। लेकिन विदेशी विलेखों का आलोकन एवं प्रमाणन करवाना उस स्थिति में अनिवार्य हो जबकि जहॉ पर उसे आहरित किया गया है वहॉ घोषित किया गया हो। आलोकन के पश्चात प्रमाणन करवाना चाहिये। एक विलेख पर भुगतान के लिए स्वीकृति प्राप्त करने के लिए मात्र अवलोकन ही पर्याप्त होता है।

### आलोकन से लाभ

- आलोकन से निम्नलिखित लाभ की प्राप्ति होती है–
  - o सरकार द्वारा विदेशी विलेखों एवं विनिमय–पत्र व प्रतिज्ञा–पत्रों के आलोकन हेतु नियमबद्ध आलोकन की सुविधा प्राप्त होती है।
- धारक को उचित कार्यवाही करने में सरकारी सम्मति की सुविधा प्राप्त होना।
- विलेख के खो जाने की दशा में आलोकन रजिस्टर विलेख के अस्तित्व का अकाटय प्रमाण।
- मुल पत्र के भुल जाने पर कार्यालय से विलेख की प्रतिलिपि प्राप्त की जा सकती है।
- सम्बन्धित पक्षकारों कों व्यवहारों की वैधानिक सुरक्षा की प्राप्ति।
- विलेखों का रिकार्ड का उचित प्रभावी सरंक्षण मिलना।
- व्यावसायिक गतिविधियों में विश्वास व प्रभावशीलता में स्वाभाविक प्रकृति में वृद्धि होना।
- जोखिमों से बचाव।

### आलोकन की विधि

सामान्यतः प्रत्येक नगर में राज्य सरकार के द्वारा नोटेरी पब्लिक नियुक्त किया जाता है। यह कार्य किसी न्यायाधीश अथवा जिला कलेक्टर अथवा अन्य किसी राजकीय अधिकारी को सौंपा जाता हैं।

जब कोई प्रतिज्ञा–पत्र या विनिमय पत्र अनादरित हो जाता है तो ऐसी दशा में धारक इसे नोटेरी पब्लिक के पास ले जाता है। नोटेरी पब्लिक इस विलेख का अनादरण हो जाने पर उसमें अनादरित होने को प्रमाणित करता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अपनी टिप्पणी वह विलेख परया विलेख के साथ संलग्न कागज या पर्ची पर दे सकता है तथा उसके धारा 99 में वांछित बातों को स्पष्ट रूप से लिख सकता है या उल्लेख कर सकता है।

## प्रमाणन / सिकराई / प्रसाक्ष्य / प्रोटेस्टिंग

## (Protesting)

**अर्थ**–सामान्य शब्दों में प्रमाणान से तात्पर्य प्रतिज्ञा–पत्र या विनिमय–पत्र के अनादरित हो जाने पर धारक उस विलेख का उचित तरीके व रूप के अन्तर्गत लेख्यप्रमाणक द्वारा आलोकन करवाया जाता है। आलोकन से सम्बन्धित दिये गये प्रमाण–पत्र को ही प्रमाणन कहते हैं।

प्रमाणन विलेख के अनादरित हो जाने पर दिया जाने वाला औपचारिक पत्र होता है जो नोटेरी पब्लिक द्वारा विलेख के धारक को उसके द्वारा मॉग करने पर दिया जाता है। **(धारा 100)**

### अच्छी प्रतिभुति के लिए प्रमाणन

विनिमय साध्य विलेख के परिपक्व होने से पूर्व ही यदि विलेख का स्वीकर्ता दिवालिया अधिनियम के द्वारा दिवालिया घोषित कर दिया जाता है अथवा उसकी साख सार्वजनिक रूप से खराब हुई हो तो ऐसी दशा में विलेख का धारक उचित समय में नोटेरी पब्लिक द्वारा विलेख के स्वीकर्ता से श्रेष्ठतम प्रतिभुति / गारन्टी की माँग कर सकता है तथा उसके द्वारा स्वीकार करने पर इस तथ्य का आलोकन तथा प्रमाणन करा सकता है।

इस प्रकार के प्रमाणन को अच्छी प्रतिभूति के लिए किया गया प्रमाणन कहते हैं।
**(धारा 100)**

विलेख का स्वीकर्ता इस प्रकार की प्रतिभूति देने के लिए बाध्य नही हैं तथा उसके द्वारा मना करने पर विलेख के धारक के द्वारा आहर्ता या पृष्ठांकन के विरूद्ध कार्यवाही भी नही कर सकती। धारक को विलेख की परिपक्वता की तिथि तक प्रतीक्षा करनी होगी। इस प्रकार के प्रमाणन के पश्चात विलेख को प्रतिष्ठा हेतु स्वीकार करवाया जा सकता हैं।

### प्रमाणन की विषय सामग्री

नोटेरी पब्लिक द्वारा दिये जाने वाले प्रमाण पत्र में निम्नलिखित विवरण का उल्लेख किया जाना चाहिए–

- मूल विलेख या उसकी छायाप्रति या पूर्ण प्रतिलिपि।
- उस व्यक्ति या पक्षकार का नाम जिसके लिए तथा जिसके विरूद्ध विलेख के अनादरण का प्रमाणन किया गया है।
- इस आशय या उद्देश्य का विवरण देना जिसमे नोटेरी पब्लिक ने सम्बन्धित व्यक्ति से विलेख के भुगतान या स्वीकृति अथवा अच्छी प्रतिभूति की माँग की, लेकिन देनदार द्वारा माँग को अस्वीकार कर दिया या कोई उतर नहीं दिया या मिला नहीं।
- अनादरण करने की तिथि, समय तथा स्थान।
- अनादरण के होने पर अच्छी प्रतिभूति की माँग की गयी तथा उसको अस्वीकार करने का समय एवं स्थान।
- नोटेरी पब्लिक का परिश्रमिक।
- नोटेरी पब्लिक के हस्ताक्षर।
- प्रतिष्ठा के लिये स्वीकार करने वाले या भुगतान करने वाले के होने पर जिस व्यक्ति ने ऐसा किया है, उसका नाम तथा जिस प्रकार स्वीकृति या भुगतान माँगा गया या दिया गया उसका विवरण।
  **(धारा 101)**

### प्रमाणन की सूचना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जब वैधानिक रूप से प्रमाणन की सूचना देना आवश्यक हो तो ऐसी दशा में इसकी सूचना अनादरण की सूचना के स्थान पर दी जानी आवश्यक है। प्रमाणन की सूचना अनादरण की सूचना के समान तथा उसी प्रकार के नियमों के अन्तर्गत की जाती है। यह सूचना नोटेरी पब्लिक द्वारा भी दी जा सकती है। **(धारा 102)**

**प्रमाणन का स्थान**

यदि कोई विलेख देनदार के निवास स्थान के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान पर भुगतान करने के लिए लिखा गया है तथा उस स्थान पर वह अस्वीकृत द्वारा अनादरित हो जाता है, तो ऐसी दशा में भुगतान नहीं होने के आधार पर उस विलेख का प्रमाणन भुगतान के लिए निर्देशित स्थान पर ही हो सकता है। **(धारा 103)**

**विदेशी विनिमय पक्षों का प्रमाणन**

जिस देश में विनिमय पत्र को लिखा गया है यदि उस देश के कानून या अधिनियम के द्वारा प्रमाणन कराया जाना आवश्यक या अनिवार्य हो तो विदेशी विनिमय के अनादरित हो जाने पर उसका प्रमाणन आवश्यक रूप से करवाया जाना चाहिए । (धारा 104)

**प्रमाणन की तिथि**

जब किसी विनिमय–पत्र का प्रमाणन एक निश्चित समयावधि के भीतर होना आवश्यक हो तो उस विलेख का आलोकन उस निश्चित समयावधि में हो जाना उचित एवं पर्याप्त होगा, क्योंकि प्रमाणन का सम्बन्ध आलोकन की तिथि से ही होता है। **(धारा 104– I)**

**प्रश्नः–**

**1.आलोकन एवं प्रमाणन किसे कहते है?**

**2.प्रमाणन की विश्व वस्तु क्या होती है?**

**3.उचित समय क्या है?**

**4.आलोकन व प्रमाणन में क्या अन्तर है?**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

# खण्ड–द

# उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986

इकाई –1 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986

इकाई की रूपरेखा


1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 अधिनियम का क्षेत्र

1.3 प्रमुख परिभाषाएँ

1.3.1 प्रयुक्त प्रयोगशाला

1.3.2 शिकायतकर्ता

1.3.3 शिकायत

1.3.4 उपभोक्ता

1.3.5 उपभोक्ता विवाद

1.3.6 दोष

1.3.7 माल

1.3.8 निर्माता

1.3.9 सेवा

1.3.10 व्यापारी

1.3.11 अनुचित व्यापार व्यवहार

1.3.12 जिला मंच

1.3.13 राज्य आयोग

1.3.14 राष्ट्रीय आयोग

बोध प्रश्न

1.4 केन्द्रीय उपभोक्ता सरंक्षण परिषद्

1.5 राज्य उपभोक्ता सरंक्षण परिषद्


Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1.6 जिला उपभोक्ता सरंक्षण परिषद्

बोध प्रश्न

1.7 उपभोक्ता के अधिकार

1.8 जिला मंच

1.9 राज्य आयोग

1.10 राष्ट्रीय आयोग

बोध प्रश्न

1.11 सारांश

1.12 शब्दावली

1.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

## उपभोक्ता सरंक्षण अधिनियम 1986

### 1.0 उद्देश्य

इस अधिनियम के विधेयक को ससंद में प्रस्तुत करते समय निम्नलिखित उद्देश्य बताए गये थे :–

1. उपभोक्ता के अधिकारों का संरक्षण एवं संवर्द्धन करना।
2. उपभोक्ताओं के हितों एवं अधिकारों के सरंक्षण के लिए उपभोक्ता परिषद्ों की स्थापना के लिए व्यवस्था करना।
3. उपभोक्ताओं के विवादों तथा उनसे समबन्धित मामलों के निपटारे के लिए व्यवस्था करना।
4. उपभोक्त विवादों का शीघ्रता एवं सरलता से निपटारा करना।
5. उपभोक्ता विवादों के निपटारे के लिए अर्द्धन्यायिक मशीनरी की व्यवस्था करना।

### 1.1 प्रस्तावना

औद्योगिक क्रान्ति एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास ने अनेक प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं एवं सेवाओं की उपलब्धता को जहॉ एक ओर सुगम बनाया वही दूसरी ओर इससे उपभोक्ता एवं व्यापारी के सम्बन्धों में भी अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। इसके अलावा वस्तुओं एवं सेवाओं के सघन विज्ञापन नें उपभोक्ताओं की माँग को भी प्रभावित किया है। ऐसे में उपभोक्ता की सार्वभौमिक सत्ता पर प्रश्न चिन्ह लगने लगा है। अतः यह अनुभव किया गया कि उपभोक्ताओं के कल्याण के लिए वस्तुओं एवं सेवाओं की किस्म, मात्रा एवं शुद्वता में आये दोषों को दूर करने की आवश्यकता है। इसी नीति के परिपालन हेतु एवं आम उपभोक्ता को शोषण से बचाने और उन्हें उचित क्षतिपूर्ति दिलाने के उद्वेश्य से उपभोकता संरक्षण अधिनियम, 1986 पारित किया गया।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम द्वारा तीन स्तरीय न्यायिक तन्त्र की व्यवस्था की है। जिससे विभिन्न उपभोक्ता अदालतें अस्तित्व में आई। इस व्यवस्था ने उपभोक्ता में जागरूकता पैदा की है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम चार अध्यायों में विभाजित है जिसमें कुल 31 धाराएँ है। अध्याय 1, 2 एवं 4 के प्रावधानों को 15 अप्रेलस, 1987 से लागू किया है और अध्याय 3 के प्रावधान 1 जुलाई, 1987 से लागू है। यह अधिनियम जम्मू एवं कश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत पर लागू है।

## 1.2 अधिनियम का क्षेत्र (विस्तार) तथा प्रभाव

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 का क्षेत्र तथा प्रभाव निम्नलिखित प्रावधानों से स्पष्ट हो गया है :–

**1. भौगोलिक क्षेत्र** :–

यह अधिनियम जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत पर लागू होता है। धारा (2) सभी केन्द्र शासित प्रदेशों पर भी यह अधिनियम लागू होता है। { धारा 1 (2)}

**2. माल तथा सेवाओं का क्षेत्र** :–

यह अधिनियम सभी माल तथा सेवाओं पर लागू होता है, जब तक कि केन्द्रीय सरकार नें अधिसूचना जारी करके किसी वस्तु या सेवा को इसके प्रावधानों से मुक्त न कर दिया हो। { धारा 1 (4)}

यह उल्लेखनीय है कि माल तथा सेवा का अर्थ आगे दिया गया है। किन्तु व्यक्गित अनुबन्ध क अन्तर्गत की गई सेवाओं अर्थात नौकर की सेवाओं तथा निःशुल्क रूप से उपलब्ध की सेवाओं पर अधिनियम लागू नही होता है।

**3. अन्य अधिनियमों के सन्दर्भ में** :–

इस अधिनियम के प्रावधान देश में प्रचलित किसी भी अन्य अधिनियम के प्रावधानों के अतिरिक्त है। अतः यह अधिनियम किसी भी अन्य अधिनियम के क्षेत्र को सीमित या कम नही करता है। (धारा 3)

**4. अधिनियम का प्रभाव** :–

यह अधिनियम उस तिथि से लागू होगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित की जायेगी। केन्द्रीय सरकार देश के विभिन्न राज्यों में तथा इस अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों को भिन्न तिथियों से लागू कर सकती है। {धारा 1 (3)}

यह उल्लेखनीय है कि केन्द्रीय सरकार ने इस अधिकार का उपयोग करते हुए इस अधिनियम को दो चरणों में लागू किया था। प्रथम चरण में 15 अप्रेल, 1987 को तीसरे अध्याय के अतिरिक्त सम्पूर्ण अधिनियम लागू कर दिया था। तीसरा अध्याय 1 जुलाई, 1987 से लागू किया गया था।

## 1.3 प्रमुख परिभाषाएँ

इस अधिनियम में प्रयुक्त किये गये शब्दों की परिभाषाएँ अधिनियम की धारा 2 एवं इसकी उपधाराओं मे वर्णित है। प्रमुख शब्द ये है :–

**1.3.1 प्रयुक्त प्रयोगशाला** :–

प्रयुक्त प्रयोगशाला से तात्पर्य एक ऐसी प्रयोगशाला अथवा संगठन से है जो :–

i. केन्द्र सरकार से मान्यता प्राप्त है।

ii. राज्य सरकार से मान्यता प्राप्त है अथवा

iii. जिसे केन्द्र अथवा किसी राज्य सरकार की वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है तथा इनके द्वारा देखभाल की जाती है और जो किसी माल का विश्लेषण अथवा परीक्षण यह मालूम करने के उद्देश्य से करती है कि क्या उस माल में किसी प्रकार को दोष है। {धारा 2(1) () संशोधित 1993}

**1.3.2 शिकायतकर्ता** :–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस अधिनियम के अन्तर्गत शिकायतकर्ता से आशय :–

पण कोई उपभोक्ता

ii. कोई भी स्वैच्छिक उपभोक्ता परिषद् जो कम्पनी अधिनियम 1956 अथवा अन्य किसी कानून के अन्तर्गत पंजीकृत हो।

iii. केन्द्रीय सरकार अथवा कोई राज्य सरकार जो शिकायत करती है।

इससे स्पष्ट है कि उपर्युक्त को शिकायत करने का अधिकार है। 1993 के अध्यादेश के अनुसार समान हित रखने वाले एक या अधिक उपभोक्ता भी इस अधिनियम के अन्तर्गत शिकायतकर्ता कहलाएँगें। इस प्रकार अब विभिन्न उपभोक्ता अदालतों में एक से अधिक उपभोक्ता एक ही मुद्दे पर साझा शिकायत दायर कर सकेंगे।

इसी प्रकार कोई भी पंजीकृत उपभोक्ता संगठन किसी भी उपभोक्ता के हित में चाहे वह उसका सदस्य हो या नही हो उपभोक्ता अदालत में मामलें दायर कर सकेगा। {धारा 2(1) (इं) संशोधित 1993}

**1.3.3 शिकायत** :–

इस अधिनियम के अन्तर्गत 'शिकायत' से आशय शिकायतकर्ता द्वारा, निम्नलिखित में से किसी एक अथवा अधिक के विषय में लिखित रूप में लगाये गये आरोपों से है :–

**a)** किसी व्यापारी ने अनुचित व्यवहार अथवा प्रतिबधित व्यापारिक व्यवहार किया है।

**b)** क्रय अथवा क्रय के लिए स्वीकृत माल में वस्तु की किस्म, शुद्वता, मात्रा, क्षमता आदि में कमी अथवा दोष है।

**c)** ऐसी सेवा में किसी प्रकार की कोई कमी है जिसे भाड़ें पर लिया गया है अथवा उसका उपयोग किया गया है अथवा जिसे भाडे पर लेने अथवा उपयोग करने के लिए स्वीकृति दी गई है।

**d)** शिकायत में उल्लेखित माल का व्यापारी नें निर्धारित मूल्य से, जो किसी कानून द्वारा निर्धारित किया हो अथवा माल पर अथवा पेकैज (जिसमें माल है) पर निर्दिष्ट मूल्य से अधिक मूल्य लिया हो।

**e)** किसी व्यापारी नें ऐसा माल बिक्री के लिए प्रस्तुत किया है जो जीवन एवं सुरक्षा के लिए घातक है तथा यह उन नियमों के विरूद्व है जिनके अन्तर्गत ऐसे माल के तत्व, उपयोग के तरीके एवं प्रभाव के सम्बन्ध में सूचना प्रर्दशित करनी अनिवार्य है। {धारा 2(1) (बं) संशोधित 1993}

**1.3.4 <u>उपभोक्ता :– उपभोक्ता से आशय</u>**

. **माल के सम्बन्ध में उपभोक्ता** वह है जो प्रतिफल (अर्थात मूल्य) के बदले उसे खरीदता है। वस्तु का पूर्ण मूल्य देने वाला, अथवा आंशिक मूल्य देने वाला, अथवा उधार माल खरीदने वाला व्यक्ति भी उपभोक्ता माना जावेगा। यदि खरीदने वाले व्यक्ति की अनुमति से किसी वस्तु का उपयोग अन्य व्यक्ति करता है तो ऐसा अन्य व्यक्ति भी उपभोक्ता माना जावेगा। जो व्यक्ति किसी वस्तु को पुनः बिक्री अथवा व्यापारिक उद्वेश्य से खरीदता है उसे उपभोक्ता नही माना जावेगा।
{धारा 2(1) (कं) (पं)}

b. **सेवाओं के मामले से 'उपभोक्ता'** से आशय, ऐसे व्यक्ति से है जो सेवाओं को भाडे पर प्राप्त करता हे और उसके लिए प्रतिफल (मूल्य) अदा करता हे। प्रतिफल का पूर्ण भुगतान करने वाला अथवा आंशिक भुगतान करने वाला अथवा भुगतान का वादा करने वाला व्यक्ति भी उपभोक्ता माना जाता है।
{धारा 2(1) (कं) (पपं)}

**1.3.5 उपभोक्ता विवाद** :–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपभोक्ता के वाद से आशय है कि जिस व्यक्ति के विरूद्व शिकायत लिखित में की गई है और ऐसा व्यक्ति इससे इनकार करता हो अथवा जो आरोप उस पर लगाये गये हो उन पर वाद प्रस्तुत करता हो। { धारा 2 (1) (म)}

**1.3.6 दोष** :–

1993 के संशोधन के अनुसार, दोष से आशय किसी गर्भित अथवा स्पष्ट ठहराव के अन्तर्गत वस्तु की किस्म, शुद्वता, मात्रा, क्षमता मे किसी भी दोषा अपूर्णता अथवा कमी से है।

{ धारा 2 (1) (ह)}

**1.3.7 माल (अर्थात वस्तुएँ) :–**

माल से अभिप्राय सभी तरह की चल–अचल सम्पति से है और इसमें शेयर, फसल आदि भी सम्मिलित है। किन्तु इसमें अचल सम्पति (जैसे भूमि, मकान, आदि) को माल नही माना गया है।

{ धारा 2 (1) (प)}

**1.3.8 निर्माता से आशय ऐसे व्यक्ति से है जो :–**

1. कोई माल अथवा उसके कोई हिस्से बनाने वाला अथवा निर्माता
2. जो माल अथवा उसक हिस्से का निर्माण तो नहीं करता है किन्तु उनके हिस्सों का सज्जीकरण अर्थात् एकत्रित करता है और इस बात का दावा करता है कि उस माल का निर्माण उसने किया है।
3. किसी अन्य निर्माणकर्ता द्वारा निर्मित माल पर अपना चिन्ह लगाता है अथवा अन्य किसी से लगवाता है और दावा करता है कि उस माल का निर्माण उसने किया है। (धारा 2(1)(j))

**1.3.9 सेवा** :–

सेवा से आशय किसी भी प्रकार की सेवा से है जो उसके प्रयोगकर्ताओं को उपलब्ध कराई जाती है। इसके अन्तर्गत बैंकिंग, वित्त प्रदान करना, बीमा, यातयात, प्रोसेसिंग, विद्युत अथवा अन्य ऊर्जा, भोजन अथवा निवास दोनों, मनोरंजन, आमोद–प्रमोद, समाारों अथवा अन्य जानकारी पहुॅचने के सम्बन्ध में सुविधाओं का प्रबन्ध भी है। किन्तु इसके अन्तर्गत निःशुल्क या व्यक्तिगत सेवा अनुबन्ध के अधीन सेवा किया जाना सम्मिलित नहीं हैं। सशुल्क चिकित्सा सुविधा को सेवा माना गया हैं। { धारा 2 (1) (व)}

**1.3.10 व्यापारी** :–

किसी माल के सम्बन्ध में 'व्यापारी' से आशय किसी ऐसे व्यक्ति से है जो विक्रयार्थ किसी माल का विक्रय अथवा वितरण करता है और इसके अन्तर्गत उसका निर्माता भी है, और जहॉ ऐसे माल का विक्रय या वितरण पैकेज के रूप में किया जाता है और इसमें पैकर भी सम्मिलित हैं। { धारा 2 (1) ()}

**1.3.11** अनुचित व्यापार व्यवहार का अर्थ वही है जो एकाधिकार तथा अवरोधक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम, 1969 की धारा 3ब। मे दिया गया है। { धारा 2 (1) (त)}

**1.3.12 जिला मंच :–**

जिला मंच से आशय 'जिला उपभोक्ता' विवाद प्रतितोष मंच से है जो केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति से राज्य सरकार अपने जिलों में स्थापित करती है। ध्यान दें, यदि माल अथवा सेवाओं का मूल्य तथा हर्जाने की माँगी गई राशि पाँच लाख रूपये से कम है जो सम्बन्धित जिले के लिए गठित जिला मंच में शिकायत की जा सकती है। { धारा 9 ()}

1.3.13 **राज्य आयोग** :–

राज्य आयोग से आशय 'उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग' से है जो किसी राज्य में इस अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित किया गया है। ध्यान दें, यदि माल अथवा सेवाओं का मूल्य तथा हर्जाने की मॉग गई राशि पाँच लाख रूपये से अधिक व 20 लाख रूपये तक हो तो इस प्रकार की शिकायत 'राज्य आयोग'

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

के समक्ष प्रस्तुत करनी चाहिए। राजस्थान में गठित राज्य आयोग का कार्यालय जयपुर के सचिवालय में स्थित है। { धारा 9 (इ)}

1.3.14 **राष्टीय आयोग** :–

राष्ट्रीय आयोग से आशय 'राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद प्रतितोष आयोग' से है जिसका गठन इस अधिनियम के अन्तर्गत किया गया है। ध्यान दें, यदि माल अथवा सेवाओं का मूल्य तथा हर्जाने की मांग की गई राशि 20 लाख रूपये से अधिक है तो इस प्रकार की शिकायत 'राष्ट्रीय आयोग' के समक्ष प्रस्तुत की जाती है। 20 लाख रूपयों से कम राशि के लिए यह आयोग सुनवाई नही कर सकता। इसका कार्यालय जनपथ भवन, नई दिल्ली में स्थित है।

{ धारा 9 (ब}

**बोध प्रश्न**

1. एक उपभोक्ता कौन है ?
2. शिकायतकर्ता से क्या आशय है ?
3. सेवा क्या है ?

## 1.4 केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषदे

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की धारा 4 (1) के अनुसार केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद् की स्थापना करेगी। इस परिषद् को उस तिथि से प्रभावी माना जायेगा जो कि अधिसूचना में निर्दिष्ट की गई हो।

केन्द्रीय सरकार की अधिसूचना द्वारा स्थापित केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद् में केन्द्रिय सरकार का उपभोक्ताओं के मामलों का मन्त्री उसका अध्यक्ष होगा और विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करने वालें अन्य सदस्य होंगे। इस परिषद का कार्यकाल 3 वर्ष का होगा। उपभोक्ता संरक्षण नियम, 1987 की धारा 3 के अनुसार इस परिषद् में कुल सदस्य 150 से अधिक नही होंगे जो कि निम्नलिखित है :–

1 **अध्यक्ष एक** :– जो केन्द्रीय सरकार के उपभोक्ता मामलों का प्रभारी मन्त्री होगा।

2 **उपाध्यक्ष एक** :– जो केन्द्रीय सरकार का राज्य मंत्री, आपूर्ति विभाग (यदि उसके पास उपभोक्ता मामलों के विभाग का स्वतन्त्र चार्ज न हो) या उपमंत्री जो उपभोक्ता मामलों का प्रभारी हो, होगा।

3 राज्य उपभोक्ता मामलों विभाग के प्रभारी मन्त्री।

4 **संसद सदस्य आठ** :– इनमें पॉच लोक सभा से एवं तीन राज्य सभा से होंगे।

5 अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के राष्ट्रीय आयोग का सचिव।

6 उपभोक्ता हितों से सम्बन्धित केन्द्रीय सरकार के विभिन्न विभागों एवं स्वायतशासी संगठनों के सदस्य – बीस से अधिक नही।

7 उपभोक्ता या उपभोक्ता संगठनों के प्रतिनिधि – 35 से कम नही।

8 महिलाओं के प्रतिनिधि :– दस से कम नही।

9 किसानों, व्यापार एवं उद्योगों के प्रतिनिधि – 20 से अधिक नही।

10 उपभोक्ता हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले अन्य सक्षम व्यक्ति – 15 से अधिक नही।

11 केन्द्रीय सरकार में उपभोक्ता मामलों के विभाग का सचिव जो कि कन्द्रीय परिषद् का सदस्य सचिव होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

केन्द्रीय परिषद् का कोई भी सदस्य अध्यक्ष को लिखित में सूचना देकर अपना पद त्याग सकता है। ऐसे खाली स्थान को केन्द्रीय सरकार द्वारा उसी वर्ग में से पूरा किया जायेगा। जिस वर्ग के व्यक्ति ने पद त्याग किया है और उसका कार्यकाल उतना ही होगा जितना त्याग करने वाले व्यक्ति का बचा हुआ है।

**उद्देश्य :–**

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की धारा 6 के अनुसार केन्द्रीय परिषद् का उद्देश्य उपभोक्ता के अधिकारों एवं हितों की सुरक्षा करना होगा।

## 1.5 राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद्

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की धारा 7 (1) के अनुसार राज्य सरकार अधिसूचना जारी कर अपने राज्य के लिए उपभोक्ता सरंक्षण परिषद् की स्थापना करेंगी। ऐसी परिषद् को राज्य परिषद् के नाम से जाना जा सकेगा। यह परिषद् उस तिथि से प्रभावी मानी जायेगी जो कि राज्य सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में जारी की गई अधिसूचना में निर्दिष्ट है।

राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद् में निम्न सदस्य होंगे।

1 राज्य सरकार का उपभोक्ताओं के मामलों का प्रभारी या मंत्री इस परिषद् का अध्यक्ष होगा।

2 विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले सरकारी या गैर–सरकारी सदस्य जो राज्य सरकार द्वारा समय–समय पर अधिसूचित किये जाएंगे।

3 केन्द्रीय सरकार द्वारा नामित सरकारी या गैर सरकारी सदस्य जिनकी संख्या 10 से अधिक नही होगी।

**सभाएँ :–**

राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद् की सभाएँ जब कभी भी आवश्यक हो, की जायेगी, परन्तु एक वर्ष में कम से कम दो सभाएँ करना अनिवार्य है।

राज्य परिषद् की सभाएँ ऐसे समय एवं स्थान पर की जायेगी जो अध्यक्ष उचित समझे और इसमें कार्यो को निपटाने के लिए राज्य सरकार निर्धारित प्रक्रिया अपनाई जायेगी।

**उद्देश्य :–**

प्रत्येक राज्य परिषद् का उद्देश्य राज्य की भीतर उपभोक्ताओं के अधिकारों का सम्वर्द्धन एवं सरंक्षण करना होगा।

## 1.6 जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद्

उपभोक्ता सरंक्षण अधिनियम की धारा 8।(1) के अनुसार राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिले के लिए एक जिला उपभोक्ता सरंक्षण परिषद् की स्थापना करेंगी। यह परिषद् उस तिथि से प्रभावी मानी जायेगी जो कि राज्य सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में जारी की गई अधिसूचना में निर्दिष्ट है।

**जिला उपभोक्ता सरंक्षण परिषद् में निम्न सदस्य होंगे :–**

1 जिले का जिलाधीश इसका अध्यक्ष होगा।

2 विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले सरकारी या गैर–सरकारी सदस्य जो कि राज्य सरकार द्वारा समय–समय पर निर्धारित किये जायें।

**सभाएँ { धारा 8।(3)}**

जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद् की सभाएँ जब कभी भी आवश्यक हो की जायेगी, परन्तु एक वर्ष मे कम से कम दो सभाएँ करना अनिवार्य होगा।

**समय एवं स्थान { धारा 8।(4)}**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जिला परिषद् की सभाएँ जिले की भीतर ऐसे समय एवं स्थान पर की जायेगी जो अध्यक्ष उचित समझे और इसमें कार्यो को निपटाने के लिए राज्य सरकार द्वारा निर्धारित प्रक्रिया अपनायी जायेगी।

**उद्देश्य {धारा 8ठ}**

प्रत्येक जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद् का उद्देश्य जिले की भीतर उपभोक्ताओं के अधिकारों का संवर्द्धन एवं सरंक्षण करना होगा।

**बोध प्रश्न**

4. केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद् की स्थापना के अधिकार किसे है?
5. केन्द्रीय परिषदों के सदस्यों की अधिक संख्या क्या है?

## 1.7 उपभोक्ता को प्राप्त अधिकार

इस अधिनियम के अन्तर्गत एक उपभोक्ता को अनेक प्रकार के अधिकार प्रदान किये गये है। अधिनियम की धारा 6 में उपभोक्ता अधिकारों का निम्नलिखित प्रकार उल्लेख किया गया है :–

**1. सुरक्षा का अधिकार** :–

इसके अन्तर्गत उपभोक्ता को ऐसी वस्तुओं या सेवाओं से सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार है, जिनसे उपभोक्ता के शरीर या सम्पति को हानि हो सकती है।

**2. सूचना प्राप्ति का अधिकार** :–

उपभोक्ता को माल या वस्तु की गुणवता, मात्रा, क्षमता, शुद्वता, मानक, मूल्य आदि के सम्बन्ध में सही–सही सूचना प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है।

**3. चयन का अधिकार** :–

उपभोक्ता अपने इस अधिकार के अनुसार विभिन्न ब्राण्ड, किस्म, गुण, रूप, रंग, आकार तथा मूल्य की वस्तुओं में से किसी भी वस्तु के चयन का अधिकार रखता है।

**4. शिकायत करने का अधिकार** :–

प्रत्येक उपभोक्ता को शिकायत करने, शिकायत की सुनवाई तथा उपयुक्त मंचों पर उसके हितों के लिए आवश्यक विचार–विमर्श हेतु आश्वासन प्राप्ति का अधिकार है।

**5. क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार** :–

इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक उपभोक्ता को उन समस्त बातों की जानकारी या शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है, जो एक उपभोक्ता के लिए आवश्यक होती है।

**6. जानकारी प्राप्त करने का अधिकार** :–

इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक उपभोक्ता को उन समस्त बातों की जानकारी या शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है, जो एक उपभोक्ता के लिए आवश्यक होता है।

**7. मूल्य का पूर्ण प्रतिफल प्राप्ति का अधिकार** :–

उपभोक्ता को यह अधिकार है कि उसे, वस्तु या माल या सेवा के लिए चुकाये गये मूल्य का पूर्ण प्रतिफल प्राप्त हो सके।

**8. शुद्व पर्यावरण प्राप्ति का अधिकार** :–

उपभोक्ता सरंक्षण अधिनियम में उल्लेखित उक्त अधिकारों के अतिरिक्त उपभोक्ता को एक और अधिकार प्राप्त है वह है–शुद्व पर्यावरण प्राप्त करना। इस अधिकार के अन्तर्गत उपभोक्ता को प्रत्येक उद्यमी से पर्यावरण को स्वास्थयप्रद बनाए रखने की अपेक्षा करने का अधिकार है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1 ऐसे माल के विपणन के विरूद्व सुरक्षा प्रदान करने का अधिकार है जो जीवन एवं सम्पति के लिए जोखिममय हो।

2 माल की गुणवता, मात्रा, क्षमता, शुद्वता, मापक और मूल्य के विषय में, सूचित किये जाने का अधिकार जिससे कि अनुचित व्यापारिक व्यवहार से उपभोक्ता को सुरक्षित किया जा सके।

3 जहाँ भी सम्भव हों, वहाँ प्रतिस्पर्द्वा–मूल्यों पर विभिन्न किस्मों के माल तक पहुँच का आश्वासन दिये जाने का अधिकार।

4 सुने जाने का और यह आश्वासन दिए जाने का अधिकार कि उपभोक्ताओं के हितों पर उपयुक्त फोरमों पर उचित रूप से विचार किया जायेगा।

5 अनुचित व्यापारिक व्यवहार अथवा उपभोक्ताओं के अनुचित शोषण के विरूद्व उपचार करने का अधिकार।

## 1.8 जिला मंच :–

राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिलें के लिए एक उपभोक्ता विवाद निवारण मंच स्थापित करेगी जिसे 'जिला मंच' के नाम से जाना जायेंगा।

यदि राज्य सरकार उचित समझे तो वह एक जिले के लिए एक से अधिक जिला मंच भी स्थापित कर सकेगी।

a) **अध्यक्ष**:– ऐसा व्यक्ति जो जिला न्यायाधीश है या रहा है या बनने की योग्यता रखता है, उसे अध्यक्ष बनाया जायेगा।

b) **दो सदस्य** :– जिसमें से एक महिला होगी। इनकी योग्यताएँ निम्न प्रकार से है :–

i. 35 वर्ष से कम उम्र की न हो।

ii. मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से स्नातक हो।

iii. योग्यता, सत्यनिष्ठा एवं ख्याति प्राप्त व्यक्ति जिनमें अर्थशास्त्र, वाणिज्य, लेखाशास्त्र, उद्योग, जन–सम्पर्क या प्रशासन सम्बन्धी समस्याओं का कम से कम 10 वर्ष का ज्ञान एवं अनुभव हो।

### 1.8.1 क्षेत्राधिकार (धारा 11)

जिला मंच को निम्न शर्तो के पूरा करने वाली अपने क्षेत्र की शिकायतों कों स्वीकार करने का क्षेत्राधिकार होगा :–

1. जब दावे के माल या सेवा या मुआवजे का मूल्य बीस लाख रूपये से अधिक न हो। अर्थात बीस लाख रूपये से अधिक की राशि के दावे जिला मंच में नही किये जा सकेंगे।
2. जिला मंच में उसके क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं की शिकायो की दर्ज करायी जा सकेगी। इस क्षेत्राधिकार की सीमाओं में

   i. विरोधी पक्ष शिकायत दर्ज कराते समय वास्तव में रह रहा है या व्यापार कर रहा है या उसका शाखा कार्यालय है या लाभ का कार्य कर रहा है, अथवा

   ii. विरोधी पक्षों में कोई पक्ष शिकायत के समय इसके क्षेत्राधिकार में रह रहा हो या व्यवसाय कर रहा हो या उसका शाखा कार्यालय हो या लाभ के लिए कार्य कर रहा है, परन्तु इस तिथि में या तो जिला मंच ने स्वीकृति दे दी हो या इस क्षेत्राधिकार में न रहने वाले या व्यवसाय न करने वाले पक्ष ने ऐसे कार्य की मौन स्वीकृति दे दी हो अथवा

   iii. पूर्ण या आंशिक कार्यवाही करने का कारण उत्पन्न हुआ हो।

### 1.8.2 शिकायत करने का तरीका :–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शिकायत कौन कर सकता है?

विक्रय किये गये माल अथवा प्रदान की गई सेवा या इनके ठहराव के सम्बन्ध में निम्न में से कोई भी जिला मंच में शिकायत दर्ज करा सकोगे।

a) ऐसा उपभोक्ता जिसे ऐसा माल विक्रय किया गया हो या सेवा प्रदान की गई है या इनके सम्बन्ध में ठहराव किया गया हो।

b) मान्यता प्राप्त उपभोक्ता परिषद् चाहे वह उपभोक्ता जिसे माल बेचा गया है या सेवा दी गई है, वह सदस्य हो या नही। मान्यता प्राप्त उपभोक्ता परिषद् से यहाँ तात्पर्य ऐसी स्वयंसेवी उपभोक्ता परिषद् से है जो कम्पनी अधिनियम, 1956 या वर्तमान में लागू किसी अन्य राजनियम के अन्तर्गत पंजीकृत है।

c) एक या एक से अधिक उपभोक्ता, जहाँ एक ही हित रखने वाले अनेक उपभोक्ता हो तो जिला मंच की अनुमति से सभी उपभोक्ता जो रूचि रखते हो वे स्वयं या उनके लिए दूसरा पक्षकार, अथवा

d) केन्द्रीय या राज्य सरकार, ये व्यक्तिगत रूप में या उपभोक्ताओं के सामान्य हितों के प्रतिनिधि के रूप में शिकायत कर सकती है।

प्रत्येक शिकायत निर्धारित फीस सहित जिसका भुगतान निर्धारित विधि से किया जायेगा, द्वारा की जायेगी।

शिकायत की प्राप्ति पर जिला मंच उसकी स्वीकृति या अस्वीकृति के आदेश दे सकेगा, परन्तु शिकायतकर्ता को सुनने का अवसर दिये बिना इस अस्वीकार नही किया जायेगा।

शिकायत प्राप्त होने के 20 दिन के भीतर सामान्तया शिकायत की ग्राह्मता का निपटारा कर दिया जायेगा।

शिकायत को स्वीकार करने पर अधिनियम में निर्धारित विधि से इसका निपटारा किया जायेगा लेकिन एक बार जिला मंच द्वारा स्वीकार की गई शिकायत का अन्यत्र स्थानान्तरण नही होगा।

**उपभोक्ता विवादों को निपटाने की प्रक्रिया :–**

उपभोक्ता सरंक्षण अधिनियम की धारा 13 के अनुसार शिकायत प्राप्ति पर जिला मंच द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया की निम्नांकित दो वर्गों में विभाजित कर अध्ययन किया जा सकता है।

A. माल सम्बन्धी शिकायतों की निपटान प्रक्रिया।

B. सेवा सम्बन्धी शिकायतों की निपटान प्रक्रिया।

**इनका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित पंक्तियों में किया जा रहा है।**

**A. माल सम्बन्धी शिकायतों की निपटान प्रक्रिया**

जिला मंच द्वारा माल के सम्बन्ध में शिकायत ग्राह्य (स्वीकार) करने के पश्चात् वह शिकायत की एक प्रति 21 दिन के भीतर विरोधी पक्ष को प्रदान करेगा एवं उसे 30 दिन के भीतर या बढ़ाई गयी अवधि, जो 15 दिन से अधिक नही हो सकेगी, के भीतर अपना जवाब देने का निर्देश देगा। विरोधी पक्ष द्वारा निर्धारित समय में इस शिकायत को अस्वीकार करने या कुछ कार्यवाही न करने की स्थिति में जिला मंच उपभोक्ता विवाद का निम्न प्रकार निपटारा करेगा। इसी को जिला मंच उपभोक्ता विवादों को निपटाने की प्रक्रिया कहते है।

**1. नमूना प्राप्त करना** :–

जब शिकायत में यह आरोप लगाया गया हो कि माल के दोषों को बिना उचित जॉच या विश्लेषण के निर्धारित नही किया जा सकेगा तो जिला मंच वस्तु का नमूना प्राप्त करेगा, उसे मोहरबन्द करेगा तथा उसे जॉच के लिए उचित प्रयोगशाला को भेजेगा। ऐसी प्रयोगशाला एसे केश के निर्देश प्राप्त किये जाने के 45 दिन के भीतर या बढी हुई अवधि के भीतर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी।

**2. फीस का भुगतान** :–

Jain Vishva Bharati Institute Deemed University, Ladnun

उचित प्रयोगशाला को माल के नमूने को निर्देश करने के पूर्व जिला मंच शिकायतकर्ता से निर्धारित फीस प्रयोगशाला को भुगतान के लिए जिला मंच के पास जमा करने के निर्देश दे सकेगा।

**3. धनराशि प्रयोगशाला का भुगतान करना** :–

जिला मंच शिकायतकर्ता से प्राप्त धनराशि को उपयुक्त प्रयोगशाला को भेजेगा ताकि वह अपेक्षित जॉच कर सके।

**4. रिपोर्ट प्राप्त करना** :– जिला मंच प्रयोगशाला से रिपोर्ट प्राप्त करना।

**5. रिपोर्ट को विरोधी पक्षकार को भेजना।**

6. **आपत्तियों को जानना** :–

यदि विवाद के पक्षकार उचित प्रयोगशाला के निष्कर्षों या अपनायी जाने वाली जाँच प्रक्रिया के सम्बन्ध में आपत्ति उठाते है तो जिला मंच उनसे उन आपत्तियों को लिखित में प्रस्तुत करने के निर्देश देगा।

a) **सुनवाई का उचित अवसर देना** :–

जिला मंच शिकायतकर्ता एवं विरोधी पक्ष को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का उचित अवसर प्रदान करेगा। इसमें से प्रयोगशाला के निष्कर्षो एवं उठायी गई आपत्तियों के सम्बन्ध में अपना तर्क प्रस्तुत कर सकोगें।

**b) सेवा सम्बन्धी शिकायतों की निपटान प्रक्रिया**

यदि जिला मंच को ग्राह्म (स्वीकार) शिकायत ऐसे माल की है जिसमें उपर्युक्त प्रक्रिया को नही अपनाया जा सकता है या शिकायत किसी सेवा कार्य से सम्बन्धित है तो जिला मंच शिकायत की एक प्रति विरोधी पक्ष को इस निर्देश के साथ देगा कि वह अपना पक्ष 30 दिन के भीतर या बढ़ाई गई अवधि जो 15 दिन से अधिक न हो, के भीतर प्रदान करें।

यदि विरोधी पक्ष निर्धारित समय में इस शिकायत को अस्वीकार कर देता है या अपने केश का प्रतिनिधित्व नही करता है तो जिला मंच मतभेद को निपटारा (प) शिकायतकर्ता एवं विरोधी पक्ष द्वारा उसकी जानकारी में लाये गये सबूतों के आधार पर, जहॉ विरोधी पक्षा शिकायत में उल्लेखित आरोपों को अस्वीकार करता हो, अथवा (पप) जहॉ विरोधी पक्ष निर्धारित समय के अन्तर्गत केश का प्रतिनिधित्व नही करता हो वहॉ शिकायतकर्ता द्वारा उसकी जानकारी में लाये गये सबूतों के आधार पर एक तरफा निर्णय करेगा।

जब शिकायतकर्ता सुनवाई के दिन जिला मंच के समक्ष उपस्थित होने में असमर्थ रहता है तो जिला मंच इस शिकायत को या तो रद्व कर देगा या मैरिट पर निर्णय करेगा।

उपर्युक्त प्रक्रिया को इस आधार पर कि इसमें नैसर्गिक न्याय के सिद्वान्त को नही अपनाया गया है, किसी न्यायालय में चुनौती नही दी जा सकेगी।

## 1.9 राज्य आयोग

राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग की स्थापना कर भेजेगी जिसे राज्य आयोग कहेंगे। एक राज्य आयोग में निम्न सदस्य होंगे।

a) **एक अध्यक्ष** :–

उच्च न्यायालय का न्यायाधीश या उच्च न्यायालय का पूर्व न्यायाधीश जो राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाये वह राज्य आयोग का अध्यक्ष होगा।

उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से सलाह किये बिना राज्य सरकार ऐसी नियुक्ति नही कर सकेगी।

b) कम से कम दो और ऐसी संख्या से अधिक नही जो कि निर्धारित की जाये, जिनमें से एक आवश्यक रूप से महिला होगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

योग्यताएँ :–

**इन सदस्यों की योग्यताएँ निम्नलिखित है :–**

i. 35 वर्ष से कम उम्र के न हो,

ii. मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से स्नातक हो।

iii. योग्यता, सत्यनिष्ठा एवं ख्याति प्राप्त होने के साथ उसे पर्याप्त ज्ञान तथा अर्थशास्त्र, विधि, वाणिज्य, लेखाशास्त्र, उद्योग, जन–सामान्य के मामलें या प्रशासन सम्बन्धी समस्याओं का कम से कम 10 वर्ष का अनुभव हो।

प्रशासन सम्बन्धी समस्याओं का कम से कम 10 वर्ष का अनुभव है। इसमें न्यायिक क्षेत्र की पृष्ठभूमि वाले सदस्यों की संख्या 50 प्रतिशत् से अधिक नही हो सकेगी।

यहाँ न्यायिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों का आशय ऐसे व्यक्तियों से है जिन्हें जिला स्तर या ट्रिब्यूनल के समान स्तर पर पीठासीन अधिकारी के रूप में कार्य करने का कम से कम 10 वर्ष का ज्ञान एवं अनुभव हो।

**शिकायतों का निवारण**

राज्य आयोग द्वारा शिकायतों की प्राप्ति एवं निवारण के लिए वही प्रक्रिया अपनायी जायेगी जो कि जिला मंच द्वारा अपनायी जाती है। इसका विवेचन पूर्व में धाराएँ 12, 13 एवं 14 के अन्तर्गत किया जा चुका है।

**अपील (धारा 19)**

राज्य आयोग के आदेश से पीड़ित पक्षकार आदेश की तिथि से 30 दिन के भीतर राष्ट्रीय आयोग में राज्य आयोग के आदेश के विरूद्व अपील कर सकेगा।

यदि राष्ट्रीय आयोग अपील करने में देरी के कारणों से सन्तुष्ट है तो अवधि के समाप्त होने के पश्चात् प्रस्तुत की गई अपील को वह स्वीकार कर सकेगा।

राज्य आयोग के आदेशानुसार यदि किसी पक्ष को कुछ धन का भुगतान करता है तो उसकी अपील का राष्ट्रीय आयोग द्वारा तब तक स्वीकार नही किया जायेगा जब तक कि अपीलार्थी इस राशि का 50 प्रतिशत् या 35,000 रूपये जो दोनो में कम हो, उसने जमा न करा दिये हो।

**अपील सुनवाई**

राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग के समक्ष प्रस्तुत की गई अपील की शीघ्रातिशीघ्र सुना जायेगा और जहाँ तक सम्भव हो उसका निपटारा स्वीकृति के 90 दिन के भीतर करना होगा।

जब तक यथोचित कारण न हो तब तक कोई स्थगन प्रदान नही किया जायेगा। स्थगन देने पर उसके कारणों का अभिलेखन करना होगा।

राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग स्थगन की लागत के सम्बन्ध में आदेश दे सकेगा। निर्धारित अवधि के पश्चात् राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग द्वारा अपील के निपटारा करने के समय इसके कारणों को अभिलिखित करेंगें।

## 1.10 राष्ट्रीय आयोग

केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा राष्ट्रीय उपभोक्ता निवारण एजेन्सी की स्थापना करेगी जिसे राष्ट्रीय आयोग के नाम से जाना जायेगा।

**रचना (धारा 10)**

**राष्ट्रीय आयोग का गठन निम्न प्रकार होगा :–**

a) **अध्यक्ष एक :–**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जो उच्चतम न्यायालय का वर्तमान या पूर्व न्यायाधीश हो जिसकी नियुक्ति केन्द्र सरकार करेगी। परन्तु ऐसी नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधीश से सलाह करने के उपरान्त ही की जा सकेगी।

b) **अन्य सदस्य** :–

कम से कम चार और अधिक से अधिक जो कि निर्धारित किये जाएँ, इनमें एक आवश्यक रूप से महिला होगी।

**योग्यताएँ**

वे व्यक्ति सदस्य बनने के योग्य होंगे जो निम्न योग्यता पूरी करते हो :–

1 35 वर्ष से कम उम्र के हो।

2 मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से स्नातक हो।

3 योग्यता, सत्यनिष्ठा एवं ख्याति प्राप्त होने के साथ उसे पर्याप्त ज्ञान तथा अर्थशास्त्र, विधि, वाणिज्य, लेखाशास्त्र, उद्योग, जन–सामान्य के मामलें या प्रशासन सम्बन्धी समस्याओं का कम से कम 10 वर्ष का अनुभव हो।

इसमें न्यायिक क्षेत्र की पृष्ठभूमि वाले सदस्यों की संख्या 50 प्रतिशत् से अधिक नही हो सकेगी।

यहाँ न्यायिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों का आशय ऐसे व्यक्तियों से है जिन्हें जिला स्तर या ट्रिब्यूनल के समान स्तर पर पीठासीन अधिकारी के रूप में कार्य करने का कम से कम 10 वर्ष का ज्ञान एवं अनुभव हो।

**क्षेत्राधिकार (धारा 21)**

**राष्ट्रीय आयोग के क्षेत्राधिकार में निम्न शिकायतों को माना जायेगा।**

c) जहाँ माल या सेवा का मूल्य या मुआवजें के दावे की राशि एक करोड़ रूपये से अधिक हो।

d) राज्य आयोग के आदेश के विरूद्व की गई अपील।

e) जब राष्ट्रीय आयोग को लगता हो कि राज्य आयोग ने अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया है या अवैधानिक रूप से कार्य किया है तो राज्य आयोग के समक्ष विचाराधीन मामलों को वह मँगवा सकेगा और आदेश पारित कर सकेगा।

**शिकायतों का निपटारा (धारा 22)**

राष्ट्रीय आयोग की शिकायतों का निपटारा करने के लिए दीवानी न्यायालय के अधिकार प्राप्त होंगे जो इस अधिनियम की धारा 13(4), (5), (6) में वर्णित है (इनका विवेचन पूर्व में किया जा चुका है।) इसके अलावा उसे धारा (14) (प) () के अनुकूल विरोधी पक्ष को कार्य करने का आदेश देने का अधिकार होगा। वह केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का अनुसरण करेगा।

इस सम्बन्ध में वर्तमान में लागू प्रक्रिया जो उपभोक्ता सरंक्षण नियम, 1987 की धारा 14 में वर्णित है, निम्नलिखित है :–

1. शिकायत व्यक्तिशः या प्रतिनिधि के माध्यम से या रजिस्टर्ड डाक द्वारा राष्ट्रीय आयोग को प्रस्तुत की जायेगी। शिकायत में निम्न तथ्यों को प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है :–

a) शिकायतकर्ता का नाम, पता तथा विवरण।

b) शिकायत में विरोधी पक्षकार या पक्षकारों के नाम, पते व विवरण।

c) शिकायत सम्बन्धी तथ्य तथा शिकायत उत्पन्न होने का समय एवं स्थान।

d) शिकायत में वर्णित आरोपों को पुष्ट करने वाले दस्तावेज।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

e) अपेक्षित राहत जो शिकायताकर्ता द्वारा माँगी गई हो।

2. राष्ट्रीय आयोग शिकायत के निपटारे के लिए इस अधिनियम की धारा 13 (1) तथा (2) का अनुसरण करेगा।

3. शिकायत की सुनवाई के दिन पक्षकारों को व्यक्तिगत रूप से अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से उपस्थित होना होगा। यदि शिकायतकर्ता का उसका प्रतिनिधि उपस्थित नही होता है तो राष्ट्रीय आयोग शिकायत को रद्द कर सकेगा। विरोधी पक्ष या उसके प्रतिनिधि के उपस्थित न होने पर एक्स–पार्टी निर्णय किया जा सकेगा।

4. राष्ट्रीय आयोग कभी भी कार्यवाही को स्थगित कर सकेगा, परन्तु शिकायत पर निर्णय, जब प्रयोगशाला द्वारा जॉच की आवश्यकता न हो तो जहाँ तक संभव हो, तीन माह के भीतर, देना होगा।

5. शिकायत से सन्तुष्ट होने के दशा में राष्ट्रीय आयोग दोषों को दूर करने, माल का प्रतिस्थापन करने, कीमत वापिस करने तथा मुआवजा भुगतान करने के आदेश दे सकेगा।

**अपील (धारा 23)**

राष्ट्रीय आयोग के आदेश से असन्तुष्ट या पीड़ित पक्ष आदेश की तिथि के 30 दिन के भीतर उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकेगा।

उच्चतम न्यायालय अपील को निर्धारित अवधि के समाप्त होने के पश्चात् भी स्वीकार कर सकेगा, बशर्ते कि वह इस बात से सन्तुष्ट है कि देरी का कारण उचित एवं न्यायसंगत है।

परन्तु राष्ट्रीय आयोग के आदेश के अनुसार यदि किसी पक्ष को कुछ धन का भुगतान करना है तो ऐसे अपीलार्थी की अपील जब तक उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वीकार नही की जायेगी जब तक कि वह उस धन का 50 प्रतिशत् या 50,000 रूपये जो भी उसके द्वारा जमा नही करा दिया गया हो।

**बोध प्रश्न**

7. जिला मंच का गठन एवं क्षेत्राधिकार क्या है?

8. उपभोक्ता विवाद निवारण एजेन्सी कौन–कौन सी है?

## 1.11 सारांश

उपभोक्ता कल्याण देश की नीति के परिचालन हेतु उपभोक्ता सरंक्षण अधिनियम, 1986 पारित किया गया जो कि जम्मू एवं कश्मीर राज्य की छोड़कर सम्पूर्ण भारत पर लागू है। इस अधिनियम का मुख्य उद्वेश्य उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना एवं उपभोक्ता विवादों के निपटारे को त्वरित एवं आसान व्यवस्था करना है।

इस अधिनियम की धारा 2 के अन्तर्गत प्रमुख शब्दों को परिभाषित किया गया है। जिनमें शिकायतकर्ता, शिकायत, उपभोक्ता, उपभोक्ता विवाद, दोष, माल अनुचित व्यापारिक व्यवहार आदि प्रमुख है। उपभोक्ता वह है जो प्रतिफल के बदले माल या सेवा का क्रय करता है।

**इस अधिनियम की धारा 6 में उसे निम्न अधिकार प्राप्त है :–**

1. सुरक्षा का अधिकार
2. संसूचित किये जाने का अधिकार
3. पहुँच का अधिकार
4. सुनवाई का अधिकार
5. क्षतिपूर्ति का अधिकार
6. उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार

इस अधिनियम के अन्तर्गत उपभोक्ताओं के विवादों को निपटाने के लिए जिला मंच, राज्य आयोग एवं राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की जायेगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

## 1.12 प्रमुख प्रावधान एवं शब्दावली

- उपभोक्ता सरंक्षण अधिनियम 5 दिसम्बर, 1986 को पारित किया गया। इसे राष्ट्रपति की स्वीकृति 24 दिसम्बर, 1986 को मिली।
- माल के उपभोक्ता से आशय किसी भी ऐसे व्यक्ति से है जो प्रतिफल के बदले माल खरीदता है। इसमें यह व्यक्ति भी सम्मिलित है जो अपने स्वरोजगार के लिए किसी माल का उपयोग करता है। किन्तु इसमें ऐसा कोई व्यक्ति सम्मिलित नही है जो पुनः विक्रय के लिए या व्यापारिक उद्देश्य से माल क्रय करता है।
- सेवाओं के उपभोक्ता से तात्पर्य किसी भी ऐसे व्यक्ति से है प्रतिफल के बदले किसी सेवा को भाड़े पर लेता है या उपयोग करता है। इसमें वह व्यक्ति भी सम्मिलित है जो ऐसी सेवाओं का लाभ उठाता है। किन्तु इसमें वह व्यक्ति सम्मिलित नही है जो ऐसी सेवाओं
- उपभोक्ता विवाद से तात्पर्य किसी ऐसे विवाद से है जो किसी व्यक्ति द्वारा उसके विरूद्व षिकायती द्वारा की गई षिकायत मे सम्मिलित आरोप से इनकार करने से उत्पन्न होता है।
- सेवा से तात्पर्य किसी प्रकार की सेवा से है जो सम्भवी उपयोगकर्ताओं को उपलब्ध की जाती है। किन्तु, इसमें
  1 निःशुल्क रूप से दी जाने वाली सेवाएँ, तथा
  2 व्यक्तिगत सेवा अनुबन्ध के अधीन प्रदान की जाने वाली सेवाएँ सम्मिलित नही है।
- प्रतिबन्धात्मक व्यापाद व्यवहार से तात्पर्य किसी भी ऐसे व्यापारिक व्यवहार से है जो किसी माल या सेवा के
  1 मूल्य
  2 आपूर्ति की षर्तों अथवा
  3 आपूर्ति के प्रवाह से चालाकी से इस प्रकार प्रभावित करने की प्रवृति रखता है जिससे उपभोक्ताओं पर अनुचित लागत या प्रतिबन्धों को थोपा नही जा सके। इसमें ऐसे व्यवहार भी सम्मिलित है जिनके कारण माल या सेवाओं के मूल्य में वृद्वि होती है अथवा जिनके कारण उपभोक्ताओं को किसी माल या सेवा के क्रय से पूर्व किसी अन्य माल या सेवा को क्रय करना पड़ता है।

## 1.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

| | | | |
|---|---|---|---|
| i. | **व्यापारिक सन्नियम** | :– | ड़ॉ.बी.एस माथुर के.बी. सक्सेना |
| | | | डॉ. नरसिंह बिन्नासी,रमेश बुक डिपों – जयपुर |
| ii. | **व्यापारिक सन्नियम** | :– | डॉ. आर.एस. नौलखा,रमेश बुक डिपों – जयपुर |
| iii. | **उपभोक्ता सरंक्षण अधिनियम** | :– | डॉ. मीतल लॉ हाऊस |
| iv. | **उपभोक्ता सरंक्षण अधिनियम** | :– | लॉ हाऊस, जोधपुर |

## 1.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. संकेत भाग 1.3.4 के अनुच्छेद को पढिए और अपना उत्तर दीजिए।
2. संकेत भाग 1.3.2 के अनुच्छेद का पढिए और अपना उत्तर दीजिए।
3. संकेत भाग 1.3.9 के अनुच्छेद का पढिए और अपना उत्तर दीजिए।
4. केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद् की स्थापना करती है।
5. कुल सदस्य संख्या 150 से अधिक नही हो सकती है।
6. संकेत भाग 1.8 एवं 1.8.1 के अनुच्छेद को पढिए और अपना उत्तर दीजिए।
7. उपभोक्ता विवाद निवारण एजेन्सी तीन है :– जिला मंच, राज्य आयोग एवं राष्ट्रीय आयोग।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

# भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932

## इकाई –2 भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932

इकाई की रूपरेखा


2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना एव प्रभाव क्षेत्र

2.2 साझेदारी का अर्थ

2.3 साझेदारी के लक्षण

2.4 साझेदारी की कसौटी

2.5 साझेदारी के प्रकार

2.6 साझेदारों के प्रकार

बोध प्रश्न

2.7 साझेदारी की स्थापना – साझेदारी संलेख

2.8 साझेदारी फर्म का पंजीयन

2.9 अवयस्क साझेदार

2.10 अवयस्क के अधिकार एवं दायित्व

बोध प्रश्न

2.11 साझेदारों के कर्तव्य

2.12 साझेदारों के अधिकार

2.13 तीसरा पक्षकार एवं साझेदार

2.14 साझेदार का प्रवेश

2.15 साझेदार का निवृत होना

2.16 साझेदार का निष्कासन

2.17 साझेदार का दिवालिया होना

2.18 साझेदार की मृत्यु

बोध प्रश्न

2.19 साझेदारी फर्म का विघटन, विघटन का अर्थ, फर्म का विघटन,


Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

साझेदारी का विघटन

2.20 साझेदारी एवं फर्म के विघटन में अन्तर

2.21 फर्म के विघटन की विधियाँ

2.22 विघटन के परिणाम

2.23 विघटन पर साझेदारों के निपटारे के विधियाँ

बोध प्रश्न

2.24 सारांश

2.25 शब्दावली

2.26 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.27 बोध प्रश्नों के उत्तर

## 2.0 उद्देश्य

इस अधिनियम के निम्नलिखित उद्देश्य है :–

1. व्यापार के लोकप्रिय एवं प्राचीन रूप साझेदारी को नियमों के अन्तर्गत लाना अनिवार्य प्रतीत हुआ।
2. भारतीय अनुबन्ध अधिनियम में कई प्रावधानो में कमियॉ एवं अपर्याप्तताओं के कारण इस अधिनियम का निर्माण किया गया।

## 2.1 प्रस्तावना एवं प्रभाव क्षेत्र

सन् 1932 से पूर्व भारत में कोई अलग से साझेदारी अधिनियम नहीं था। साझेदारी अनुबन्धों के लिए भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 239 से 266 तक लागू होती थी। जिन्हें सन् 1932 में साझेदारी के लिए अलग से विधान बनाने के कारण निरस्त कर दिया गया थज्ञ। वास्तव में, भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के उक्त प्रावधानों में कई अपर्याप्तताओं के कारण ही भारतीय साझेदारी अधिनियम का निर्माण किया गया हैं।

यह अधिनियम 1 अक्टूबर, 1932 को लागू हुआ था तथा यह जम्मू तथा कश्मीर को छोडकर समस्त भारतवर्ष में आज भी लागू होता है। इस अधिनियम में कुल 74 धाराएँ।, आठ अध्याय तथा एक अनुसूची है।

## 2.2 साझेदारी का अर्थ

भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा–4 के अनुसार साझेदारी की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है :–

''साझेदारी उन लोगों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध है जो किसी ऐसे लाभ को अपस में बॉटने को सहमत हुए हैं जो किसी ऐसे व्यापार से उत्पन्न हुआक हो जिसे वह सब या सबकी ओर से कार्य करने वाले उनमें से किसी एक के द्वारा चलाया जायें।

वे समस्त व्यक्ति जो एक दूसरे के साथ साझेदारी में सम्मिलित हुए हैं, व्यक्तिगत रूप से साझेदार तथा सामूहिक रूप से फर्म कहलाते हैं और जिस नाम से वे कारोबार चलाते हे वह फर्म का नाम कहलाता हैं।

### पोलक के अनुसार

''साझेदारी ऐसे लोगों के बीच अस्तित्व रखने वाला सम्बन्ध हैं जिन्होंने सबके द्वारा या सबकी ओर से उनमें से किसी के द्वारा किये जाने वाले व्यापार के लाभ में हिस्सा बटानें का ठहराव किया है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अंग्रेजी राजनियम के अनुसार ''साझेदारी लाभ की दृष्टि से मिलजुल कर व्यापार करने के लिए व्यक्तियों के मध्य पाया जाने वाला सम्बन्ध है।''

## 2.3 साझेदारी के लक्षण

विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर साझेदारी के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है :–

### 1. साझेदारी दो या दो से अधिक व्यक्तियों का समूह है

साझेदारी के निर्माण के लिए कम से कम दो व्यक्तियों का होना आवश्यक हैं, क्योंकि दो व्यक्तियों के बिना कोई अनुबन्ध नहीं हो सकता और बगैर अनुबन्ध के साझेदारी का उत्पन्न होना असम्भव है। चूँकि साझेदारी पृथक अस्तित्व वाली संस्था नहीं मानी जाती बल्कि यह तो उन व्यक्तियों के मध्य सम्बन्ध हैं जो लाभ प्राप्त करने के लिए मिलकर व्यापार करने को सहमत होते है। अतः इसे दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य सम्बन्ध कहा जा सकता है।

### 2. अनुबन्ध का होना

धारा 5 के अनुसार ''साझेदारी का सम्बन्ध अनुबन्ध से उत्पन्न होता है, स्थिति से नही।'' इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि साझेदारी के लिए अनुबन्ध का होना आवश्यक है। यह अनुबन्ध स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकता है। साझेदारी का यह लक्षण ही साझेदार को उस व्यवसाय से अलग करता है जो कि हिन्दू अविभाजित परिवार द्वारा चलाया जाता हैं।

**उदाहरण**

''आर'' एक साझेदारी फर्म का साझेदार है। उसका एक व्यस्क पुत्र 'एस' है। राम की मृत्यु पर ''सी'' इस फर्म से अपने पिता के भाग की मॉग तो कर सकता है, लेकिन फर्म का साझेदार बनने का पैतृक अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता है जब तक कि वह अन्य साझेदारों से साझेदार बनाने का अनुबनध नहीं कर लेता हैं।

### 3. कारोबार का होना

किसी भी साझेदारी के लिए कारोबार का होना आवश्यक हैं, क्योकि कुछ व्यक्तियों का समूह जिसका उद्देश्य काराबार करना नहीं है, उसे साझेदारी नहीं कहां जा सकता। यह कारोबार वैध होना चाहिए। इसके अतिरिक्त कारोबार का स्वभाव बारम्बरता का होना आवश्यक हैं। किन्हीं व्यक्तियों के द्वारा कोई एक सौदा कर लेना कारोबार की श्रेणी में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है।

**उदाहरण**

'अ' 'ब' ओर 'स' चोरी करने के लिए ओर चोरी के माल को आपस में बॉटने क लिए ठहराव करते हैं, इसे साझेदारी नहीं कहा जायेगा।

### 4. लाभ का बंटवारा

साझेदारी का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना तथा उसे आपस में बॉटना होता है। केवल कल्याण या परोपकार के उद्देश्य से कुछ व्यक्तियों का समूह साझेदारी नहीं माना जा सकता है। इसी प्रकार यदि लाभों में बॉटने पर प्रतिबन्ध है या लाभों पर किसी दशा में साझेदारों का अधिकार नहीं है तो ऐसा संगठन भी साझेदारी नहीं माना जाएगा। यहॉ यह स्पष्ट करना उचित ही होगा कि साझेदारी के निर्माण के लिए हानियों का बंटवारा आवश्यक नहीं हैं। इस सम्बन्ध में पक्षकारों द्वारा हानि का बंटवारा न करने का अनुबन्ध किया जा सकता है।

**उदाहरण**

'वी', 'एन', 'यू' यह ठहराव करते है कि वे अपने महाविद्यालय के विद्यार्थियों की सहायता के लिए पुस्तके लिए मॅगा कर बिना किसी लाभ के पुस्तके विक्रय करेगें तो यह साझेदारी नहीं मानी जाएगी।

### 5. कारोबार का संचालन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

साझेदारी के व्यवसाय का संचालन या तो सभी व्यक्यिों के द्वारा या सभी व्यक्तियों की ओर से किसी एक व्यक्ति के द्वारा किया जाना चाहिए। जब सभी व्यक्तियों की ओर से एक साझेदार द्वारा कारोबार का संचालन किया जाता हैं। तब भी अन्य साझेदार जो संचालन में भाग नहीं लेते, फर्म के कार्यो के लिए बाध्य होगें।

### 6. असीमित दायित्व

जब तक साझेदारी के अनुबन्ध की शर्तो के आधार पर किसी साझेदार के दायित्व को सीमित नहीं कर दिया जाये तब तक यह माना जाता है कि साझेदारी के ऋण के प्रति प्रत्येक साझेदार का दायित्व असीमित होता है। जिन व्यक्तियों से फर्म कोई व्यवहार करती है वो अपना ऋण किसी भी साझेदार से या सामूहिक रूप से सभी को प्राप्त हो सकते हैं।

### 7. प्रत्येक साझेदार अपनी फर्म का एजेण्ट होता है

साझेदारी की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि फर्म के कार्य के सम्बन्ध में प्रत्येक साझेदार को फर्म का एजेन्ट माना जाता है। जिस प्रकार एजेन्सी के एजेन्ट के प्रत्येक अधिकृत कार्य के लिए उसका मालिक उत्तरदायी होता है। और एजेन्ट द्वारा किया गया कार्य मालिक द्वारा किया हुआ कार्य माना जाता है। उसी प्रकार साझेदारी के व्यवसाय में भी प्रत्येक साझेदार द्वारा किये गये कार्य को फर्म का कार्य माना जाता है।

### 8. साझेदारी में प्रत्येक साझेदार मालिक और एजेन्ट दोनो के रूप में होता है

साझेदारी उपक्रम में प्रत्येक साझेदार दोहरा रूप अपनाता है। वह फर्म का साझेदारों के साथ, मालिक तथा कार्यो के लिए एजेन्ट भी होता है, क्योंकि उसके द्वारा किये गये फर्म सम्बन्धी कार्यो के लिए फर्म उत्तरदायी होती है।

### 9. अधिकतम संख्या पर रोक

साझेदारी अधिनियम के अनुसार साझेदारों की अधिकतम संख्या पर कोई रोक नहीं हैं। भारतीय कम्पनी विधान के अनुसार एक सामान्य कारोबार करने वाली साझेदारी संस्था में 20 से अधिक साझेदार नहीं हो सकते और एक बैंकिग का कारोबार करने वाली साझेदारी संस्था में 10 से अधिक सदस्य नहीं हो सकते।

### 10. पारस्परिक सद्भाव

साझेदारी संगठन की सफलता पारस्परिक सद्भाव पर ही आधारित होती है तथा इसके अभाव में साझेदारी का संचालन असम्भव होता हैं।

## 2.4 साझेदारी की कसौटी

प्रायः यह निश्चित करना कठिन होता है कि दो या दो से अधिक व्यक्तियों का समूह साझेदारी है या नही ? यह ज्ञात करने के लिए जो मापदण्ड अथवा रीति अपनाई जाती है वह साझेदारी की कसौटी कहलाती है। बहुत सी परिस्थितियाँ ऐसी होती है कि कुछ व्यक्तियों को साझेदार मान लिया जाता है लेकिन वास्तव में वे साझेदार नहीं होते। उदाहरणार्थ पक्षकारों द्वारा कारोबार चलाया जा रहा है लेकिन वे परस्पर लाभों का बंटवारा नहीं करते, या वे लाभों का बंटवारा तो करते हैं लेकिन वे परस्पर एजेन्ट नहीं है। अतः साझेदारी की विद्यमानता के लिए सभी आवश्यक तत्वों की विद्यमानता को एक साथ परखना होगा। भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 4, 5 और 6 इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण है जिनके आधार पर साझेदारी की विद्यमानता का फैसला किया जा सकता है।

### 1. साझेदारी के लक्षणों की उपस्थिति

दो या दो से अधिक पक्षकारों के मध्य सम्बन्धों को तब ही साझेदारी माना जायेगा जबकि साझेदारी के सभी लक्षणों की विद्यमानता एक साथ हो।

धारा 4 के अनुसार ''साझेदारी उन व्यक्तियों का पारस्पतरिक सम्बन्ध है जो किसी ऐसे कारोबार के लाभों को बॉटने के लिए सहमत हुए हैं जिसका संचालन सभी या सभी की ओर से किसी एक साझेदार द्वारा किया जाता है।''

**इस धारा के अनुसार साझेदारी की कसौटी के निम्नलिखित आधार है**

1. पारस्परिक ठहराव का होना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. कारोबार का होना

3. लाभ कमाने का उद्देश्य

4. लाभ का आपस में बॉटना।

5. कारोबार का उन सब के द्वारा या उनकी तरफ से किसी एक या एक से अधिक के द्वारा चलाया जाना अर्थात् पारस्परिक एजेन्सी का सम्बन्ध होना।

**2. साझेदारी के सम्बन्धों की उत्पति अनुबन्ध से हो**

धारा 5 के अनुसार ''साझेदारी का सम्बन्ध अनुबन्ध से उत्पन्न होता है न कि किसी स्थिति से।'' इसके अनुसार साझेदारों के मध्य ठहराव का होना आवश्यक है। यदि दो व्यक्ति मिलकर पुश्तैनी व्यापार चलाते हैं तथा परम्परानुसार लाभ बॉटते हैं तो वे साझेदार नहीं कहलायेगें। धारा 5 में यह भी स्पष्ट किया गया है कि यदि अविभाजित हिन्दू परिवार के सदस्य कोई व्यापार चलाते है अथवा बौद्ध धर्म का मानने वाले पति–पत्नि कोई व्यापार चलाते है तो वह साझेदार नहीं कहलायेगें।

**3. साझेदारी की विद्यमानता के लिए पक्षकारों के मध्य वास्तविक सम्बन्धों को देखना होगा**

धारा 6 के अनुसार ''यह निश्चित करने में कि कई व्यक्तियों का समूह फर्म हैं या नहीं, अथवा कई व्यक्ति किसी फर्म में साझेदार हैं या नहीं, पक्षकारों के बीच वास्तविक सम्बन्ध को देखना होगा, जो समस्त सम्बन्धित तथ्यों पर एक साथ विचार करने पर प्रकट हो सकता है।'' साझेदारों के मध्य परस्पर एजेन्सी के सम्बन्ध हो। अर्थात् साझेदारी में प्रत्येक साझेदार प्रधान एवं एजेन्ट दोनो रूपों में कार्य करता हो।

उपर्युक्त धारा 4,5 और 6 के आधार पर यह कहा जा सकता है कि किसी समूह के मध्य साझेदारी के सम्बन्ध हैं या नहीं

**4. लाभो में हिस्सा पाना साझेदारी की विद्यमानता का अकाट्य प्रमाण नहीं**

लाभो में भाग लेना साझेदारी की विद्यमानता का एक महत्वपूर्ण आधार तो है लेकिन यह अन्तिम एवं एकमात्र प्रमाण नहीं, क्योंकि धारा 6 में दिये गये स्पष्टीकरण नं. 2 के अनुसार निम्नलिखित परिस्थितियों में लाभ में हिस्सा पाने वाला व्यक्ति साझेदार नहीं माना जाता हैं।

**1. ऋणदाता द्वारा लाभ लेना**

जब उधार देने वाला व्यक्ति उन व्यक्तियों से जो कारोबार चलाते हैं या चलाने वाले हैं, लाभ प्राप्त करता हैं, तो उनसे प्राप्त लाभ में हिस्सा उसे साझेदार नहीं बनाता।

**2. नौकर या एजेण्ट**

यदि फर्म के किसी नौकर या एजेन्ट को उसके पारिश्रमिक के रूप में लाभ का कोई अंश दिया जाता है तो वह फर्म का साझेदार नहीं बन जाता।

**3. ख्याति का विक्रेता**

जो व्यक्ति अपने कारोबार की ख्याति बेचता है, उसे कभी–कभी खरीदने वाला व्यक्ति अपने लाभों का अंश देने के लिए मान जाता है। इस तरीके से लाभ पाने वाला व्यक्ति कारोबार में साझेदार नहीं बन जाता।

**4. विधवा एवं बच्चे**

यदि किसी मृत साझेदार की विधवा या उसके बच्चें को हर वर्ष पालन–पोषण के लिए लाभ में से कोई हिस्सा दिया जाता है तो वह इस कारण साझेदार नहीं बन जाते।

**5. भूतपूर्व स्वामी या अंश स्वामी**

यदि किसी कारोबार का भूतपूर्व या आंशिक स्वमी कारोबार के लाभ में से ख्याति के प्रतिफल के रूप में अथवा अपने हिस्सें के रूप में कुछ हिस्सा प्राप्त करता हो तो वह साझेदार नहीं बन जाता।

**6. साझेदार को सह–स्वामित्व से भिन्न समझना चाहिएः–**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सह–स्वामित्व से आशय है कि किसी सम्पति या वस्तु के एक से अधिक स्वामी होते है, इसमें न तो अनुबन्ध का होना, न कारोबार का होना और न लाभ के बॅटवारे का होना आवश्यक है। परन्तु साझेदारी से आशय है एक से अधिक व्यक्तियों का किसी कारोबार को चलाना एवं उसके लाभ को बॉटने के उद्देश्य से किसी ठहराव के आधार पर कार्य करना।

## 2.5 साझेदारी के प्रकार

साझेदारी अधिनियम की धारा 7 एवं 8 के अनुसार साझेदारी को इसके उद्देश्य के आधार पर तीन भागों में बांटा जा सकता है, जो कि निम्न है :–

1. ऐच्छिक साझेदारी
2. विशेष साझेदारी
3. निश्चित अवधि की साझेदारी

### 1. ऐच्छिक साझेदारी

धारा 7 के अनुसार ''जहॉ साझेदारों के अनुबन्ध के अनुसार साझेदारी की अवधि या साझेदारी की समाप्ति के सम्बन्ध में कोई प्रावधान नहीं हो तो इसे ऐच्छिक साझेदारी कहा जायेगा।''

इस परिभाषा के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि ऐच्छिक साझेदारी का सारतत्व निम्न दो बातों में निहित माना जा सकता है :–

1. साझेदारी के अनुबन्ध में कोई अवधि निर्धारित नहीं की जाती, तथा
2. साझेदारी अनुबन्ध में साझेदारी की समाप्ति के विषय में कोई प्रावधान नहीं होते हैं।

धारा 43 के अनुसार ऐच्छिक साझेदारी को किसी भी साझेदार द्वारा सूचना देकर समाप्त किया जा सकता हैं।

तियागराजन बनाम मुकप्पा के वाद में भारतीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णीत किया कि साझेदारी ऐच्छिक है या नहीं, इसका निर्धारण प्रायः अनुबन्ध की संरचना पर निर्भर करता है।

### 2. विशिष्ट साझेदारी

साझेदारी अधिनियम की धारा 8 के अनुसार जब साझेदारी की स्थापना किसी विशेष कार्य या उपक्रम के लिए की गई है तो यह विशिष्ट साझेदारी कहलायेगी।

धारा 42 के अनुसार विशिष्ट साझेदारी इस विशेष कार्य या विशेष उपक्रम की समाप्ति पर स्वतः ही समाप्त हो जायेगी। लेकिन इस कार्य अथवा उपक्रम के पूरा होने से पूर्व साझेदारी सभी साझेदारों की सहमति से ही समाप्त की जा सकती है।

### 3. निश्चित अवधि की साझेदारी

जब साझेदारी के साझेदार यह निर्धारित करते हैं कि साझेदारी के अन्तर्गत कारोबार निश्चित अवधि तक चलाया जायेगा तो इसे निश्चित अवधि की साझेदारी कहां जाता हैं।

इसे साझेदारी की जब अवधि समाप्त हो जाती है तो साझेदारी का भी अन्त हो जाता है। परन्तु अवधि की समाप्ति के पश्चात् भी यदि साझेदारी चालू रखी जाती है तो यह ऐच्छिक साझेदारी बन जाती है और किसी ठहराव के अभाव में साझदारों के अधिकार एवं कर्तव्य पूर्ववत बने रहते हैं।

## 2.6 साझेदारों के प्रकार

साझेदारों को निम्नलिखित विभिन्न वर्गो में बांटा जा सकता है।

### 1. सक्रिय साझेदार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यह वह साझेदार होता है जो फर्म के कारोबार एवं संचालन में सक्रिय रूप से भाग लेता हैं। ऐसे साझेदार के समस्त वैद्य कार्यो के लिए फर्म बाध्य (दायीं) होती है। ऐसे साझेदार द्वारा फर्म से निवृत होने के बाद कार्यो से बचने के लिए निवृति की सार्वजनिक सूचना देनी होगी।

**2. निष्क्रिय साझेदार**

ऐसा व्यक्ति जो केवल फर्म को पूँजी देता है और लाभ–हानि में हिस्सा बॅटाता हैं, लेकिन फर्म के संचालन में भाग नहीं लेता वह निष्क्रिय या सुषुप्त साझेदार कहलाता है। यह अन्य साझेदारों की भॉति ही फर्म के कार्य के लिए उत्तरदायी होता है। इसके द्वारा निवृत होने की सूचना देना आवश्यक नहीं है। इसके निवृत होते ही फर्म के कार्यो के सम्बन्ध में उसका कोई उत्तरदायित्व नहीं रहता हैं।

**3. नाम मात्र का साझेदार**

यह वह साझेदार होता है, जो केवल फर्म में अपना नाम सम्मिलित कराता है। न तो यह पंजी लगता है और न ही यह लाभ–हानि में भाग लेता है। यह फर्म के कार्यो के लिए अन्य पक्षों के प्रति पूर्ण जिम्मेदार होता हैं। बाहरी व्यक्तियों को इसके साझेदार होने का ज्ञान होता है, जबकि निष्क्रिय साझेदार को बाहरी व्यक्ति नहीं जानते।

**4. सीमित साझेदार**

यह वह साझेदार होता है, जिसका दायित्व फर्म में उसके द्वारा लगाई गई पूंजी तक ही सीमित होता है। साधारणतया प्रत्येक साझेदार का दायित्व असीमित होता है, लेकिन भारतीय साझेदारी अधिनियम के अनुसार एक अवयस्क को सीमित साझेदार बनाया जा सकता हैं।

**5. केवल लाभ में साझेदार**

जो केवल फर्म के लाभों में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकारी होता है लेकिन फर्म के नुकसानों में भाग नहीं लेता। यह साझेदार अन्य साझेदारों की भॉति अन्य पक्षों के प्रति पूर्ण उत्तरदायी होता हैं।

**6. उप–साझेदार**

जब कोई साझेदार फर्म से प्राप्त अपने हिस्से के लाभ को किसी अन्य व्यक्ति के साभ विभाजित करने का अनुबन्ध करता है, तो वह उप–साझेदार कलायेगा। ऐसा उप–साझेदार फर्म या अन्य पक्षों से कोई सम्बन्ध नहीं रखता हैं।

**7. गत्यावरोध या प्रदर्शन द्वारा साझेदार धारा "28" के अनुसार**

यदि कोई व्यक्ति मौखिक या लिखित शब्दों या आचरण द्वारा कोई ऐसा कार्य करता है अथवा जान–बूझ कर फर्म में अपने को साझेदार होने का प्रतिनिधित्व या प्रदर्शन करने किये जाने की स्वीकृति देता है, तो वह साझेदार की भाँति किसी भी ऐसे व्यक्ति के प्रतिदायी होगा जिसनें ऐसे प्रदर्शन या प्रतिनिधित्व के विश्वास पर फर्म को ऋण दिया है, चाहे वह व्यक्ति जिसने साझेदार होने का प्रदर्शन किया है या स्वीकार किया है, इस बात से अवगत था या नही कि ऐसा प्रदर्शन या प्रतिनिधित्व ऋण प्रदान करने वाले व्यक्ति की जानकारी में पहुँच गया था।"

**8. कार्यकारी साझेदार**

ऐसा साझेदार जिसे उसकी विशिष्ट याग्यताओं को ध्यान में रखते हुए संस्था के प्रबन्ध एवं संचालन का कार्य सौपा जाता है, उसे कार्यकारी साझेदार के नाम से जाना जाता है। कार्यकारी साझेदार को सामान्यतया लाभों में हिस्सेदारी के अतिरिक्त एक निश्चित वेतन भी प्राप्त होता है। यद्यपि इसके सभी वैद्य कार्यो के लिए अन्य साझेदार तीसरे पक्षकार के प्रतिदायी होते हैं।

**बोध प्रश्न** :–

1. साझेदारी की परिभाषा दीजिए?
2. निष्क्रिय साझेदार कौन है?
3. क्या लाभों में भाग लेना व्यक्ति को फर्म में साझेदार बना देता है?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

साझेदारी का निर्माण लिखित या मौखिक शब्दों या आचरण द्वारा किया जा सकता हैं। साझेदारी के निर्माण के समय सम्बन्धित पक्षकारों द्वारा निम्न तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

**1. पारस्परिक सद्विश्वास**

क्योंकि साझेदारी का सम्बन्ध, विश्वासाश्रित सम्बन्ध है इसलिए यह आवश्यक है कि साझेदारों का चुनाव बड़ी सावधानी के साथ करना चाहिए। साझेदारों का चुनाव उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि पत्नी का चुनाव।

**2. वैद्य अनुबन्ध**

साझेदारी की स्थापना के समय पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि साझेदारी के अनुबन्ध में वैद्य अनुबन्ध के सभी आवश्यक लक्षण विद्यमान हैं।

**3. साझेदारी संलेख**

यद्यपि साझेदारी का अनुबन्ध मौखिक भी हो सकता है लेकिन भावी मतभेदों को दूर करने के ध्येय से साझेदारी के प्रारम्भ करने से पूर्व यह आवश्यक है कि साझेदारों के पारस्परिक अधिकारों एवं दायित्वों पर विस्तार से विचार–विमर्श कर लिया है तथा उन्हें लिखित रूप दे दिया गया हैं। इस लिखित रूप को साझेदारी संलेख के नाम से जाना जाता हैं।

**4. पंजीकरण**

यद्यपि भारतीय साझेदारी अधिनियम में साझेदारी का पंजीकरण कराया जाना अनिवार्य नहीं है, लेकिन बाहरी व्यक्तियों के विरूद्ध सभी वैद्यानिक उपचारों का लाभ प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि साझेदारी का पंजीकरण करा लिया जाये।

## 2.7 साझेदारी संलेख

**परिभाषा** :–

ऐसा दस्तावेज जिसमें साझेदारों के पारस्परिक अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों को रूप से उल्लिखित किया जाता है तो इसे साझेदारी संलेख कहते हैं। यह लिखित, हस्तांकित एवं मुद्रित दस्तावेज है। साझेदारी संलेख का उपयोग विधान की दृष्टि से तभी किया जा सकता है जबकि साझेदारी पंजीकृत है। यह भविष्य में होने वाले आपसी झगडों को निपटान करने का एक महत्वपूर्ण साधन हैं।

**1. फर्म का नाम तथा पता**

इसमें अधिनियम की धारा 58 (3) के प्रावधानों का पालन किया जाना चाहिए।

**2.** साझेदारों के नाम, व्यवसाय एवं पूर्ण पते।

**3. व्यापार का क्षेत्र तथा स्वरूप**

इसमें व्यवसाय के क्षेत्र में कौनसे कार्य आते है तथा व्यवसाय को किस स्तर पर चलाया जाना है, स्पष्ट होना चाहिए।

**4.** साझेदारी की अवधि

**5. पूँजी का योगदान**

इसमें प्रत्येक साझेदार द्वारा दी जाने वाली पूँजी की मात्रा स्पष्ट की जानी चाहिए।

**6.** लाभ–हानि विभाजन का अनुपात।

**7.** साझेदारों द्वारा फर्म से प्राप्त किये जाने वाले ऋण तथा फर्म को दिये जाने वाले ऋणों के सम्बन्ध में नियमों का स्पष्ट उल्लेख।

**8.** साझेदारों का कमीशन एवं वेतन।

**9.** आहरण तथा उन पर ब्याज भुगतान सम्बन्धी नियम।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

10. पुस्तकों को रखने, खातों के बनाने एवं अंकेक्षण कराने सम्बन्धी नियम।
11. साझेदारों के अधिकारों एवं उनकी सीमाओं का स्पष्टीकरण।
12. साझेदारों के कर्तव्यों का स्पष्टीकरण।
13. साझेदारी में नये साझेदार का प्रवेश तथा पुराने साझेदारों की निवृति सम्बन्धित नियम।
14. व्यावसायिक ख्याति के मूल्यांकन सम्बन्धी नियम एवं तरीका।
15. साझेदारी की समाप्ति सम्बन्धी नियम।
16. साझेदार की मृत्यु होने पर की जाने वाली व्यवस्था एवं उत्तराधिकार सम्बन्धी नियम।
17. मतभेद के समय पर पंच की नियुक्ति सम्बन्धी नियम।
18. साझेदार के निष्कासन सम्बन्धी नियम।

उपर्युक्त बिन्दु एक साधारण साझेदारी संलेख की विषय वस्तु को स्पष्ट करते हैं, आवश्यकतानुसार घटाया या बढ़ाया जा सकता हैं।

**फर्म**

जो व्यक्ति एक–दूसरे के साथ मिलकर साझेदारी व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए सहमत हुए हैं, उन्हें व्यक्तिगत रूप से साझेदार तथा सामूहिक रूप से फर्म के नाम से जाना जाता है।

साधारणतया प्रत्येक व्यवसाय अपनी फर्म का कोई भी नाम चुन सकता है, लेकिन व्यवसाय का चुनाव करते समय उसे निम्न नियमों का पालन करना होगा :–

1. फर्म का कोई ऐसा नाम नहीं होना चाहिए जो किसी विद्यमान व्यावसायिक संस्था से मिलता–जुलता हैं।
2. फर्म का नाम ऐसा नही होना चाहिए जो ख्याति सम्बन्धी नियमों का उल्लघंन करता हो।
3. साझेदारी अधिनियम की धारा 58 (3) के अनुसार किसी फर्म द्वारा बिना सरकार की पूर्व अनुमति से सम्राट, साम्राज्ञ, शाही, राजा, रानी, आदि शब्दों को काम में नहीं लिया जा सकता हैं।

इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व स्वास्थ्य संघ तथा जिन्ना, कायद–ए–आजम अथवा अन्य शब्द जिनसे कि राज्य पद का भान होता हो, उन्हें काम में लेने की इजाजत कानून नहीं देता हैं।

## 2.8 साझेदारी फर्म का पंजीकरण

### फर्म के पंजीकरण का आशय :–

फर्म के पंजीकरण का आशय फर्म के रजिस्ट्रार के यहॉ रखे जाने वाले फर्मो के रजिस्टर में फर्म के नाम का अभिलेखन कराने से लगाया जाता हैं। यह फर्म की विद्यमानता को निश्चित करता है जिस पर आगे साझेदारों द्वारा विवाद नहीं किया जा सकता है। साझेदारी फर्म का पंजीकरण साझेदारी की उत्पति नहीं करता बल्कि इसे साझेदारी की विद्यमानता का निश्चयात्मक प्रमाण माना जाता हैं।

फर्म का पंजीकरण कराना एच्छिक है :– साझेदारी फर्म की पंजीकरण की व्यवस्था भारत में 1932 के अधिनियम के लागू हो जाने के साथ प्रारम्भ हुई है। यह व्यवस्था 'अनिवार्य न होकर ऐच्छिक' है। इस अधिनियम के अन्तर्गत साझेदारी का पंजीयन कराना न तो अनिवार्य है और न ही पंजीकरण नहीं कराने पर किसी दण्ड की व्यवस्था है। लेकिन पंजीकरण न कराने के जो दुष्परिणाम है वे इतने कठोर है जिनसे कि साझेदारी फर्म का पंजीकरण कराया जाना एक व्यावहारिक आवश्यकता मानी जाने लगी है। इस अधिनियम के तहत निर्धारित की गई विभिन्न सीमाओं एवं दायित्वों के कारण यह आवश्यक है कि फर्म इन तमाम कठिनाइयों से बचने के लिए पंजीकरण करायें। इसकी मदद से साझेदारों के मध्य के सम्बन्धों को आसानी से जाना जा सकता है और मतभेदों का निपटारा आसान हो सकेगा।

### साझेदारी का पंजीकरण कब होना चाहिए ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पंजीकरण कराने के लिए कोई निश्चित अवधि नहीं है। फर्म का पंजीकरण साझेदारी फर्म की अवधि में कभी भी कराया जा सकता है। दावा दायर करने से पूर्व कभी भी फर्म का पंजीकरण कराया जा सकेगा।

## 2.9 अवयस्क साझेदार

साझेदारी अनुबन्ध से उत्पन्न होती है तथा एक वैद्य अनुबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता हो :–

अनुबन्ध अधिनियम की धारा 11 के अनुसार एक अवयस्क अनुबन्ध करने में अक्षम होता हैं, इसलिए एक अवयस्क के साथ एक वैद्य साझेदारी का अनुबन्ध नहीं किया जा सकता है। अतः एक अवयस्क पूर्ण रूप से साझेदार नहीं बन सकता। परन्तु भारतीय साझेदारी अधिनियम की धारा 30 के अनुसार सभी साझेदारों की सहमति (सम्मति) से अवयस्क को फर्म के लाभों में सम्मिलित किया जा सकता हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि एक अवयस्क को निम्न शर्तो के पूरा करने की स्थिति में ही साझेदारी में सम्मिलित किया जा सकता है।।

(अ) एक अवयस्क व्यक्ति को केवल फर्म के लाभों में भाग लेने के लिए ही साझेदार बनाया जा सकता हैं।

(ब) सभी साझेदारों की सहमति से ही अवयस्क को साझेदार बनाया जा सकेगा।

(स) अवयस्क को फर्म के लाभों में सम्मिलित करते समय साझेदारी का अस्तित्व होना आवश्यक है।

यदि एक अवयस्क को साझेदारी में सम्मिलित कर लिया जाता है तो उसके निम्नांकित अधिकार एवं कर्तव्य होगें।

## 2.10 अवयस्क के अधिकार

1. फर्म के लाभों में भाग लेने का अधिकार
2. फर्म के खातो को देखने एवं निरीक्षण का अधिकार :–
3. फर्म के विरूद्ध मुकदमा चलाने का अधिकार
4. फर्म से अलग होने का अधिकार
5. वयस्कता पर अधिकार

अवयस्क का दायित्व सीमित होता है। फर्म के ऋणों के लिए उसका दायित्व फर्म में उसके अंश तक ही सीमित होता है, व्यक्तिगत रूप से वह बिल्कुल उत्तरदायी नहीं होता है। (धारा 30 (3)

**अवयस्क के वयस्क होने पर स्थिति दो प्रकार की होती है**

**प्रथम :– यदि वह साझेदार रहना चाहता है तो**

1. ऐसा साझेदार फर्म के समस्त कार्यो और व्यवहारों के लिए व्यक्तिगत रूप से अन्य पक्षों के प्रति उत्तरदायी उस तिथि से माना जायेगा जिस तिथि से वह साझेदारी के लाभों में सम्मिलित किया गया था अथवा उसका असीमित दायित्व भूतलक्षी तिथि से माना जाता है।
2. फर्म की सम्पति एवं लाभों में उसका वही हिस्सा रहेगा जो एक अवयस्क के रूप में पहले था।
3. पूर्ण साझेदार बनने पर उसके अधिकार एवं दायित्व वही रहते हैं जो एक सामान्य साझेदार के होते हैं।

**द्वितीय :– यदि वह साझेदार नहीं रहने की घोष्णा करता है या नहीं रहना चाहता है, तो**

1 उसके साझेदार न रहने की सार्वजनिक सूचना देने की तिथि तक उसके अधिकार एवं दायित्व वही रहेगें जो कि अवयस्क की स्थिति में थे। फर्म से अलग होने की सूचना देने के बाद के कार्यो के लिए फर्म में उसके भाग पर कोई दायित्व नहीं रहेगा। उसे फर्म की सम्पति में से अपना भाग प्राप्त करने के लिए साझेदारों पर वाद प्रस्तुत करने का अधिकार होता हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यदि अवयस्क साझेदार वयस्क होने पर यह सूना देने के बाद कि वह साझेदार रहना स्वीकार नहीं करता, परन्तु वह ऐसा प्रदर्शन करता है जैसा कि वह साझेदार है तो वह तीसरे पक्षकारों के प्रति प्ररदर्शन द्वारा साझेदार माना जावेगा।

जब कोई अवयस्क व्यक्ति किसी फर्म के लाभ के लिए सम्मिलित किया गया था तो यह सिद्ध करने का भार कि उसे वयस्क होने के 6 माह बाद तक जानकारी नहीं थी कि वह साझेदारी के लाभों में सम्मिलित था, अवयस्क पर होगा।

**बोध प्रश्न :–**

4. साझेदारी संलेख से आप क्या समझते है?
5. पंजीकरण कब प्रमाणित माना जाता है?
6. क्या अवयस्क साझेदार बन सकता है?

## 2.11 साझेदारों के कर्तव्य

### 1. सद्भावना का कर्तव्य

प्रत्येंक साझेदार का यह कर्तव्य है कि साझेदारी के कारोबार को पूर्ण सद्भावना तथा अधिक से अधिक सामान्य हित में चलाये और वे एक–दूसरे के प्रति सद्भावना रखें।

### 2. सही हिसाब देने का कर्तव्य

प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि वह अन्य साझेदारों या उनके उत्तराधिकारियों को सही–सही हिसाब दे और फर्म को प्रभावित करने वाली बातों से अवगत कराये। चूँकि प्रत्येक साझेदार फर्म के लिए एजेन्ट होता है इसलिए उसे फर्म से सम्बन्धित कोई भी बात साझेदारों से नही छुपानी चाहिए।

### 3. समस्त सूचनाएँ प्रदान करने का कर्तव्य

साझेदारी अधिनियम की प्रत्येक साझेदार का यह एक महत्वपूर्ण कर्तव्य है कि वह फर्म को प्रभावित करने वाली समस्त जानकारियॉ दूसरे साझेदारों को प्रदान करे, क्योंकि प्रत्येक साझेदार फर्म का एजेन्ट होता है इसलिये यह आवश्यक है कि वह किसी भी तथ्य को अपने तक सीमित न रखें।

### 4. सामान्य हित के लिए कारोबार को चलाने का कर्तव्य

प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि वह संस्था के कारोबार को सभी साझेदारों के अधिकतम लाभ के लिए चलाये। अर्थात् उसे अपने ज्ञान एवं कौशल का उपयोग सामान्य हित में करना होगा।

### 5. कपट के लिए क्षतिपूर्ति का कर्तव्य

प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि वह फर्म की प्रत्येक उस हानि के लिए क्षतिपूर्ति करे जो फर्म के कारोबार के संचालन में उसके कपट के द्वारा उत्पन्न नही हुई है। यह एक साझेदार का आधारभूत कर्तव्य है जिसे ठहराव द्वारा अलग नहीं किया जा सकता।

### 6. उचित सावधानी का कर्तव्य

कारोबार के संचालन में प्रत्येक साझेदार को अपने कर्तव्यों का पूर्ण सावधानी एवं परिश्रम से पालन करना चाहिए।

### 7. पारिश्रमिक बिना कार्य करने का कर्तव्य

प्रत्येक साझेदार को बिना पारिश्रमिक के कार्य करना चाहिए। हालांकि ठहराव द्वारा क्रियाशील साझेदार या साझेदारों को वेतन या कमीशन के रूप में मुआवजा दिया जा सकता हैं।

### 8. हानि के बंटवारे का कर्तव्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विपरीत अनुबन्ध के अभाव में प्रत्येक साझेदार को अन्य साझेदारों के साथ हानि में बराबर का हिस्सा बॅटाना होगा। यदि कोई ठहराव है तो ठहराव के अनुसार साझेदारों द्वारा हानि उसी अनुपात में वहन की जाएगी।

**9. साझेदारी की सम्पति को केवल फर्म के लिए उपयोग करने का कर्तव्य**

यह प्रत्येक साझेदार का कर्तव्य है कि फर्म की सम्पति का व्यक्तिगत रूप में उपयोग न करें। उसे केवल फर्म के लिए ही उपयोग में लें।

**10. गुप्त लाभ न कमाने का कर्तव्य**

प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि उसे फर्म के किसी व्यवहार से गुप्त लाभ नहीं कमाना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है तो उसे कमाया हुआ लाभ फर्म को भुगतान करना होगा।

**11. फर्म के मुकाबले व्यापार न करने का कर्तव्य**

किसी भी साझेदार को फर्म से मिलता–जुलता व्यापार नहीं करना चाहिए जब तक कि अन्य साझेदारों ने ऐसा करने की सहमति न दी हो। यदि एक साझेदार अन्य साझेदारों की सहमति के बिना ऐसा कारोबार करता है तो कारोबार से अर्जित लाभ तथा इसका हिसाब फर्म को देना होगा।

**12. अधिकार क्षेत्र में कार्य करने का कर्तव्य**

प्रत्येक साझेदार का कर्तव्य है कि वह अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत ही कार्य करें, उससे बाहर नहीं। यदि वह अपने अधिकार क्षेत्र के बाहर कार्य करता है तो ऐसे कार्य से होने वाले नुकसान के लिए उसे उत्तरदायी ठहराया जा सकेगा।

**13. संयुक्त एवं पृथक दायित्व का कर्तव्य**

प्रत्येक साझेदार पृथक रूप एवं संयुक्त रूप से फर्म के कार्यो के लिए बाध्य होता है। इसीलिए कहा जाता है कि साझेदारों का दायित्व असीमित होता है।

**14. हित हस्तान्तरण न करने का कर्तव्य**

कोई भी साझेदार अन्य सभी साझेदारों की अनुमति के बिना फर्म में अपने हित को किसी अन्य व्यक्ति को हस्तान्तरित नहीं कर सकता है। यद्यपि उसे फर्म के लाभ के अपने भाग को हस्तान्तरित करने का अधिकार है।

## 2.12 साझेदारों के अधिकार

साझेदारी में साझेंदारों के निम्नलिखित अधिकार होते है :–

**1. प्रबन्ध में भाग लेने का अधिकार**

प्रत्येक साझेदार को व्यापार के संचालन में भाग लेने का अधिकार होता है। यद्यपि कोई साझेदार फर्म के कारोबार में भाग न लेने के लिए सहमत हो सकता है लेकिन प्रत्येक साझेदार को हिस्सेदारी का अधिकार प्राप्त होना अवश्य होना चाहिए।

**2. बहुमत का अधिकार**

प्रत्येक साझेदार को व्यापार सम्बन्धी मामलों पर अपने विचार देने का अधिकार है तथा साधारण विषयों के सम्बन्ध में बहुमत के निर्णयानुसार कार्य कराने का अधिकार है। लेकिन सारभूत या महत्वपूर्ण विषयों पर सभी साझेदारों की सहमति आवश्यक हो जाती हैं।

**3. पुस्तकों को देखने का अधिकार**

प्रत्येक साझेदार को यह अधिकार है कि वह फर्म की सभी पुस्तकें देख सकें और उनकी प्रतिलिपि ले सकें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

### 4. लाभ में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार

किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में साझेदार फर्म के लाभ एवं हानि के बराबर के हिस्सेदार होते है। इस सम्बन्ध में साझेदारों को विपरीत अनुबन्ध करने का अधिकार है जिसके अन्तर्गत उनके मध्य लाभ एवं हानि का हिस्सा बराबर न होकर भिन्न–भिन्न हो सकता हैं।

### 5. ब्याज पाने का अधिकार

यदि किसी साझेदार को पूँजी पर ब्याज पाने का अधिकार है तो वह ब्याज केवल लाभों में से ही दिया जा सकता है जब तक कि इसके विपरीत कोई अनुबन्ध न हो।

### 6. अग्रिम धन पर ब्याज का अधिकार

यदि कोई साझेदार अपनी पूंजी के अतिरिक्त कोई राशि अग्रिम धन के रूप में देता है तो उसे अनुबन्ध में निर्धारित दर से ब्याज या 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज प्राप्त करने का अधिकार है।

### 7. क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार

फर्म के प्रत्येक साझेदार को उसके द्वारा व्यापार संचालन में स्वयं के द्वारा उठाए गए दायित्वों अथवा खर्चो को फर्म से क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार है। यह अधिकार निम्न तीन स्थितियों में प्राप्त होता है :–

(अ) जब क्षति कारोबार के साधारण एवं उचित संचालन से सम्बन्धित है। (ब) जब ऐसा कार्य किया जाना आपातकालीन परिस्थितियों में साधारण व्यक्तियों द्वारा अपने मामलों में फर्म की सुरक्षा के प्रयोजन के लिए आवश्यक था तथा (स) जब किसी साझेदार ने ऐसा खर्च कर दिया हो।

### 8. संकटकालीन अधिकार

संकटकालीन परिस्थितियों में प्रत्येक साझेदार फर्म को हानि से बचाने के लिए सभी ऐसे कार्य कर सकता है जो उस प्रकार की स्थिति में कोई भी सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति अपने निजी व्यापार के लिए करता है।

### 9. नये साझेदार के प्रवेश को रोकने का अधिकार

प्रत्येक साझेदार किसी विशेष अनुबन्ध के अभाव में नये साझेदार के प्रवेश को रोक सकता है क्योंकि सभी साझेदारों की सहमति के बिना किसी व्यक्ति को फर्म का नया साझेंदार नहीं बनाया जा सकता हैं।

### 10. साझेदारी से अलग होने का अधिकार

किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में कोई भी साझेदार दूसरे साझेदारों की सहमति से फर्म से अलग हो सकता है। ऐच्छिक साझेदारी की स्थिति में वह सूचना देकर फर्म से अलग हो सकता है।

### 11. अलग होने पर प्रतियोगी व्यापार करने का अधिकार

फर्म से अलग होने के बाद यदि अन्य साझेदारों ने उसे प्रतियोगी व्यापार करने से रोंका नहीं है तो उसे प्रतियोगी व्यापार करने का अधिकार है। लेकिन ऐसे साझेदार को फर्म का नाम उपयोग करने का अधिकार नहीं हैं।

### 12. अलग होने पर फर्म के लाभों में हिस्सा पाने का अधिकार

पृथक हुए साझेदार या उसके वैधानिक प्रतिनिधि को अपने हिस्से के लाभ को फर्म से प्राप्त करने अथवा विनियोजित पूँजी पर 6 प्रतिशत ब्याज प्राप्त करने का अधिकार होता हैं।

## 2.13 तीसरे पक्षकारों से साझेदारों के सम्बन्ध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

साझेदारी अधिनियम की सभी साझेदार फर्म के कार्यो के लिए पृथक एवं संयुक्त रूप से जिम्मेदार होते है। अर्थात् तीसरा पक्षकार किसी भी साझेदार को या संयुक्त रूप से सभी साझेदारों को अपने कार्य को पूरा करने के लिए बाध्य कर सकता है। इस विचार से एक महत्वपूर्ण तथ्य प्रतिध्वनित होता है कि फर्म के कार्य किन को मानें और किन को नहीं, क्योंकि फर्म तो कोई कार्य करती नहीं हैं, इसलिए साझेदारों के द्वारा किये गये कार्यो को ही फर्म के कार्य माना जाता है। साझेदार ये कार्य अपने स्पष्ट या गर्भित अधिकारों के अन्तर्गत कर सकते हैं।

**साझेदार के अधिकार के प्रकार**

वह अधिकार जिसके अन्तर्गत एक साझेदार फर्म को बाध्य कर सके, उसे निम्न तीन वर्गो में समझा जा सकता है :–

1. स्पष्ट अधिकार,
2. गर्भित अधिकार, एवं
3. संकटकाल में अधिकार

**1. स्पष्ट अधिकार**

जब एक साझेदार को साझेदारी अधिनियम द्वारा सभी साझेदारों की ओर से फर्म के लिए कार्य करने का स्पष्ट अधिकार प्रदान किया जाता है तो इसे साझेदार का स्पष्ट अधिकार कहते है। फर्म इस साझेदार द्वारा किये गये उन तमाम कार्यो के लिए दायी है जो कि उसने अपने स्पष्ट अधिकारों के अन्तर्गत किये हैं।

**2. गर्भित अधिकार**

प्रत्येक साझेदार फर्म के कारोबार के प्रयोजन के लिए फर्म का एजेन्ट होता है और उसके द्वारा किये गये कार्यो को फर्म के द्वारा किये गये कार्य माना जाता है। इसलिए किसी भी साझेदार द्वारा किये गये कार्य के लिए तीसरा पक्षकार सभी साझेदारों को बाध्य करने का अधिकार रखता हैं साझेदार द्वारा फर्म को बाध्य करने के लिए इस अधिकार को ही साझेदार का गर्भित अधिकार कहा जाता है। अर्थात् किसी भी साझेदार के द्वारा व्यवसाय के सामान्य संचालन में किसी भी प्रकार का कार्य यदि अपने गर्भित या प्रकट अधिकारों के अन्तर्गत किया जाता है तो फर्म इसके कार्यो के लिए बाध्य की जा सकेगी।

गर्भित अधिकार का क्षेत्र :– फर्म को बाध्य करने के लिए यह आवश्यक है कि :–

(अ) कार्य फर्म के नाम से किया जाये,

(ब) कार्य इस प्रकार का हो जो कि फर्म के व्यापार से सम्बन्धित हो

(स) कार्य व्यापार के सामान्य अनुक्रम में किया गया हो, तथा

(द) कार्य इस प्रकार का हो जिसमें फर्म को बाध्य करने की इच्छा स्पष्ट हो।

**गर्भित अधिकार के क्षेत्र के बाहर के कार्य**

कुछ ऐसे अधिकारों का वर्णन किया गया है, जिनके अनुसार कारोबार की किसी विपरीत रीति रिवाज के अभाव में साझेदार को निम्नलिखित कार्य अपने गर्भित अधिकारों के अन्तर्गत करने का अधिकार नहीं होता है। इन्हें साझेदारों के गर्भित अधिकार के अपवादों के रूप में भी जाना जाता हैं।

1. फर्म के कारोबार से सम्बन्धित विवाद को पंचनिर्णय हेतू सुपुर्द करना।
2. फर्म की ओर से अपने नाम से बैंक में खाता खोलना।
3. फर्म के किसी दावे अथवा दावें के किसी भाग के लिए समझौता करना अथवा त्याग करना
4. फर्म की ओर से की गई मुकदमें की कार्यवाही को वापिस लेना,
5. फर्म के विरूद्ध किसी मुकदमें में दायित्व स्वीकार करना,
6. फर्म के लिए अचल सम्पति खरीदना,
7. फर्म के किसी अचल सम्पति का हस्तान्तरण करना, तथा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

8. फर्म की ओर से किसी साझेदारी में सम्मिलित होना

### 3. संकटकाल में साझेदार का अधिकार

साधारणतया साझेदार के अधिकार क्षेत्र में केवल वे ही कार्य आते है जो फर्म के व्यापार को चलाने के लिए अक्सर सम्पन्न किये जाते रहते हैं। लेकिन अधिनियम की संकट की स्थिति में साझेदार फर्म को हानि से बचाने के लिए ऐसा प्रत्येक कार्य कर सकता है, जो कि साधारण बुद्धि का व्यक्ति समान परिस्थितियों में स्वयं के व्यापार में करता और फर्म ऐसे कार्यो से बाध्य होती है।

### साझेदार द्वारा स्वीकृति का प्रभाव

यदि कोई साझेदार फर्म के कारोबार की सामान्य प्रगति में किसी तथ्य को स्वीकार कर लेता है तो उसके द्वारा दी गई स्वीकृति फर्म के विरूद्ध प्रमाण मान ली जायेगी।

### सक्रिय साझेदार को सूचना देने का प्रभाव

यदि किसी ऐसे साझेदार को जो फर्म के कारोबार में प्रायः कार्य करता रहता है, फर्म से सम्बन्धित किसी विषय में दी गई सूचना फर्म को दी गई सूचना मानी जायेगी जब तक साझेदार द्वारा या उसकी सहमति से फर्म पर कोई कपट नहीं किया गया हो। इस प्रावधान की निम्न शर्ते है :–

(अ) सूचना वास्तविक हो

(ब) सूचना सक्रिया साझेदार को ही दी गई हो,

(स) सूचना का विषय फर्म के कार्यो से सम्बन्धित हो, तथा

(द) सूचना कपटपूर्ण कार्यो से सम्बन्धित न हो।

### तीसरे पक्षकारों के प्रति दायित्व

तीसरे पक्षकारो के प्रति दायित्वों को निम्न श्रेणीयों में बांटकर स्पष्ट किया जा सकता है :–

### 1. फर्म के कार्यो के लिए साझेदार का दायित्व

प्रत्येक साझेदार फर्म के समस्त कार्यो के लिए तीसरे पक्षकार के प्रति सामूहिक एवं पृथक रूप से बाध्य होता है। यह बाध्यता उसी तब तक है जब तक कि वह फर्म का साझेदार हैं।

**उदाहरण** :– ''अ'' ''ब'' और ''स'' एक फर्म के साझेदार हैं। ''स'' 10 जुलाई 2008 को फर्म से निवृत हो जाता हैं। 'स' केवल 10 जुलाई 1989 तक के कार्यो के लिए ही दायी होग, बाद के कार्यो के लिए नही।

### 2. साझेंदार के दुराचरण तथा गलत कार्यो के लिए फर्म का दायित्व

यदि फर्म के कारोबार की सामान्य प्रगति में या अन्य साझेदारों की अनुमति से कार्य करते हुए, किसी साझेदार के दोषपूर्ण कार्य या भूल या दुराचरण के कारण किसी तीसरे पक्षकार को कोई हानि होती है या कोई आर्थिक दण्ड देना पडता है तो उसके लिए फर्म उस सीमा तक दायी होगी जिस सीमा तक कि वह दोषी साझेदार होता।

### 3. साझेदार द्वारा धनराशि के दुरूपयोग करने पर फर्म का दायित्व

यदि कोई साझेदार अपने स्पष्ट अधिकार की सीमा में या प्रकट अधिकार के अन्तर्गत कार्य करते हुए किसी तीसरे पक्षकार से कोई धन या सम्पति प्राप्त करता है और उसका दुरूपयोग करता है, अथवा फर्म अपने कारोबार की साधारण प्रगति से किसी तीसरे पक्षकार से कोई सम्पति या धन प्राप्त करती है और वह सम्पति या धन फर्म की देखरेख में है तथा कोई साझेदार इस धन या सम्पति का दुरूपयोग करता है तो फर्म हानि की क्षतिपूर्ति करने के लिए तीसरे पक्षकार के प्रति दायी होगी।

इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि धन के दुरूपयोग की परिस्थिति में फर्म को निम्न परिस्थितियों में ही दायी ठहराया जा सकेगा :–

1. जब साझेदार ने अपने स्पष्ट या प्रकट अधिकार के अन्तर्गत धन या सम्पति प्राप्त की हो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. फर्म ने अपने कारोबार के सामान्य अनुक्रम में किसी तीसरे पक्ष से कोई धन या सम्पति प्राप्त की हो

3. वह सम्पति या धन फर्म की देख–रेख में हो, तथा

4. कोई साझेदार उस धन या सम्पति का दुरूपयोग करता हो

## 2.14 साझेदार का प्रवेश

धारा 31 (1) के अनुसार, ''साझेदारों के मध्य अनुबन्ध और साझेदारी अधिनियम की धारा 30 का उल्लघंन न करते हुए, कोई भी व्यक्ति सभी वर्तमान साझेदारों की सहमति के बिना फर्म में साझेदार नहीं बनाया जा सकता है''।

उपयुक्त विवचेन से स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति को निम्न शर्तो के पूरा करने पर ही फर्म में साझेदार बनाया जा सकता है :–

() उसका साझेदार बनाया जाना अनुबन्ध के प्रावधानों के अनुसार मान्य है, एवं (इ) सभी साझेदार उस व्यक्ति को साझेदारी में प्रवेश देने के लिए सहमत हैं।

## 2.15 साझेदार की मृत्यु

किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में साझेदार की मृत्यु होने पर फर्म समाप्त हो जाती है। धारा 35 के अनुसार साझेदार की मृत्यु के प्रभाव निम्नलिखित है :–

1. यदि किसी साझेदार की मृत्यु पर फर्म की समाप्ति अनिवार्य न हो तो शेष साझेदार फर्म के कारोबार को चालू रख सकते हैं।

2. मृतक साझेदार की सम्पति मृत्यु की तिथि के बाद किये गये फर्म के कार्यो के लिए उत्तरदायी नहीं होती हैं।

3. मृत साझेदार का उत्तराधिकारी शेष सभी साझेदारों की सहमति से ही फर्म में साझेदार बन सकता हैं।

4. साझेदार की मृत्यु की सार्वजनिक दिया जाना आवश्यक नहीं होता हैं।

## 2.16 साझेदार का निष्कासन

सामान्यतया किसी भी साझेदार को फर्म से निष्कासित नहीं किया जा सकता है, लेकिन साझेदारी अधिनियम की धारा 33 के अनुसार निम्नलिखित शर्तो के पूरा किये जाने पर किसी भी साझेदार को फर्म से निकाला जा सकता हैं।

1. यदि साझेंदारों के अनुबन्ध में निष्कासन का अधिकार साझेदारों को स्पष्ट रूप से प्राप्त है,

2. निष्कासन के अधिकार का उपयोग बहुमत से किया गया हो, तथा

3. अनुबन्ध द्वारा प्रदत्त इन शक्तियों का प्रयोग पूर्ण सद्भावना एवं सद्विश्वास से किया गया हो।

निष्कासित साझेदार के वे ही अधिकार एवं दायित्व होगें जो कि अवकाश ग्रहण करने वाले साझेदार के होते है, लेकिन ऐसे साझेदार को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का यथोचित अवसर एवं समय दिया जाना चाहिए। उसे पर्याप्त अवसर न मिलने की स्थिति में उसे अधिकार होगा कि न्यायालय से साझेदार के रूप में पुनर्नियुक्ति की मॉग कर सके।

## 2.17 साझेदार का दिवालिया होना

साझेदार के दिवालीया होने के दिन से वह फर्म का साझेदार नहीं माना जाता चाहे फर्म की समाप्ति की जाये या नहीं। एक साझेदार के दिवालिया होने के निम्न परिणाम होते है :–

1. दिवालीया व्यक्ति फर्म का साझेदार नहीं रहता।

2. वह साझेदारी में उस तिथि से साझेदार नहीं रहता जिस तिथि को दिवालीया होने की घोषणा की गई हो।

3. किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, एक साझेदार के दिवालीया होने पर फर्म का विघटन हो जाता हैं।

4. दिवालिये साझेदार की सम्पति दिवालीया घोषित होने की तिथि के बाद किये गये फर्म के कार्यो के लिए उत्तरदायी नहीं होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.फर्म दिवालियें साझेदार द्वारा किये गये कार्यो से बाध्य नहीं होती हैं।

6.उसे फर्म से अलग होने की नहीं देनी होती हैं।

## 2.18 साझेदार की मृत्यु

किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में साझेदार की मृत्यु होने पर फर्म समाप्त हो जाती है। साझेदार की मृत्यु के प्रभाव निम्नलिखित है :–

1. यदि किसी साझेदार की मृत्यु पर फर्म की समाप्ति अनिवार्य न हो तो शेष साझेदार फर्म के कारोबार को चालू रख सकते हैं।
2. मृतक के साझेदार की सम्पति मृत्यु की तिथि के बाद किये गये फर्म के कार्यो के लिए उत्तरदायीं नहीं होती हैं।
3. मृत साझेदार का उत्तराधिकार शेष सभी साझेदारों की सहमति से ही फर्म में साझेदार बन सकता हैं।
4. साझेदार की मृत्यु की सार्वजनिक सूचना दिया जाना आवश्यक नहीं होता हैं।

**[बोध प्रश्न**

7. क्या प्रत्येक साझेदार को फर्म के संचालन में भाग लेने का अधिकार है?
8. साझेदार के गर्भित अधिकार से क्या समझते है?
9. व्यक्ति कब साझेदारी में सम्मिलित किया जा सकता है?
10. एक साझेदार के दिवालिया होने के क्या परिणाम होते है?

## 2.19 साझेदारी फर्म का विघटन

सामान्यतया यह माना जाता है कि जब साझेदार अपने मध्य के साझेदारी सम्बन्धों को समाप्त कर देते है तो साझेदारी समाप्त मानी जाती है। लेकिन भारतीय साझेदारी अधिनियम में साझेदारी के विघटन एवं फर्म के विघटन में अन्तर किया जाता है।

### फर्म का विघटन

''फर्म के समस्त साझेदारों के मध्य साझेदारी समाप्त हो जाने को फर्म का विघटन कहते है।

उपयुक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि जब फर्म के सभी साझेदारों के मध्य साझेदारी समाप्त हो जाती है तब ही इसे फर्म का विघटन माना जायेगा।

### साझेदारी का विघटन

जब किसी साझेदार के अलग होने के पश्चात् शेष साझेदार फर्म का व्यापार चलाते रहते है तो इसे साझेदारी का विघटन कहते है।

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि यदि साझेदार के सम्बन्धों में कोई परिवर्तन आता है तो यह साझेदारी का विघटन कहलायेगा न कि फर्म का विघटन। यह फर्म का विघटन तभी कहलायेगा जब शेष साझेदार फर्म के व्यापार को चालू न रखे।

## 2.20 साझेदारी के विघटन एवं फर्म के विघटन में अन्तर

| क्र.सं | अन्तर का आधार | साझेदारी का विघटन | फर्म का विघटन |
|---|---|---|---|
| 1 | परिभाषा | जब किसी साझेदार के अलग होनें पर शेष साझेदार फर्म के व्यापार को चलाते रहते हे तो इसे | जब सभी साझेदारों के मध्य साझेदारी समाप्त हो जाती है तो इसे |

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

| | | | |
|---|---|---|---|
| | | साझेदारी का विघटन कहेंगे। | फर्म का विघटन कहते है। |
| 2 | सम्बन्धों की प्रकृति | साझेदारी के विघटन में सामान्यतया एक साझेदार फर्म से अलग होता है, सभी साझेदारों के मध्य सम्बन्धों का अन्त नही होता है। | फर्म के विघटन के अन्तर्गत सभी साझेदारों के मध्य साझेदारी के सम्बन्ध समाप्त हो जाते है। |
| 3 | फर्म का व्यापार | साझेदारी के विघटन के पश्चात् फर्म का व्यापार चालू रहता है। | फर्म के विघटन के पश्चात् फर्म का व्यापार समाप्त हो जाता है। |
| 4 | क्षेत्र | साझेदारी के विघटन पर फर्म का विघटन आवश्यक नही है। | फर्म के विघटन पर साझेदारी का विघटन आवश्यक है। |
| 5 | पश्चातवर्ती कार्य | साझेदारी के विघटन के बाद फर्म का व्यापार चालू रहता है। साझेदार को फर्म से अलग हुए साझेदार का हित निर्धारित करना होता है। | फर्म के विघटन के पश्चात् फर्म की सम्पतियों से वसूली एवं उनका साझेदारों मे विभाजन आवश्यक है। |

## 2.21 फर्म के विघटन की विधियाँ

1. ठहराव द्वारा विघटन
2. अनिवार्य विघटन
3. सांयोगिक विघटन
4. सूचना द्वारा विघटन
5. न्यायालय द्वारा विघटन

### 1. ठहराव द्वारा विघटन

फर्म को किसी भी समय (प) समस्त साझेदारों कीी सहमति से, या (पप) साझेदारों के मध्य ठहराव द्वारा समाप्त किया जा सकता है। सभी साझेदारों की परस्पर सहमति द्वारा कभी भी साझेदारी फर्म का विघटन किया जा सकता है। अर्थात प्रत्येक प्रकार की साझेंदारी फर्म का विघटन किया जा सकता है। लेकिन ठहराव द्वारा विघटन पहले से ही विद्यमान ठहराव के आधार पर ही किया जा सकेगा। यह ठहराव स्पष्ट या गर्भित हो सकता है।

### 2. अनिवार्य विघटन

जब सब साझेदार या एक को छोडकर सब साझेदार दिवालिया घोषित कर दिये जाऐं अथवा जब कोई ऐसी घटना हो जाये कि फर्म के कारोबार को विधि–विरूद्व कर दें या साझेदारों मे बनाये रखना विधि–विरूद्व कर दें तो फर्म का अनिवार्य रूप से विघटन हो जाता है।

इस विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि फर्म का निम्न दो परिस्थितियों में अनिवार्य रूप से विघटन हो जाता है :–

a) जब सभी साझेदार या एक को छोडकर सभी साझेदार दिवालिया हो जाएँ।

b) जब फर्म का कारोबार या फर्म के कारोबार को साझेदार में चलाना अवैध हो जाये।

### 3. सांयोगिक विघटन

साझेदारों के मध्य हुए अनुबन्ध को ध्यान में रखते हुए विपरीत अनुबन्ध के अभाव में निम्नलिखित घटनाओं के घटित होने पर फर्म विघटित हो जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

a. **अवधि की समाप्ति**

जब फर्म किसी निश्चित अवधि के लिए गठित की गई है, तो इस अवधि के समाप्त होने पर फर्म विघटित हो जाती है।

b. **उपक्रम या कार्य के पूरा होने पर**

जब एक फर्म का गठन एक या अधिक कार्यों व उपक्रमों के चलाने के लिए किया गया है, तो उनके पूरा होने पर फर्म का विघटन हो सकेगा।

c. **साझेदार की मृत्यु** किसी भी साझेदार की मृत्यु होने पर फर्म विघटित हो सकेगी।

परन्तु अनुबन्ध के अनुसार शेष साझेदारों को फर्म को चालू रखने का अधिकार हो तो शेष साझेदार स्वयं या मृतक साझेदार के उत्तराधिकारी को चालू रख सकते है।

d. **साझेदार के दिवालिया होने पर**

किसी भी साझेदार के दिवालिया होने पर फर्म का विघटन हो सकेगा। उपर्युक्त सभी परिस्थितियों में फर्म का विघटन होना अनिवार्य नही है, क्योंकि शेष साझेदार यदि चाहे तो परस्पर ठहराव द्वारा वे फर्म के व्यापार को चालू रख सकते है।

**4. सूचना द्वारा विघटन**

ऐच्छिक साझेदारी की दशा में कोई भी साझेदार दूसरे सभी साझेदारों को फर्म को विघटित करने के अपने आशय की लिखित सूचना देकर फर्म का विघटन कर सकता है। सूचना प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण हो यह आवश्यक है।

इस प्रकार के विघटन की सूचना में दी गई तिथि से अथवा सूचना दिये जाने की तिथि से फर्म विघटित हो जाती है। एक बार दी गई सूचना अन्य साझेदारों की सहमति के बिना वापस नही ली जा सकती है।

**5. न्यायालय द्वारा विघटन**

साझेदारी अधिनियम की किसी साझेदार द्वारा न्यायालय में मुकदमा चलाये जाने पर न्यायालय निम्नलिखित आधारों में से किसी भी एक आधार के उत्पन्न होने पर फर्म का विघटन कर सकता है। पागलपन

(a) स्थायी असमर्थता

(b) दुराचरण

(c) अनुबन्ध का निरन्तर भंग

(d) हित का हस्तान्तरण

(e) निरन्तर हानि

(f) अन्य कोई न्यायिक एवं साम्य आधार

## 2.22 विघटन के परिणाम

साझेदारी फर्म के विघटन हो जाने के बाद फर्म के साझेदार के निम्नलिखित अधिकार एवं कर्तव्य होते है :–

**1. फर्म की सम्पति के बँटवारे का अधिकार**

फर्म के विघटन पर वह फर्म की सम्पति को निम्नलिखित तरीके से उपयोग करने की माँग कर सकता है :–

a) फर्म के ऋणों एवं दायित्वों का भुगतान तथा

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

b) शेष रकम का साझेदार अथवा उनके प्रतिनिधियों के मध्य उनके आनुपातिक रूप में बंटवारा

**2. फर्म की सम्पति में से फर्म के ऋणों को चुकाये जाने का अधिकार**

सबसे पहले फर्म द्वारा देय संयुक्त ऋण का भुगतान होगा, और यदि कुछ रकम शेष बचे तो इसे साझेदारों के हिस्सों के अनुपात में उनके पृथक ऋणों के भुगतान में प्रयोग किया जायेगा।

**3. व्यक्तिगत लाभों का अधिकार**

यदि कोई साझेदार किसी सौदें मे या सम्पति से या फर्म के नाम से प्रयोग से कोई व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करता है तो उसे फर्म को उसका हिसाब–किताब देना पड़ेगा और उसे कमाया हुआ व्यक्तिगत लाभ भी देना होगा। लेकिन विघटन के बाद यदि किसी साझेदार ने या उसके प्रतिनिधि ने फर्म की ख्याति खरीद ली है तो वह फर्म के नाम से प्रयोग से उत्पन्न होने वाले लाभों को बाँटने को बाध्य नही है।

**4. प्रीमियम वापिस पाने का अधिकार**

जब किसी साझेदार ने फर्म में शामिल होते समय कुछ धन प्रीमियम के रूप में दिया था और फर्म निश्चित **अवधि के लिए थी, तो इस निश्चित समय से पूर्व ही विघटन होने पर वह साझेदार अपना पूरा या आंशिक प्रीमियम** प्राप्त करने का अधिकारी है।

**5. कपट आदि के कारण अनुबन्ध निरस्त होने पर अधिकार**

धारा 52 के अनुसार यदि साझेदार अनुबन्ध किसी पक्षकार के कपट या मिथ्यावर्णन के आधार पर निरस्त किया जाता है, तो निरस्त करने वाले पक्षकार को निम्न अधिकार प्राप्त होंगे :–

**ग्रहणाधिकार**

फर्म के ऋणों को चुका देने के बाद उसके द्वारा लगाई गई पूंजी की वसूली के लिए फर्म की शेष सम्पति पर ग्रहणाधिकार प्राप्त है।

**क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार**

फर्म के ऋणों के सम्बन्ध मे कपट या मिथ्यावर्णन के दोषी साझेदार या साझेदारों से उसे क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार है।

**प्रत्यास्थापन को अधिकार**

यदि उसने फर्म के ऋणों के भुगतान में कुछ धन चुकाया है, तो उसके लिए वह फर्म के विरूद्व ऋणदाता के समस्त अधिकार रखता है।

**प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार**

विपरीत अनुबन्ध के अभाव में प्रत्येक साझेदार अथवा उसका प्रतिनिधि किसी दूसरे साझेदार या उसके प्रतिनिधि को फर्म के नाम से उसी प्रकार के व्यापार को करने या स्वयं के स्वार्थ के लिए फर्म की किसी सम्पति के उपयोग करने को तब तक रोक सकता है जब तक फर्म से सम्बन्धित सभी मामलें पूरी तरह से न निपट जायें। लेकिन यह प्रतिबन्ध निम्नलिखित परिस्थितियों में लागू नही होता :–

a) जब साझेदारों के मध्य कोई विपरीत अनुबन्ध हुआ हो, तथा

b) जब साझेदार ने फर्म की ख्याति खरीद ली है।

**<u>दायित्व</u>**

**a) विघटन के बाद किये गये कार्यो के लिए साझेदारों का दायित्व**

सूचना दिये जाने के अभाव में साझेदार विघटन के बाद उनमें से किसी के द्वारा किये गये कार्य के लिए तीसरे पक्षकारों के प्रति दायी होते है। लेकिन जिस साझेदार की मृत्यू हो जाती है या दिवालिया घोषित कर दिया जाता है या फर्म से निवृत हो जाता है, तो उसकी सम्पति साझेदार न रहने की तिथि से इस प्रावधान के अन्तर्गत दायी नही होगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

b) **फर्म के मामलों की समाप्ति एवं अपूर्ण सौंदो सम्बन्धी कार्यवाही के लिए दायित्व**

निम्नलिखित मामलों में विघटन के बाद साझेदारों द्वारा किये गये कार्यो के लिए पूरी तरह बाध्य करने के लिए साझेदारों के पारस्परिक दायित्व जहॉ तक आवश्यक हो चलते रहते है। वे परिस्थितियॉ निम्नलिखित है :–

a. फर्म के विघटन सम्बन्धी मामलों को निपटाने के लिए

b. शुरू किये गये किन्तु विघटन के समय पर अधूरे सौंदो को पूरा करने के लिए।

## 2.23 विघटन पर निपटारे की विधि

विघटन के पश्चात् विभिन्न पक्षों के हिसाब–किताब का निपटारा निम्न नियमों के अन्तर्गत किया जा सकेगा :–

1. **हानियों की पूर्ति**–हानियों की पूर्ति सर्वप्रथम लाभ में से, इसके बाद पूँजी में से और अन्त में यदि आवश्यकता पड़े तो इसकी पूर्ति साझेदारों द्वारा व्यक्तिगत रूप से उसी अनुपात में की जायेगी, जिस अनुपात में वे लाभों को पाने के हकदार थे।

2. **सम्पतियों का बॅटवारा** –फर्म की सम्पतियों में जिनमें साझेदारों द्वारा पूँजी की कमी को पूरा करने के लिए दिया गया धन भी सम्मिलित हैं।

3. **फर्म के ऋण तथा निजी ऋण**–जब फर्म के ऋणों और साझेदारों के व्यक्तिगत ऋणों का भुगतान किया जाना है तो धारा 49 के अग्रांकित नियम लागू होंगे :–

() फर्म के ऋणों को पहले फर्म की सम्पति में से भुगतान किया जायेगा और यदि कुछ शेष बचे तो उसका विभाजन होगा। (इ) साझेदारी के निजी ऋणों को पहले उनकी निजी जायदाद में से अदा किा जायेगा और यदि कुछ लाभ बचे तो बचत को फर्म के ऋणों की अदायगी में काम लिया जा सकेगा।

4. **व्यक्तिगत लाभ**–विघटन से लेकर हिसाब–किताब के निपटारे की तिथि तक अगर जीवित साझेदारों ने फर्म के कार्य को चालू रखते हुए कुछ व्यक्तिगत लाभ प्राप्त किया है, तो इस लाभ को फर्म का लाभ माना जाएगा और उसका यथा अनुपात विभाजन होगा।

5. **ख्याति** –फर्म विघटन के बाद हिसाब–किताब का निपटारा करने के लिए विपरीत अनुबन्ध के अभाव में फर्म की ख्याति भी फर्म की सम्पतियों में सम्मिलित की जायेगी और उसे अलग से या अन्य सम्पतियों के साथ विक्रय किया जा सकेगा।

**बोध प्रश्न**

11. साझेदारी के विघटन एवं फर्म के विघटन में अन्तर किजिए?

12. फर्म के विघटन की विभिन्न विधियाँ का वर्णन किजिए?

## 2.24 सारांश

1. साझेदारी की स्थापना अनुबन्ध से होती है, इस अनुबन्ध में वैध अनुबन्ध के लक्षण होने चाहिए।

2. साझेदारी अनुबन्ध मौखिक या लिखित हो सकता है।

3. साझेदारी में जो लिखित प्रलेख होता है, उसे साझेदारी संलेख कहते हैं। साझेदारी संलेख में निम्न विवरण होता है :–

a. फर्म का नाम एवं पता

b. साझेदारों के नाम एवं पते।

c. प्रत्येक साझेदार द्वारा दी जाने वाली पूँजी का विवरण।

d. अधिकार एवं दायित्व इत्यादि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4. फर्म का पंजीकरण अनिवार्य नहीं है परन्तु ऐच्छिक है।

5. पंजीकरण रजिस्ट्रार के पास एवं निर्धारित प्रपत्र में साझेदारी का पूर्ण विवरण भेजकर करवाया जाता है।

6. पंजीकरण न कराने के प्रभाव :–

1. कोई भी साझेदार फर्म के विरूद्ध अनुबन्ध या अधिनियम से उत्पन्न अधिकारों को प्राप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता।

2. फर्म किसी अन्य तीसरे व्यक्ति के विरूद्ध वाद दायर नहीं कर सकती।

3. प्रतिसाद के दावें भी नहीं लाये जा सकते।

फर्म के समस्त साझेदारों के मध्य साझेदारी समाप्त हो जाने को फर्म का विघटन कहते हैं, जो कि साझेदारी के विघटन से भिन्न है। इनके सम्बन्धों की प्रकृति, फर्म के व्यापार की स्थिति, क्षेत्र तथा पश्चातवर्ती कार्यो के आधार पर इनमें अन्तर किया जा सकता है।

फर्म का विघटन निम्न रीतियों से सम्भव है :–

1. ठहराव द्वारा विघटन
2. अनिवार्य विघटन
3. आकस्मिक विघटन
4. सूचना द्वारा विघटन
5. न्यायालय द्वारा विघटन

साझेदारी के विघटन के परिणामस्वरूप एक साझेदार को निम्न अधिकार है : फर्म की सम्पति के बॅटवारे का, फर्म की सम्पति में से ऋण को चुकाये जाने का, व्यक्तिगत लाभो को प्राप्त करने, प्रीमियम वापस पाने, प्रतिबन्ध लगाने एवं कपट की स्थिति में ग्रहणाधिकार, प्रत्यास्थापन और क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार है।

विघटन के बाद किये गये कार्यो के लिए साझेदार तीसरे पक्ष के लिए तथा फर्म के मामलों की समाप्ति एवं अपूर्ण सौदों की कार्यवाही के लिए साझेदार एवं फर्म दायी होती हैं।

विघटन के पश्चात् साझेदारों के मध्य हिसाब–किताब निपटारें के लिए, हानियों की पूर्ति सर्वप्रथम लाभ में से, उसके बाद पूॅजी में से तथा इसके पश्चात् साझेदारों द्वारा व्यक्तिगत रूप से की जायेगी। सम्पति का बॅटवारा क्रमानुसार तीसरा पक्षकार, साझेदारी के ऋण, साझेदारी पूॅजी तथा साझेदारों के लाभ विभाजन के रूप में होगा।

ख्याति फर्म की सम्पति मानी जायेगी और विघटन के पश्चात् कमाये गये व्यक्तिगत लाभ फर्म की ख्याति माने जायेगें जब तक कि कोई इसके विपरीत अनुबन्ध न हों।

साझेदारी अधिनियम जो 1932 में पारित किया गया, वह 1 अक्टूंबर, 1932 से जम्मू–कश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू माना जाता है।

अधिनियम की धारा 4 के अनुसार साझेदारी उन व्यक्तियों के मध्य का सम्बन्ध है जिन्होने एक ऐसे कारोबार के लाभ को आपस में बांटने की सहमति दी है जो इन सब के द्वारा या उन सब की ओर से कार्य करते हुए किसी एक के द्वारा संचालित किया जाता है। साझेदारी के निम्न लक्षण है :–

1. दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होना।
2. अनुबन्ध का होना।
3. कारोबार का होना।
4. लाभ कमाना तथा उसे आपस में बॉटना।
5. प्रत्येक साझेदार फर्म का एजेन्ट होता हैं।
6. असीमित दायित्व।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. साझेदारों का सामूहिक एवं व्यक्तिगत रूप से दायीं होना।

8. प्रत्येक साझेदार का एजेन्ट एवं मालिक दोनो होना।

9. अधिकतम संख्या बैंकिंग व्यवसाय में 10 व अन्य कार्यो हेतु 20 से अधिक न होना।

साझेदार की कसौटी साझेदारों के मध्य वास्तविक सम्बन्धों पर आधारित है। किसी भी समूह को साझेदारी तभी कहा जायेगा जबकि इसमें साझेदारी के समस्त लक्षण विद्यमान है। यह सह–स्वामित्व तथा संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय एक कम्पनी से भिन्न हैं।

उत्पति, उद्देश्य, हित–हस्तान्तरण, पारस्पतरिक सम्बन्ध, अधिकतम संख्या, ग्रहणाधिकार एवं सम्पति के बॅटवारे के आधार पर साझेदारी एवं सह–स्वामित्व में अन्तर किया जा सकता हैं।

साझेदारी का संयुक्त हिन्दू परिवार व्यवसाय से अन्तर, सृजन, नियमन, दायित्व, संचालन, स्थिति, स्त्री की स्थिति, मृत्यु का प्रभाव, लाभ का बॅटवारा तथा सदस्यों की अधिकतम संख्या आदि के आधार पर किया जा सकता हैं।

साझेदारी का संयुक्त स्कन्ध कम्पनी से परिभाषा, पृथक अस्तित्व, परस्पर एजेन्सी, सदस्यों का दायित्व, संचालन, न्यूनतम सदस्य संख्या, अधिकतम सदस्य संख्या, हित हस्तान्तरण एवं विद्यमानता के आधार पर अन्तर किया जा सकता हैं।

साझेदारी ऐच्छिक या विशिष्ट या निश्चित अवधि की हो सकती है। ऐच्छिक तथ विशिष्ट साझेदारी के मध्य अर्थ, निर्धारण, समाप्ति तथा कारोबार की प्रकृति के आधार पर अन्तर किया जा सकता है। साझेदार निष्क्रिय, सक्रिय, सीमित, नाममात्र, केवल लाभ के लिए उप साझेदार, प्रदर्शन या गत्यावरोध द्वारा साझेदार तथा कार्यकारी साझेदार आदि प्रकार के हो सकते हैं। ऐसी साझेदारी जो साझेदारी एवं अन्य सम्बन्धित विधानों के प्रावधानों का उल्लंघन करती हो उसे अवैद्य साझेदारी कहते हैं।

## 2.25 प्रमुख प्रावधान एवं शब्दावली

1. साझेदारी उन व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध को कहते है जो ऐसे कारोबार के लाभ को आपस में बॉटने के लिए सहमत हुए हों जिसे उन सभी के द्वारा अथवा उन में से किसी एक के द्वारा उन सभी की ओर से चलाया जाता हो।

2. सभी साझेदारों में लाभों का बंटवारा करना अनिवार्य है किन्तु हानियों का बॅटवारा सभी साझेदारों में करना आवश्यक नहीं हैं। यदि साझेदारों द्वारा आपस में कोई स्पष्ट समझौता नहीं किया गया हो तो लाभों एवं हानियों का सभी साझेदारों में समान रूप से बॅटवारा किया जाता हैं।

3. फर्म के कारोबार को संचालित करते समय सभी साझेदार एक–दूसरे के पारस्परिक रूप से एजेण्ट होते है। फर्म से प्रत्येक साझेदार एजेण्ट एवं प्रधान दोनों की ही स्थिति में होता है। एजेण्ट होने के कारण्सा वह अन्य फर्म को अपने कार्यो से बद्ध करता है जबकि प्रधान होने के कारण वह फर्म में सभी साझेदारों द्वारा किये गये कार्यो से बद्ध होता हैं।

4. लाभों का बॅटवारा करना साझेदारी का प्रत्यक्ष प्रमाण है किन्तु अन्तिम प्रमाण नहीं। ऐसा इसलिए कि कई ऐसे व्यक्ति होते हैं जो साझेदारी फर्म के लाभों में हिस्सा प्राप्त करते हैं किन्तु वे वास्तव में फर्म के साझेदार नहीं होते। लाभों में हिस्सा प्राप्त करने वाले ऐसे व्यक्ति फर्म के साझेदारों के पारस्परिक एजेण्ट नहीं होते हैं।

5. सभी साझेदार फर्म के लाभ–हानि को समान रूप से बॉटते है जब तक कि कोई अन्यथा समझौता नहीं हुआ हो।

6. फर्म के व्यवसाय से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण मामलों पर साझेदारों को सर्वसम्मति से भी निर्णय करना चाहिए जब तक उनके बीच सर्वसम्मति से कोई अन्यथा समझौता नहीं हुआ हो। किन्तु, साधारण एवं दिन–प्रतिदिन के मामलों में साझेदार बहुमत से निर्णय कर सकते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

7. जब तक साझेदारों ने कोई अन्यथा समझौता नहीं किया है तब तक कोई भी साझेदार फर्म से प्रतिस्पर्द्धा करने वाला व्यवसाय नहीं कर सकता है। यदि कोई साझेदार ऐसा कोई व्यवसाय करता है तो वह उस व्यवसाय के सभी लेखे प्रस्तुत करने तथा अर्जित किये गये लाभ को सौंपने के लिए उत्तरदायी होता हैं।

8. साझेदारी का विघटन तब होता है जबकि साझेदारों के आपसी सम्बन्धों में परिवर्तन होता है अथवा फर्म की संरचना में कोई परिवर्तन होता है तथा फर्म का व्यवसाय यथावत् चलता रहता हैं।

9. फर्म के विघटन से तात्पर्य फर्म के सभी साझेदारों के बीच साझेदारी के विघटन से है। ऐसी स्थिति में साझेदारों के सभी अस्थायी वैधानिक सम्बन्ध समाप्त हो जाते है। परिणामस्वरूप, फर्म का व्यवसाय ही बन्द कर देना पड़ता हैं।

10. फर्म के विघटन की दशा में सभी साझेदारों को निम्नांकित अधिकार होते है :–

1. फर्म की सम्पतियों का फर्म के ऋणों एवं दायित्वों के भुगतान में प्रयोग करना, तथा

2. यदि अधिशेष हो तो सभी साझेदारों के अधिकारों के अनुपात में उसका वितरण करना।

3. निम्नांकित दशाओं में सार्वजनिक सूचना देना अनिवार्य होता हैः– 1. साझेदार की निवृति पर, 2. साझेदार के निष्कासन पर 3. फर्म के विघटन पर तथा 4. अवयस्कता प्राप्त करने के बाद फर्म में साझेदार बनने अथवा न बनने के विकल्प के चयन पर।

## 2.26 कुछ उपयोगी पुस्तकें


1. एच.जे. मैथ्यु :– व्यापारिक सन्नियम त्थै।– जयपुर
2. गुलशन एवं कपूर :– व्यापार विधि
3. अवतारसिंह :– व्यापारिक सन्नियम ईर्स्टन बुक क.– लखनऊ
4. डॉ. आर.एल.नौलखा :– व्यापारिक सन्नियम, रमेश बुक डिपो, जयपुर।
5. डॉ. माथुर एवं सक्सेना :– व्यापारिक सन्नियम, रमेश बुक डिपो, जयपुर


## 2.27 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 संकेत 2.2 के अनुच्छेद को पढिए एवं उत्तर दीजिए?

2 संकेत 2.6 भाग के अनुच्छेद संख्या 2 को पढिए एवं उत्तर दिजिए?

3 संकेत 2.4 के बिन्दु संख्या 4 को पढकर उत्तर दिजिए?

4 संकेत 2.7 अनुच्छेद को पढकर उत्तर दिजिए?

5 पंजीयन तब प्रभावी माना जाएगा जब फर्म रजिस्ट्रार ने फर्म के नाम से आवश्यक कार्यवाही पूरी कर ली है?

6 हॉ, अवयस्क साझेदार बन सकता है?

7 प्रत्येक साझेदार को फर्म के हित एवं संचालन मे भाग लेने का अधिकार है?

8 संकेत 2.13 अनुच्छेद के बिन्दु संख्या 2 के अनुच्छेद को पढकर उत्तर दिजिए?

9 संकेत 2.14 को पढकर उत्तर दिजिए?

10 संकेत 2.17 के अनुच्छेद को पढकर उत्तर दिजिए?

11 संकेत 2.20 के अनुच्छेदों को पढिये एवं उत्तर दिजिए?

12 संकेत 2.25 के अन्तर्गत दर्शायी गई विधियों को पढिए एवं उत्तर दिजिए?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun